गिरिजाकुमार माथुर का काव्य संवेदना और शिल्प

THE POETICAL WORKS OF GIRIJA KUMAR MATHUR : SENSIBILITY AND TECHNIQUE

Thesis submitted to

THE UNIVERSITY OF COCHIN

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

SHEELA V. P.

Prof & Head of the Department

DR. N. RAMAN NAIR

Supervisor

DR. P. V. VIJAYAN

Professor

DEPARTMENT OF HINDI

UNIVERSITY OF COCHIN

COCHIN - 682 022

1985

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by Smt. V.P. SHEELA under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for degree in any University.

Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin Pin 682022
Date: 27 03 1985.

Dr. P.V. VIJAYAN
(supervising teacher)

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22, during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University. I sincerely express my gratitude to the Cochin University and University Grants Commission for their help and encouragement.

Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin Pin 682022

V.P. SHEELA

पुरोवाक्

पु रो वा क्

गिरिजाकुमार माथुर आधुनिक हिन्दी काव्य जगत के प्रतिभा धनी कवि हैं । प्रयोगशील कविता के प्रवर्तकों और नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में उनका नाम विशेष उल्लेखनीय है । उनकी काव्य साधना अविराम रही है । उनकी जीवन्त लेखनी से आधुनिक हिन्दी काव्य को अनुपम कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं । छायावादी युग से लेकर फिलहाल की विचार कविता तक उनकी काव्य यात्रा व्यापी पडी है । उनकी रचनाएं अपने अनुभूत सत्य का दस्तावेज हैं । उनमें युग चेतना की झलकें अनुगुंजित हैं

पर खेद की बात यह है कि माथुर जैसे युगद्रष्टा कवि की रचनाएं अब भी उपेक्षित सी रह गयी हैं । उनके काव्य को भली-भांति समझने और उनकी तह में निहित अन्तःसूत्र को पकड पाने का शोधपरक प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ है । उन पर विद्वानों की आलोचना-दृष्टि पर्याप्त मात्रा में नहीं पडी है । कुशल तथा दक्ष पंडितों के आलोचनात्मक आलोक के अभाव में उनकी काव्य संवेदना की विस्तृत भावभूमि का अन्तःसूत्र अस्पृश्य रह गया है ।

डॉ॰ नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी के सम्मिलित प्रयास में "आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजाकुमार माथुर" प्रकाशित हुआ। उसमें कवि की शिल्प-सजगता तथा कथ्य की नवीनता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने माथुर की काव्यात्मा को पकड़ने का जो सराहनीय कार्य किया, वह पूर्ण नहीं है। दुर्गाशंकर मिश्र के "गिरिजाकुमार माथुर का काव्य" की कमी यह है कि उन्होंने बहुत सतही अध्ययन प्रस्तुत किया है।

विजयकुमारी की पुस्तक "गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में" में "मंजीर" से लेकर "भीतरी नदी की यात्रा" तक की कविताओं का अध्ययन हुआ है। एक ओर वह अपूर्ण है दूसरी ओर नये कवि को मूल्यांकन के पुराने चौखटे में बन्द रखने के कारण कवि की संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं लेखिका केलिए अदृश्य सी रह गयी हैं। उसमें माथुर को प्रयोगशील कवि घोषित किया गया है। पर माथुर मात्र प्रयोगशील कवि नहीं बल्कि प्रगतिशील कवि हैं। छायावाद से लेकर समकालीन कविता तक की हिन्दी कविता की क्रमिक विकास यात्रा का अन्त:सूत्र उनकी कविताओं में देख सकते हैं। कवि की समूची सृजनात्मक उपलब्धियों के अध्ययन से उनकी काव्य संवेदना की तह में निहित अन्त:सूत्र को बाहर निकालना चाहिए। अत: माथुर की काव्य साधना के अनदेखे तथा अछूते आयामों का अनावरण करना ही असल में मेरे इस शोधपरक अनुशीलन का उद्देश्य रहा है। अतएव मैं ने "गिरिजाकुमार माथुर का काव्य: संवेदना और शिल्प" को इस शोध प्रबन्ध का विषय रखा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सात अध्याय हैं। "गिरिजाकुमार माथुर की जीवन-रेखा, परिवेश और व्यक्तित्व" शीर्षक पहले अध्याय में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए माथुर की जीवन रेखा, परिवेश और व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है। माथुर की सृजनात्मक प्रतिभा के स्फायन में पारिवारिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का

प्रभाव अवश्य रहा है । उन परिस्थितियों के ढाँचे में ढले हुए माथुर के व्यक्तित्व की खूबियों और खामियों का अध्ययन इसमें हुआ है ।

"गिरिजाकुमार माथुर की काव्यकृतियाँ" नामक दूसरे अध्याय में उनकी संपूर्ण काव्य कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत है । "मंजीर" से लेकर "कल्पान्तर" तक की काव्य यात्रा के हर मोड़ में आए हुए परिवर्तनों पर विशेषत: प्रकाश डाला गया है । अत: माथुर की काव्य-यात्रा का विकास इस अध्याय से स्पष्ट हो जाता है ।

"प्रयोगवादी कविता और गिरिजाकुमार माथुर" शीर्षक तीसरे अध्याय में प्रयोगवादी कविता के प्रवृत्तिगत विस्तृत विश्लेषण के उपरान्त उसमें माथुर की प्रासंगिकता पर भी विचार प्रस्तुत किया गया है ।

"नयी कविता और गिरिजाकुमार माथुर" नामक चौथे अध्याय में नयी कविता की प्रवृत्तियों के आधार पर माथुर की कविताओं को परखा गया है । नयी कविता के क्षेत्र में माथुर के व्यक्तित्व की तथा रचनाओं की प्रासंगिकता पर भी विचार किया है ।

"गिरिजाकुमार माथुर की काव्य संवेदना" शीर्षक पाँचवें अध्याय में संवेदना की परिभाषा करते हुए उनकी काव्य कृतियों के संवेदना पक्ष का विश्लेषण-विवेचन किया गया है । माथुर की निरंतर विकासमान काव्य संवेदना की रूप को पकड़ने का प्रयत्न भी इस अध्याय में हुआ है ।

"गिरिजाकुमार माथुर का शिल्प" नामक छठवें तथा सातवें अध्यायों में कवि के शिल्पपक्ष का अध्ययन है । छठवें अध्याय में बिम्ब और प्रतीक का तथा सातवें में भाषा और छन्द का अध्ययन हुआ है ।

उपसंहार में माथुर की काव्योपलब्धियों का मूल्यांकन है । माथुर की समूची रचनाओं को सात अध्यायों में विभक्त करके उनकी संवेदना के सूक्ष्म तथा स्थूल स्तरों को प्रकाश में लाने के साथ ही साथ छायावादोत्तर कवियों में अज्ञेय के साथ माथुर के महत्व की ओर भी संकेत किया है । निष्कर्ष यह है कि प्रयोगशील कविता के प्रवर्तकों में और नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में अज्ञेय के साथ माथुर का अपना अलग अस्तित्व है । इस प्रसंग में मैं ने अपने इस मत की स्थापना की है कि शैल्पिक प्रयोगशीलता और काव्य-कथ्य की प्रगतिशीलता की दृष्टि से माथुर का स्थान अज्ञेय से भी आगे है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रस्तुतीकरण कोचिन विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ॰ पी॰वी॰ विजयन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । उनके बहुमूल्य निर्देशनों तथा सुझावों के बिना मेरा यह प्रयत्न अधूरा ही रह जाता । आधुनिक हिन्दी काव्य के अध्ययन और अध्यापन तथा मनन-चिन्तन में दत्तचित्त विजयन जी की निरंतर प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही मैं इस शोध कार्य की पूर्ति में सफल हो सकी हूँ । मैं उस प्रतिभा के सामने नतमस्तक हूँ ।

मैं उन लेखकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनकी पुस्तकों का उपयोग मैं ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से इस शोध प्रबन्ध में यत्र-तत्र किया है ।

विभाग के अध्यक्ष डॉ॰ एन॰रामन नायर जी के प्रति मैं आभारी हूँ । उन्होंने इस शोध कार्य की संपूर्ति केलिए हमेशा अनुकूल वातावरण प्रदान करते हुए निरंतर अपने मधुर वचनों से प्रोत्साहित किया है ।

विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुञ्जिक्कावुट्टि तंपुराम तथा सहायक एम॰ ए॰ अलीस के प्रति में सहे दिल से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। वे समय समय पर आवश्यक पुस्तक देकर इस शोध कार्य की संपूर्ति में सहयोग देते थे हैं।

कोच्चिन विश्वविद्यालय तथा यु॰जी॰सी॰ के अधिकारियों के प्रति में विशेष रूप से कृतज्ञ हूं। क्योंकि उन्होंने आदि से इति तक छात्रवृत्ति देकर मुझे आर्थिक संकट से बचाते हुए इस शोध कार्य की पूर्ति में सहायता की है।

कोच्चिन विश्वविद्यालय,
ता॰ 27 03 1985

मीरा, वी॰पी॰

विषय प्रवेश

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय — 1 - 31

गिरिजाकुमार माथुर - जीवन रेखा परिवेश और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व:प्रचलित मान्यताएं - जीवन-रेखा - बेगाना बचपन - प्राप्य से अप्राप्य की ओर - शैक्षिक शुरूआत - माथुर में कवि का जन्म - प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना - परिवेश - राजनीतिक परिवेश आर्थिक परिवेश - सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश - साहित्यिक परिवेश - निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय — 32 - 83

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य कृतियाँ

मंजीर - नाश और निर्माण - धूप के धान - शिला पंख चमकीले - जो बंध नहीं सका - भीतरी नदी की यात्रा - साक्षी रहे वर्तमान - कल्पान्तर - निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय — 84 - 127

प्रयोगवादी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

प्रयोगवादी कविता - प्रपद्यवाद - नामकरण की सार्थकता - नए काव्य सत्य की तलाश - परंपरा का निषेध - वैयक्तिकता - बौद्धिकता -

पृष्ठ-संख्या

नूतन सौन्दर्यबोध - निराशा, असंतोष, अस्वीकृति, अनास्था - ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह - लघुता बोध - क्षणवाद - विषयभूमि का विस्तार - शैल्पिक सजगता - काव्य भाषा - बिम्ब-प्रतीक छन्द - प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तकों में माथुर - वैयक्तिकता - बौद्धिकता - नूतन सौन्दर्य बोध निराशा, अनास्था, अस्वीकृति और उदासी - ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह - लघु मानव - क्षणबोध विषयभूमि का विस्तार - शिल्प सजगता - निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय 128 - 180

नयी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

नयी कविता - आधुनिक भावबोध - बौद्धिकता - व्यक्ति बनाम समाज - यथार्थ बोध - आशा-निराशा आस्था-अनास्था - बदलते सौन्दर्यबोध - व्यंग्यात्मकता क्षण की महत्ता - कथ्य का विस्तार - लघुमानव की प्रतिष्ठा - काव्यशिल्प - नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में माथुर - आधुनिक भावबोध - बौद्धिकता - व्यक्ति बनाम समाज - बदलते सौन्दर्यबोध - आशा-निराशा - आस्था-अनास्था - व्यंग्यात्मकता - यथार्थ बोध - लघुमानव की प्रतिष्ठा - क्षण की महत्ता - विषय विस्तार - काव्य शिल्प - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

पाँचवाँ अध्याय 181 - 234

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य-संवेदना

व्यक्तिपरक संवेदना - समाजपरक संवेदना - राजनीतिपरक संवेदना - सांस्कृतिक और इतिहास परक संवेदना - प्रकृतिपरक संवेदना - निष्कर्ष ।

छठवाँ अध्याय 235 - 277

गिरिजाकुमार माथुर का काव्य शिल्प

1. बिम्ब और प्रतीक

शिल्प - शिल्प और संवेदना - शिल्प और व्यक्तित्व - शिल्प में बदलाव - माथुर तथा शिल्प पक्ष - बिम्ब विधान - बिम्ब और कल्पना बिम्ब विभिन्न रूपों में - माथुर का बिम्ब विधान दृश्य बिम्ब - वस्तु बिम्ब - व्यापार बिम्ब - इन्द्रिय संवेद्य बिम्ब - स्पर्श बिम्ब, घ्राण बिम्ब - ध्वनि बिम्ब या श्रवण बिम्ब - मानस बिम्ब - भाव बिम्ब - विचार बिम्ब - सान्द्र बिम्ब या संश्लिष्ट बिम्ब - अलंकृत बिम्ब - प्रतीक - उपमा और प्रतीक - बिम्ब और प्रतीक - प्रतीक का विकास - माथुर का प्रतीक विधान - सांस्कृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक - पौराणिक प्रतीक - प्राकृतिक प्रतीक - वैज्ञानिक प्रतीक - यौन प्रतीक निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

सातवाँ अध्याय 278 - 318

गिरिजाकुमार माथुर का शिल्प

2· काव्य भाषा और छन्द

काव्य-भाषा - माथुर की काव्य-भाषा - काव्य-भाषा का विकास - छायावादी काव्य-भाषा - बोलचाल की काव्य-भाषा - सपाट काव्य-भाषा माथुर की शब्द योजना - तत्सम शब्द - तद्भव शब्द - लोकभाषा के शब्द - विदेशी शब्द - वैज्ञानिक शब्द - स्वनिर्मित शब्द - विशेषण शब्द विशेषण - रंग योजना - माथुर की छन्द योजना माथुर का मुक्त छन्द - निष्कर्ष ।

उपसंहार 319 - 325

सन्दर्भ ग्रंथ सूचि ..... 326 - 338

पहला अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर : जीवन-रेखा परिवेश और व्यक्तित्व

पहला अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर : जीवन-रेखा, परिवेश और व्यक्तित्व

प्रत्येक रचनाकार के कृतित्व के समग्र और सार्थक मूल्यांकन केलिए उसके व्यक्तित्व का अध्ययन और विश्लेषण अनिवार्य है । क्योंकि रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रतिफलन अवश्य होता है । जब तक व्यक्तित्व का परिचय पूर्ण नहीं हो जाता तब तक काव्य का अध्ययन भी अधूरा ही रह जाता । अत: कवि या साहित्यकार की अन्तरात्मा को रचना-विवश करनेवाली आन्तरिक और बाह्य शक्तियों का पक्षधरता विहीन विवेचन ही नहीं उसके उन्मुक्त चिन्तन की पकड भी अनुसंधाता केलिए आवश्यक है, "किसी कवि के समग्र आकलन की दिशा में उनके व्यक्तित्व की निर्भ्रान्त धारणा और मोहमुक्त दृष्टि, उपयोगी ही नहीं अनिवार्य भी है ।"[1] उपर्युक्त कथन प्रयोगवादी नयी कविता के अग्रणी कवि गिरिजाकुमार माथुर की काव्य चेतना के सम्यक् अध्ययन के सन्दर्भ में सार्थक और समीचीन लगता है ।

व्यक्तित्व : प्रचलित मान्यताएं

एक व्यक्ति की सामाजिक परिवेश में प्रतिक्रिया करने की अपनी निजी शैली होती है । सरल शब्दों में यह शैली उस व्यक्ति का व्यक्तित्व है । उसमें बहिरंग और अंतरंग पक्ष का सम्मिलित प्रभाव परिलक्षित होता है । किन्तु व्यक्ति के सन्दर्भ में उसका अंतरंग पक्ष ही सबल है । मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को विभिन्न कोणों से जांचने परखने का प्रयास किया है । "व्यक्तित्व को उसके विशाल अर्थ में हम व्यक्ति के चरित्र का विश्लेषण बता सकते हैं । यह उनके विचारों, अभिव्यक्तियों में, उनकी स्थितियों एवं इच्छाओं पर आरोपित करके प्रस्तुत किया जाता है । अतः उसको व्यक्ति के जीवन-दर्शन के नाम से अभिहित किया जा सकता है[2] ।" यह व्यक्तित्व का एक पक्ष है । उसके विभिन्न पक्षों पर विभिन्न दार्शनिकों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं । एक दूसरे पक्ष पर प्रकाश डालते हुए रोस स्टैग्नर और चार्लस एम॰ सोले का कथन है "साधारण मनोविज्ञान में सुविधा केलिए एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तित्व पर जो असर पड़ता है वही व्यक्तित्व है[3] ।" वे आगे कहते हैं "साधारण मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का प्रयोग व्यक्ति की सामाजिक चेतना को सूचित करने तथा व्यक्ति के साथियों एवं उसके सहचरों पर जो प्रभाव पड़ता है उसी केलिए होता है । वैज्ञानिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व आन्तरिक प्रेरक शक्तियों, जैसी प्रेरणाओं एवं भावों केलिए तथा प्रिय तथा अप्रिय शक्तियों के साथ जो प्रतिक्रिया होती है, उसी केलिए प्रयुक्त होता है[4] ।" ग्रिगेरी ए॰ किंपिल एवं नोरमेन गारमेज़ी के मत में "व्यक्तित्व चरित्र का एक खास संगठन है और दूसरे अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं[5] ।" जाहिर है कि व्यक्ति कैसे दूसरों से तथा बाह्य जगत् की समस्याओं पर प्रतिक्रिया करता है वही व्यक्तित्व है । ये परिभाषाएं इस ओर बल देती हैं । यह भी सच है कि व्यक्तित्व में व्यक्ति के अन्तर्मन की प्रतिक्रिया अवश्य निहित है । पर साहित्य और साहित्यकार के

अध्ययन के सन्दर्भ में ये परिभाषाएं असंगत हैं। क्योंकि किसी पूर्व निर्धारित व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धान्त या परिभाषा के आधार पर कवि व्यक्तित्व का अध्ययन करना असंगत ही नहीं मूर्खता भी है। कवि व्यक्तित्व कुछ अलग चीज़ है जिसको समझने और परखने केलिए विशेष क्षमता की मांग है।

माता-पिता, पारिवारिक परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति, सांस्कृतिक अवबोध, जीवन संग्राम के मार्मिक अनुभव जैसे स्थूल व अति सूक्ष्म तत्वों के अद्भुत संयोग से ही प्रतिभा का व्यक्तित्व निखर उठता है। प्रत्येक प्रतिभा के सन्दर्भ में ये तत्व कभी कभी नितांत भिन्न तथा अजीब होते हैं। यह व्यक्तित्व उस प्रतिभा की रचनाओं में ही साकार हो उठता है। आत्मानुभूति ही काव्य के रूप में अभिव्यक्त होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व के प्रकाशन से जब अनुभूत्यात्मक संवेदनाओं की सृष्टि होती है तब काव्य व्यक्तित्व या रचना व्यक्तित्व का निर्माण होता है। "रचनाओं के माध्यम से जो रचना-व्यक्तित्व का रूप बनता है, वह उनके निजी व्यक्तित्व से अनेक आधारों पर अलग अवश्य है, परन्तु व्यक्तित्व की तमाम संगतियों का समन्वित रूप रचना व्यक्तित्व अपने में समन्वित कर लेता है।"[6] जाहिर है कि लेखकीय व्यक्तित्व निजी व्यक्तित्व की ही उपज है। अतः निजी व्यक्तित्व की जानकारी के बिना लेखकीय व्यक्तित्व का ज्ञान अधूरा ही रह जायेगा। इसलिए साहित्य-अध्ययन के सन्दर्भ में साहित्यकार के निजी व्यक्तित्व की तलाश अनिवार्य बन जाती है

जीवन-रेखा

माथुर का जन्म 22 अगस्त, 1919 को एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। ढाक के जंगलों, ऊँचे नीचे पठारों, ताड़ के वृक्षों, काली मिट्टीवाले खेतों, खजूरों के झुरमुट और गोलाकार टीलों से घिरे पुराने ग्वालियर राज्य।

पछार नामक कस्बा, जो अब अशोक नगर नाम से अभिहित है और मध्यप्रदेश का एक संपन्न व्यापारिक केन्द्र है, माथुर की जन्मभूमि है । टूटे खपरैल, सीले गलियारे, घुप्प अंधेरा, एकदम सुनसान परिवेश और उदासी, यह था उनके बचपन का वातावरण और चबूतरों से सम्बन्धित आत्माओं, अलौकिक अतीत, मठ और जादू और जन-साधारण में फैली अनेक किस्म स्थानीय घटनाओं की परछाइयाँ लेकर उनकी आत्मा में एक स्थायी उदासी बनकर पैठ गया[7] ।" बालक माथुर को इन धारणाओं पर विश्वास न होने के कारण उनकी आत्मा विद्रोह करना चाहती थी, लेकिन एक आंतरिक भय के वशीभूत होकर वे विद्रोह व्यक्त नहीं कर सके । लगता है यह भय उनके कवि व्यक्तित्व में अब भी विद्यमान है ।

जन्म से ही ज्ञान का जो परम्परागत गुण माथुर में वर्धमान था वह सुसंस्कृत वातावरण में पल्लवित एवं विकसित हुआ । उनकी माता मिडिल स्कूल की अध्यापिका थी साथ ही साथ हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा फारसी पढ़ी हुई विदुषी भी । पिता देवीचरण जी शिक्षक थे - मिडिल स्कूल के हेडमास्टर, कवि भी । सुशिक्षित माता-पिता की देखरेख में पले माथुर में बचपन से ही साहित्य की ओर विशेष लगाव होना स्वाभाविक ही है । किन्तु माता बीमारिन होने के नाते बालक माथुर मातृस्नेह से वंचित रहे जो बच्चे केलिए सबसे बड़ा संबल है । रुग्ण की अटूट छाया एक स्थायी उदासी बनकर उनके मन में पैठ गई । फिर उनका पालन-पोषण पिता की बारीक देखरेख में हुआ । ग्रामीण वातावरण में फैले हर संकट से बचाकर रखा गया । *ऐसे हर संकट से बचाकर रखकर* कौशल, युक्ति, बुद्धि और तर्क माथुर में पनपने लगे ।

बेगाना बचपन

बचपन से ही अकेलापन महसूस करनेवाले इस तीन वर्ष के बालक केलिए सबसे बड़ा आकर्षण थी रेल .... रेल की आवाज़ उसके मन में एक प्रकार की उत्सुकता भरती थी । अतः वह उसकी आवाज़ सुनते कोठों

निर्निमेष देखता रहता था । वृक्ष की इस रुचि के कारण पिताजी ने लकड़ी की रेल बनवा दी थी जिससे वह खेल सकता था । जब थक जाता था तब स्वयं मिट्टी की रेल और पहिया बनाता था । बालक माथुर का रेल की धाम से, ध्वनि से इतना नैकट्य हो गया कि अर्धनिद्रावस्था में भी रेल की छकछक को लयात्मक ढंग से निम्नलिखित शब्दों में दोहराता था ।

अरे लबालब
अरे ललालल
अरे ललालल
अरे लबालब ।[8]

मन को अभिभूत ये पंक्तियाँ वह आधी नींद में जागकर आँखें बंद किए हुए तब तक दोहराता था जब तक उसे पानी नहीं पिला दिया जाता था । स्पष्ट है कि शब्दों की लयात्मक प्रस्तुतीकरण के प्रति बचपन से ही माथुर विशेषतः आकृष्ट है ।

प्राप्य से अप्राप्य की ओर

अप्राप्य केलिए छटपटाना माथुर की विशेषता है । पिता और उनके तीन भाइयों के बीच माथुर अकेला लड़का था, इसलिए सब का स्नेह-पात्र बन गया । पर उनके मन में निरंतर यह शंका बनी रहती थी कि क्या वह इस स्नेह केलिए अधिकारी है ? प्राप्य को अस्वीकार कर अप्राप्य की ओर लपकने की छटपटाहट माथुर की इन पंक्तियों में अनुगुंजित है ।

"तुम कैसे अद्वितीय हो ओ मेरे साधक
जो तुम्हें प्राप्त हो सकता उसे त्यागते हो

जो निकट तुम्हारे उससे दूर भागते हो
जो मिला तुम्हें उससे विराग है अनायास
जो प्राप्त नहीं हो सकता उसे मांगते हो
जो प्रिय तुमको उसके प्रति भूले रहते हो
जो खो जाता, तुम मोती उसे मानते हो[9]।"

शैक्षिक शुरुआत

माथुर की शिक्षा की शुरुआत स्कूली ढंग से न होकर व्यक्तिगत रूप में हुई। माता, पिता दोनों की ओर से शिक्षा का सुअवसर मिला। एक ओर शिक्षक पिता शिक्षा के सम्बन्ध में उसकेलिए विशेष सहायक हुए तो दूसरी ओर माँ बीमारी में भी लाला भगवानदीन की "वीर"पंचरत्न" "चन्द्रकान्ता संतति" और "अलिफ लैला की कहानियाँ" उसे सुनाया करती थी इसके अतिरिक्त घर में ही "सरस्वती" की फाइलें "कविता कौमुदी", "उपनिषद्", "संस्कृत नाटक" "हितोपदेश" आदि ग्रन्थों को पढ़ने की सुविधा मिली। उनकी लम्बी कविताओं में इसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

माथुर में संगीत के प्रति रुचि जन्मजात थी। माँ गाती थी। मामाजी के घर में संगीत का अच्छा वातावरण था जहाँ वे छुट्टियों के दिनों जाया करते थे। माथुर में जो संगीत तत्व वर्तमान था वह मामाजी के निर्देश में अधिक मुखरित हो उठा। संगीत का प्रभाव उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य है

रात हुई पंछी घर आए
पथ के सारे स्वर सकुचाये
म्लान दिया - बत्ती की बेला
आँसु आ-आकर कुम्हलाये[10]।"

नौ वर्ष की अवस्था में माथुर ने रीतिकाल के कवियों की बहुत सी कविताएं बिना अर्थ समझे कंठस्थ की थी । विशेषत: देव, भूषण और पद्माकर की कविताएं । उनकी कविताओं में शब्दों का जो ताल-लय है उसके प्रति वे विशेष रूप से आकृष्ट थे ।

सन् 1929 में माथुर पहली बार सातवीं कक्षा में स्कूल में प्रविष्ट हुए । अभी तक शिक्षा घर पर ही हुई थी । बारह वर्ष के वय में मिडिल पास करके आगे पढ़ाई करने वे झाँसी आ गए । माँ तथा घर से बिछुड़न उनके जीवन का नया मोड़ था । सन् 1934 में चौदह वर्ष की उम्र में उन्होंने गवर्नमेंट इंटर कालेज झाँसी से हाई स्कूल पास किया ।

<u>माथुर में कवि का जन्म</u>

माथुर के कवि व्यक्तित्व के विकास में झाँसी का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । झाँसी में उनका साक्षात्कार त्याग और बलिदान की बुंदेल गाथाओं तथा 1857 के विद्रोह की ऐतिहासिक कथा एवं स्मारकों के साथ हुआ । "दुर्धर्ष पहाड़ों, चट्टानी नदियों, घने कुश जंगलों का वीर बुंदेलखण्ड, झाँसी की रानी के ~~अपराजेय के~~ अपराजेय संकल्प से उद्दीप्त ।"[11] उस समय झाँसी में कवित्त सवैये का वातावरण था । तब तक माथुर छन्द-शास्त्र में पारंगत हो चुके थे । 1934 के आसस महीने में तुलसी जयन्ती के उपलक्ष्य में एक बहुत बड़ा कवि-सम्मेलन हुआ । कवि सम्मेलन की समस्या-पूर्ति थी "ताज है"। माथुर ने कवित्त लिखकर बड़े चाव से कवि-सम्मेलन सुनने गए । झाँसी में उनके अग्रज और प्रेरक कवि सेवकेन्द्र जी के प्रयत्न के बावजूद भी उन्हें कवित्त पढ़ने का मौका नहीं मिला । पहली कविता की ऐसी विडम्बना हुई । हल्की बारिश में भीगते, लाछित दु:खी, चुपचाप ~~उन्होंने~~ उन्होंने मन में यह शर्त ली कि मैं ऐसी कविता लिखूंगा जिसे सुनने के लिए सब लालायित होंगे ।

सन् 1935 में गणेश-उत्सव पर कालेज में फिर एक कवि सम्मेलन आयोजित हुआ । उसकी समस्यापूर्ति थी "आरती"।" अब उन्हें दो कवित्त पढ़ने का सुअवसर मिला । अन्तिम कवित्त में उन्होंने घनाक्षरी छन्द का सुन्दर प्रयोग यों किया -

"शोभा मुखचन्द्र की अनोखी ना-बुझा ललाम
उषा उस छवि पर निज को थी वारती
रूप रस पान करने को कुमारि नट
मधुर ललाम शुभ साज काज सारती
सुन्दर सिन्दूर भरा तेजवान मुख देख
मति सकुचाई अरु मौन हुई भारती
कोटिन कलाधर की कला बलिहारी जात
गिरिजाकुमार की उतारें सब आरती ।"[12]

उपर्युक्त छन्द सुनकर सभी लोगों ने तालियाँ बजाकर माथुर की अत्यधिक प्रशंसा की । उससे वे कालेज के हीरो बन गए ।

सन् 1934-36 की अवधि में माथुर जी सारे श्रेष्ठ कवियों की कविताओं के संपर्क में आए । राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की कविताओं का उन्होंने अध्ययन किया और विशेष रूप से प्रभावित भी हुए थे । "नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है"[13] शीर्षक गुप्त जी कविता ने माथुर पर विशेष प्रभाव डाला है । साथ ही साथ उनपर छायावादी कवियों की कविताओं का भी विशेष असर पड़ा है । छायावाद की रोमानी संवेदना उनके काव्य की मूल संवेदना है । माथुर की "फिर मिलन होगा वियोगिनी" भाव और शैली की दृष्टि से महादेवी की "बीन भी हूँ मैं रागिनी भी हूँ" के अधिक निकट है ।

माथुर : फिर मिलन होगा वियोगिनी

नयन मुख मिल जायेंगे सब

सुमन मुख खिल जायेंगे अब

शशि किरण की बाह में फिर उर गगन

होगा वियोगिनी ।[14]

महादेवी : नींद की मेरी अचल निस्पन्द कण कण में

प्रथम जागृति थी जगत् के प्रथम स्पन्दन में

प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में

शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में

कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ ।[15]

माथुर की कविता की सराहना करते हुए कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा, "यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिखकर महादेवी जी का नाम लिखा दो तो कोई पहचान नहीं सकता ।"[16] सुनकर पहले अच्छा लगा पर बाद में उन्होंने पीड़ा और आत्मग्लानि के साथ मन में यह निश्चय किया कि जब तक वह अपनी मौलिकता खोज लेंगे, कोई कविता नहीं लिखेंगे । किसी का पिछलग्गुआ होना माथुर के तेजस्वी व्यक्तित्व को सहन न हुआ । परंपरा से हटकर एक नये मार्ग की खोज केलिए वे कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर नये नये प्रयोग करने लगे ।

सन् 1937 में माथुर ने विक्टोरिया कालेज से बी.ए. परीक्षा पास की । सन् 1937-39 उनकी काव्य-यात्रा के महत्वपूर्ण वर्ष है । इस कालावधि में "बिखरी स्मृतियाँ" नामक चार सौ पंक्तियों की प्रेमकथा और "तीसरा पहर" शीर्षक ऐतिहासिक कविता की रचना हुई थी । "तीसरा पहर" माथुर की वह कविता है जिसमें छायावादी भाषा और मुहावरे से

अलग होने का संकेत है । उसमें छायावाद की व्यक्तिनिष्ठता, आध्यात्मिक धुंध, उसकी सामन्ती शैली एवं अप्रस्तुत योजना को बहिष्कृत कर यथार्थ के नये धरातल को तलाशने का उपक्रम हुआ है -

"आज मेरे स्वर बनेंगे
सत्य के सन्देशवाहक
आज मेरे गीत होंगे
जागरण के रागिनी के ।"[17]

उस समय रचित माथुर की कविताओं में उल्लेखनीय है, 'नारी", "विजय", "महायुद्ध", "सात सागर का महाविष", आदि जो "कर्म वीर", "वीणा" जैसी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं ।

सन् 1938 की जुलाई में लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में माथुर एम०ए० का छात्र बने । एम०ए० में पढ़ते वक्त उन्हें आल इण्डिया स्टुडेंस फेडरेशन के वार्षिक उत्सव में भाग लेने का अवसर मिला । अधिवेशन के प्रेसिडेण्ड थीं कुमारी स्नेहप्रभा । उनके स्वागत और विदाई का भार माथुर को सौंपा गया । विदाई का गीत इस प्रकार था,

"दो क्षण तो मिल पाये हम
अब विदा की वेला आई
आज बुझा दीपक लेकर मैं
देने आए तुम्हें विदाई ।"[18]

उपर्युक्त पंक्तियाँ पढ़ते ही बिजली फेल हो गई । सब कहीं अंधकार छा गया । अध्यक्षा ने भावाकुल स्वर में यों कहा कि दीपक बुझ गया और चारों ओर तालियाँ गूँज उठीं । उससे माथुर सुप्रसिद्ध हो गये ।

सन् 1938-40 के बीच माथुर अपनी कविताओं में जो प्रयोग करने लगे वे दरअसल में आधुनिकता के सच्चे नमूने बन गए। उन्होंने इतना पतन आज कविता में यह विचार प्रकट किया है कि पहले नारी देवता थी यानी दूसरे उन्हें पूजते थे। अब वह पुजारी है। वह किसी देवी देवता को पूजती है।

"यही वह नारी है
माता से पहले जो बनती है प्रेयसी।"[19]

लीक से हटकर काव्य क्षेत्र में एक नयी दिशा तलाशने की अदम्य अभिलाषा के फलस्वरूप उनकी कविताओं में कुलशिकन का स्वर मुखरित है। माथुर ने शेक्सपियर, कीट्स और मिल्टन जैसे पाश्चात्य कवियों की कविताओं का गहराई से अध्ययन किया। कीट्स का बिम्ब विधान, शेक्सपियर की प्रभावात्मकता और विशेषण विपर्यय तथा ग्रांड स्टाइल से विशेष रूप से वे आकर्षित हुए।

सन् 1941 माथुर के जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष है। इसी वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम०ए० तथा एल०एल०बी० कि लखनऊ में निराला से उनका संपर्क बढ़ा। जिस तरह कविता की रूढ़ियाँ तोड़ने में निराला जी कटिबद्ध थे उसी पथ पर माथुर भी अग्रसर हुए। उनका पहला काव्य संग्रह "मंजीर" की भूमिका में निराला ने लिखा है "युक्तप्रान्त, दिल्ली और मध्य भारत के अनेक कवि-सम्मेलनों, विश्वविद्यालयों, कालेजों और गोष्ठियों में उनकी वाणी की नैसर्गिकता गूंज चुकी है। कितने ही तरुण और तरुणियों के मन उनके हाथ आ चुके हैं, उनके साथ हो चुके हैं। वे सही माने में प्रिय कवि और गायक हैं। मेरे अभिन्न मित्र हैं मैं अपने यहाँ, बाग में, पार्क में, गोमती किनारे, सम्मेलनों में, गोष्ठियों में, मित्रों की बैठकों में बहुत बार उनकी तेजोमयी मधुर आवृत्ति सुन चुका हूँ।"[20]

इस साल में कवयित्री शकुन्तला से उनका विवाह हुआ "विवाह भी कविता के माध्यम से हुआ।[21]"

<u>प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना</u>

सन् 1942 में पिताजी के इच्छानुसार झांसी में माथुर ने वकालत शुरू की। छ: महीने वकालत की ट्रेनिंग भी उन्होंने की। लेकिन पहली बार केस आया तो उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा ने उन्हें उस सीमित दायरे से निकलने को विवश किया। इसलिए कोर्ट जाने के बजाय वे दिल्ली चले आये। झांसी के खंडहरों वाले अकेलापन का वातावरण उनकी "बंजर की सूनी दुपहरी", "एसोसियशन्स", "भीगा दिन" *और सूनी दुपहरी?*, जैसी कविताओं में मार्मिकता के साथ उभारा गया है।

सन् 1943 में माथुर टाईफायड से पीड़ित हुए। आजीविका केलिए बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पांच रुपये केलिए 30, टेलर सुबवायर से अंधेर दिन तक चलना पड़ा। अलावा इसके वे कई बार बीमार हुए और उनकी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती गईं। फिर भी वे निष्क्रिय न रहे। इन परेशानियों, दिक्कतों और संघर्षों ने उन्हें तोड़ने के बजाय और भी उद्दीप्त की। परिस्थिति के समक्ष घुटने न टेकना उनकी एक बहुत बड़ी खूबी है। *"किन्तु जिन्दगी और* "किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को हमने कटुता से जूझकर संघर्ष किया है।[22]" दिल्ली रेडियो स्टेशन पर उनकी नियुक्ति इस साल में हुई। वैसे ही अज्ञेय के "तारसप्तक" में उनकी कविताएं संकलित करने से वे पूर्णतः प्रसिद्ध हो गये।

सन् 1946 में माथुर का दूसरा काव्य संग्रह "नाश और निर्माण" प्रकाशित हुआ। इसने साहित्य मर्मज्ञों का ध्यान आकर्षित किया।

सन् 1950 में जब राष्ट्रसंघ में माथुर की नियुक्ति हिन्दी प्रसाराधिकारी के रूप में हुई तब रेडियो से त्याग पत्र देकर अमेरिका चले गये । उन्होंने यूरोप और इंग्लैंड की यात्रा भी की । माथुर हिन्दी के ऐसे कवि हैं जिन्होंने अन्तराष्ट्रीय संस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया । विदेश में उदित टैक्नोलजी युगीन संस्कृति से उनका सीधा साक्षात्कार हुआ । मानवीय मूल्यों का विघटन, औद्योगिक सभ्यता के तनाव और ऊब ने कवि के सृजनात्मक धरातल को नया मोड़ दिया । उनमें नूतन वैज्ञानिक चेतना उदित हुई । वहाँ उन्हें सभ्यता की सीमाओं और आदमी की ऐतिहासिक नियति को भली-भांति परखने का अवसर भी मिला । एक आधुनिक नये वातावरण में अपने समस्त संस्कारों के साथ सफलतापूर्वक जीवन - यापन करने की कोशिश में उनकी दृष्टि जीवन के नए नए पहलुओं तक गई और इस प्रकार उनके समक्ष नये क्षितिज खुल गए ।

सन् 1952 में अमेरिका से लौटने के उपरान्त उनके "पृथ्वीकल्प" शीर्षक प्रतीकात्मक नाट्यकृति का सृजन हुआ उसका पहला ड्राफ्ट आकाशवाणी से प्रसारित हुआ । सन् 1953 में उन्होंने फिर से रेडियो में नौकरी प्रारंभ की । सन् 1955 में उनकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि "धूप के धान" का प्रकाशन हुआ । सन् 1956 में उन्होंने एक सांस्कृतिक शिष्टमण्डल में नेपाल की यात्रा की । इस साल में ही उन्होंने आकाशवाणी प्रतिनिधि मण्डल में रूस, चेकोस्लोवाकिया और स्विट्ज़रलैण्ड पर पर्यटन किया । तदुपरान्त उनका स्थानांतरण भोपाल, इलाहाबाद, दिल्ली और उड़िसा के रेडियो स्टेशनों में हुआ था ।
सन् 1958 में "जनम कैद" नामक भव्य नाटक प्रकाशित हुआ और 1961 में "शिलापंख चमकीले" नामक काव्य-संग्रह भी । इसी वर्ष उनके प्रतीकात्मक नाट्य काव्य "कल्पांतर" पर चेकोस्लोवाक रेडियो के अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला । उनके समीक्षात्मक निबन्धों का संकलन है "नई कविता सीमाएं और सम्भावनाएं ।" इसका प्रकाशन सन् 1966 में हुआ । उसमें उनका मौलिक विचार एवं निष्कर्ष प्रस्तुत है ।

सन् 1967 में माथुर को दिल्ली आकाशवाणी पर विविध भारती के तथा बाद में उसके स्टाफ ट्रेनिंग के निदेशक पद पर नियुक्त किया गया । सन् 1968 में "जो बन्ध नहीं सका" प्रकाश में आया । उसमें इतिहास विज्ञान और सौन्दर्य की परिधियां एक "कलात्मक शैली" में गुंथ कर आती दिखती है। सन् 1975 में प्रकाशित "भीतरी नदी की यात्रा" में कवि ने एक बार फिर प्रणय, रोमान और प्रकृति की तन्मयता को प्रतिष्ठित किया है । सन् 1977 में उनका काव्य संग्रह "साक्षी रहे वर्तमान" बाहर आया । और 1983 में उनका विज्ञान काव्य "कल्पान्तर" भी । समय के साथ इतना सीधा तथा तीव्र मुलाकात का अनुभव उनकी अन्य रचनाओं में बहुत कम है ।

माथुर के व्यक्तित्व के निर्माण में माता-पिता, परिवार, शिक्षा-दीक्षा आदि के साथ ही साथ परिवेश की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है । राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक परिवेश का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव उनके निजी एवं रचनात्मक व्यक्तित्व पर पड़ा है । "आज के वैज्ञानिक युग में जबकि मानव के अनुभव और संवेदना के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हो गया है, आर्थिक राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति के साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी देश के जीवन पर तथा साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला है ।[23]" माथुर के सन्दर्भ में यह प्रभाव और भी स्पष्ट है । क्योंकि बहुतों की पीड़ा को अपनी पीड़ा बना लेने तथा उसे प्रभावात्मक ढंग से संप्रेषित करने की क्षमता उनमें औरों से अधिक है । अतः माथुर के व्यक्तित्व के निर्माण में परिवेश की जो महत्त्वपूर्ण भूमिका है उसे हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते ।

1· <u>राजनीतिक परिवेश</u>

इण्डियन नेशनल कांग्रेस तथा विदेश में हुई सफल क्रान्तियों ने भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना को उकसाया । प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त देश में स्वाधीनता संग्राम का बोध गहराई से बल पकड़ने लगा ।

महात्मा गांधीजी सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रहों के ज़रिये स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते थे । यद्यपि शुरू शुरू में गांधीजी द्वारा चलाया गया आन्दोलन असफल निकला फिर भी लोगों के मन में उन पर विश्वास बढ़ रहा था । कांग्रेस के गरम दल का प्रभाव गांधी जी की तुलना में गौण था । असल में गांधीजी अपने समय के राजनीतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक थे । उनकी दृष्टि केवल स्वतन्त्रता आन्दोलन तक सीमित नहीं रही बल्कि रचनात्मक कर्म की ओर भी बढ़ी हुई थी । उन्होंने वर्ण-वैषम्य, आर्थिक-वैषम्य, छुआछूत आदि सामाजिक बुराइयों को मिटाने की ओर भी ध्यान दिया । साथ ही साथ वे लोगों के बीच प्रेम और सद्भावना जगाने का प्रयत्न भी करते रहे । उन्होंने विदेशी वस्तुओं का तिरस्कार करने तथा स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की प्रेरणा दी ।

कांग्रेस ने सन् 1929 में भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की । छात्रों और युवकों में राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ रही थी । हिरोशिमा और नागसाकी पर परमाणु बम की नृशंसता एवं अमानवीय प्रहार ने भी विश्व को युद्ध के सम्बन्ध में पुनः सोचने-विचारने केलिए विवश किया ।

देश के कवियों ने वर्तमान अधःपतनों, विषमताओं, का और विफलताओं को अपनी कविताओं में शब्दबद्ध किया । पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह और राष्ट्र प्रेम कविता का मूलमंत्र बन गया । कवियों ने जनता को अपने गौरवपूर्ण इतिहास से परिचित कराया । "इस प्रकार राष्ट्रीय तथा जातीय गौरव की भावनाओं को उद्बुद्ध कर प्रकारान्तर से सामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन को भी शक्ति तथा प्रेरणा दी ।"[24] उदाहरण के तौर पर मैथिलीशरण गुप्त कृत "साकेत", "द्वापर", "यशोधरा", सोहन लाल द्विवेदी कृत "कुणाल" सियाराम शरण गुप्त कृत "नकुल" वगैरह अनूठे हैं । भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि ने पूंजीवादी, समाजवादी व्यवस्था से अभिभूत वर्ग संघर्ष का चित्रण किया है । भगवतीचरण वर्मा ने "भैंसागाड़ी" में

समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण करके जन-मन में आक्रोश उत्पन्न किया ।

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूर पर
भू की छाती पर फोड़े-से
है उठे हुए कुछ कच्चे घर
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना
यह है लोगों का एक काम ।[25]

सन् 1940 में बंगाल में हुई हज़ारों की मृत्यु की ओर अंग्रेज़ों की उपेक्षापूर्ण दृष्टि, बेरोजगारी, वस्तुओं की बढ़ती कीमत आदि ने जन जीवन को असह्य बना दिया । 1942 में गाँधीजी के नेतृत्व में "भारत छोड़ो" आन्दोलन तथा अंग्रेज़ी वस्तुओं का बहिष्कार शुरू हुआ । अंग्रेज़ों ने इस आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया । अंग्रेज़ों के भयंकर अत्याचार के सामने भारतीय जीवन एक बार आतंकित होकर अपने विश्वास को खोने लगा । किन्तु देश की स्वतंत्रता केलिए आत्मबलिदान करने की प्रेरणा उस समय की कविताओं का मूल स्वर बन गया।

"कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे
जब महाकाल की माला में
माँ माँग रही होगी आहुति
जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में
क्षण भर भी पड़ असमंजस में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं ।[26]"

सन् 1942 की क्रान्ति के असफल होने पर भी इससे सारे देश में नव चेतना की लहरें उठीं । देश की जनता स्वतंत्रता केलिए कटिबद्ध थी । द्वितीय विश्वयुद्ध में जनवादी शक्तियों की विजय, विश्व में समाजवादी सरकारों की स्थापना आदि राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय कारणों ने अंग्रेज़ों को भारत छोड़ने केलिए विवश कर दिया था । "15 अगस्त, 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ । जनता अत्यधिक संतुष्ट हुई । उसके आनन्द की सीमा नहीं थी । देश के हर कोने में जनता ने आनन्दोल्लास मनाया । उसके वर्णन में शब्द असमर्थ है ।"[27] स्वतंत्रता असल में भारत केलिए एक वैचारिक पुनर्जन्म थी ।

स्वतंत्र वातावरण में मुक्ति मुक्ति की स्वच्छन्द सांस लेने की आशा के विपरीत जनता को एक भीषण स्थिति का सामना करना पड़ा वह है देश का विभाजन । भारत-पाकिस्तान विभाजन ने जनता की आशाओं और अभिलाषाओं को जड़ से उखाड़ फेंक दिया । लाखों की संख्या में लोग मारे गए । हिन्दू और मुसलमान दोनों क्रूर और हृदयहीन बन गए । पास पड़ोस के लोगों के गले काटे गए । जबरदस्ती धर्म परिवर्तन किया गया और स्त्रियों का बलात्कार किया गया । बच्चों की निर्मम हत्या की गई । सैकड़ों मंदिर-मसजिद तोड़े गये । गायों की हत्या की गई । "गोमांस खाने से इनकार करनेवालों को कतल कर दिया गया ।"[28] स्वतंत्रता के साथ ही साथ लाखों की तादाद में आदमी शरणार्थी बन गए । "जब कि हमारी चेतना एक स्वर्णिम भविष्यवाद से स्पन्दित हो रही थी कि शरणार्थी के काफिले आते और जाते दिखाई देने लगे .... और उस भयंकर रक्तपात के बीच आन्तरिक रूप से एक विघटन लगा गया, जो कहीं हमें हमारे दिमागों और दिलों में शरणार्थी बनाता चला गया ।"[29] "आधीरात की स्वतंत्रता" शीर्षक पुस्तक में उनकी दयनीय स्थिति के सम्बन्ध में यों कहा गया है कि "यह इतिहास का सबसे बड़ा मैग्रेशन है ।"[30]

जनता का सारा स्वप्न बेकार सिद्ध हुआ । साधारण लोगों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी । गुलामी नए रूप में अवतरित हुई । अब शोषक विदेशी सत्ता नहीं स्वदेशी पूँजीपति है । फलत: उच्च वर्ग संपन्न से संपन्नतर होता गया और निम्न वर्ग अभाव से अभाव की गर्त की ओर गिरता रहा । तात्पर्य यह है कि राजनैतिक दृष्टि से भारत की जनता स्वतंत्र नहीं बन सकी । जिन सामाजिक और नैतिक मूल्यों को लेकर आज़ादी की लड़ाई लड़ी थी उनका अवमूल्यन और विघटन हुआ ।

स्वाधीनता प्राप्ति से उत्पन्न रक्तपात और सारी दर्दनाक स्थिति ने माथुर जैसे आत्मचेता कलाकार के अंतरंग में विद्रोह एवं सहानुभूति की लहरें उठाईं । परिणामत: उनकी कविताएं भारत की आम जनता की पीड़ाओं और तकलीफों का सशक्त हस्ताक्षर बन गयीं । विभाजन की विभीषिका और शरणार्थियों के काफिले को देखकर द्रवित कवि की प्रतिक्रिया इन पंक्तियों में स्पष्ट है ।

बनकर शमशीर उठी जनता
बजता परबत का नक्कारा
नदियाँ बिजली बनकर उतर पड़ीं
हो गया लाल ध्रुव का तारा
धरती के यह जन फूल उठे बनकर मशाल
हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल ।[31]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या देश की विडम्बनाओं के ऊपर और एक त्रासदी थी । उस घटना ने जनमानस की बची हुई आस्था को विनष्ट कर दिया । उसका संवेदनात्मक संस्पर्श स्वातंत्र्योत्तर कविता में हुआ है । "सभी कवियों ने एक स्वर से उनकी साधना के महत्व को आंका और उन्हें युगद्रष्टा के रूप में स्वीकार किया ।"[32]

भारतीय जागरण के साथ ही साथ समस्त एशिया के जागरण का स्वर स्वातन्त्र्योत्तर कविता में अनुगुंजित है । एशिया में जन जागृति की जो लहर फैल रही थी उसकी प्रतिक्रिया ने कवि के मानस पटल को हिला दिया । एशिया के देशों में स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की भावना पनप रही थी । उसकी अभिव्यक्ति माखनलाल चतुर्वेदी, माथुर जैसे कवियों की कविताओं में लक्षित होती है । माथुर से प्रणीत "एशिया का जागरण"[33] में समूचे एशिया के जागरण का स्वर मुखरित है

सन् 1962 में चीन आक्रमण, सन् 1964 में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु तथा सन् 1965 में पाकिस्थानी-आक्रमण ने भी हिन्दी कविता को प्रभावित किया है । यद्यपि हम स्वतंत्र हुए फिर भी इस स्वतंत्रता के अस्तित्व को बनाये रखने केलिए सावधान रहने की ओर माथुर ने संकेत किया है । क्योंकि एक ओर विदेशी शासन से प्रभावित पूंजीपतियों का शोषण है तो दूसरी ओर विदेशी शत्रु के आक्रमण की संभावना है । माथुर की "पन्द्रह आगस्त" में उसकी अभिव्यक्ति हुई है ।

> शत्रु हट गया लेकिन उसकी
> छायाओं का डर है[34] 16

स्वतंत्रता के उपरान्त भी बहुत सारी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न सरकार ने किया है । पंचशील सिद्धान्तों के ज़रिये भारत ने शान्ति स्थापित की । अपनी आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भारत आत्मनिर्भर बनने का प्रयास कर रहा है ।

2. <u>आर्थिक परिप्रेक्ष</u>

भारत जनशक्ति तथा प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से एक संपन्न राष्ट्र है जबकि यहाँ का जीवन अभावग्रस्त है । क्योंकि 200 वर्षों की

परतन्त्रता ने उन्हें खोखला कर दिया । यह भी नहीं यहाँ के अधिकांश लोग किसान है जो आर्थिक दृष्टि से विपन्न हैं । दूसरी ओर दिन व दिन जनसंख्या बढ़ती रहती है । कृषक महाजनों के ऋणों से और जमीन्दारों के अत्याचारों से संत्रस्त थे । अमीरी और गरीबी ने वर्ग संघर्ष की सृष्टि की शिक्षितों की बेरोजगारी वर्तमान समाज की ज्वलंत समस्या बन गयी जिसमें बड़े बड़े शिक्षितों को नौकरी तथा व्यवसाय मिलना दूभर था । ग्रेजुएट और पोस्टग्राजुएट पच्चीस रुपये के महावार की नौकरी ढूढते फिरते थे और वह भी मिलती न थी[35] । चारों ओर निराशा का वातावरण छाया हुआ था । आर्थिक दशा तंगी पर थी । "निम्न-मध्यवर्ग की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । रोजमर्रा की छोटी मोटी जरूरतें मन को चोट पहुँचाने लगी थी । जो मन पहले ऊँचे आदर्शों और सपनों के पंखों पर उड़ा करता था उस पर छोटी छोटी भौतिक बातों की बोझ बढ चली थी । घर बाजार में बिकने को आ पड़ा था, दुकान, रसोई घर को ग्रसने लगी थी । नैतिक दृष्टि से यह पतन का युग था[36]।"

द्वितीय महायुद्ध, विश्वव्यापी मुद्रास्फीति, बंगाल के अकाल आदि से चोर बाजारी और मुनाफाखोरी आसमान को छूने लगी । भुखमरी फैली । चीजों के दाम इतने आश्चर्य जनक हो गये कि सुनकर विश्वास नहीं होता था । इस स्थिति की अभिव्यक्ति माथुर की निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।

भूख, बीमारी, गरीबी गंदगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिन्दगी
आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है[37]।"

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने केलिए एक ऐसी योजना बनायी जिसमें पूंजीपतियों के शोषण से मज़दूरों की रक्षा करने के कानून बनाना, व्यक्तिगत पूँजी के समानान्तर सार्वजनिक पूंजी के उद्योग और आर्थिक संस्थाओं का स्पष्टीकरण कर पूंजी पतियों के प्रभुत्व को कम करना पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश का सर्वतोन्मुखी विकास कर राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से संपन्न और आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करना आदि कार्यक्रम संलग्न थे। जवहरलाल नेहरू के इस कथन में उस समय की आर्थिक स्थिति का स्पष्ट रूप झलकता है। "अपनी दीर्घकालीन पराधीनता और विश्वव्यापी युद्ध और उसके परिणामों ने हमारे आगे बहुत सी अत्यावश्यक समस्याओं को एक साथ डाल दिया है। आज हमारी जनता केलिए भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी है और हम मुद्रास्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के बवण्डर में पड गए हैं।[38]

३. सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश

साहित्य समाज की अन्यतम विभूति है और समाज उसका महान संरक्षक। व्यष्टि और समष्टि की आशा-निराशा और अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। स्वतंत्रता-पूर्व के राजनीतिक जागरण की पृष्ठभूमि में सामाजिक आन्दोलनों का विशेष हाथ अवश्य रहा है।

भारतीय समाज में युग युगों से अनेक कुरीतियों का नग्न ताण्डव होता जा रहा था। सती-प्रथा, बाल-विवाह, जाति-भेद, छुआछूत, स्त्री-शिक्षा आदि उनमें उल्लेखनीय है। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, गांधीजी जैसे समाज सुधारकों ने इन्हें दूर करने का अथक प्रयास किया है। थियसोफिकल सोसाइटी का उद्देश्य धार्मिक कट्टरता और

अतिभौतिकता के प्रभाव को कम करके, उच्च धार्मिक तत्वों का प्रचार करना था । ब्रह्म समाज ने सामाजिक रूढियों को दूर करने का स्तुत्य कार्य किया रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के सच्चे स्वरूप को सामने रखा । श्री अरविन्द ने अपना नूतन दर्शन प्रस्तुत किया । उनके मानवतावाद में अध्यात्मवाद का सम्मिश्रण है तो विश्वकवि रवीन्द्र के मानवतावाद में आध्यात्मिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व संस्कृति तथा जाति-भेद को मिटाने की क्षमता अधिक है ।

गाँधीजी ने अन्धविश्वासों, पाखण्डों और सामाजिक कुरीतियों से घिरी हुई जनता में आत्मविश्वास, दृढता तथा अन्य चारित्रिक गुण भर दिए । उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर जन-जन के मन में क्रान्ति-भावना उत्पन्न करके उन्हें एकता के मार्ग पर अग्रसर किया । ग्रामों के उद्धार करने, नव चेतना की ज्योति विकीर्ण करने, निम्न जाति के लोगों को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयत्न भी उन्होंने किया है । तद्युगीन समाज में उन सबका व्यापक प्रभाव पडा है । यद्यपि स्वतंत्रता के उपरान्त भारत सरकार ने प्रचलित कुरीतियों और बुराइयों को दूर करके देश के नव निर्माण में ध्यान दिया है, फिर भी मध्यवर्ग की हैसियत में वांछित प्रगति नहीं हुई । पूँजीवाद के फलस्वरूप जिस निष्क्रियता, कुंठा, संत्रास और निराशा का उदय हुआ उसकी अभिव्यक्ति प्रयोगवादी नयी कविता की मूल चेतना बन गई । युग जीवन की विषम परिस्थितियों से बाहर निकालने के लिए तड़पनेवाले कवि व्यक्तित्व का स्वर इन पंक्तियों में मुखरित है ।

जहाँ अब दो तीन विमुख दुनिया है
मैं बीच में भ्रान्तों से टकराता हूँ
परिधियों से बाहर
विभक्त सत्य का
पहाड ढोता हूँ ।[39]

साहित्यिक परिवेश

माथुर के कवि-व्यक्तित्व पर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विरासत के साथ ही साथ साहित्य की विपुल संपदा का प्रभाव अवश्य हुआ है । वे हिन्दी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे, विशेषकर कविता के । ब्रजभाषा साहित्य के प्रति उनकी विशेष रुचि थी । लेकिन महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य जगत में जो हलचल मचा दी उसने समूचे आधुनिक हिन्दी साहित्य के रूप और भाव को बदल दिया । कोई भी परवर्ती साहित्यिक इस बदलाव से अप्रभावित नहीं रह सके ।

सन् 1900 में सरस्वती" पत्रिका की स्थापना करके उसके संपादक स्तम्भ में द्विवेदी अपने साहित्य सम्बन्धी नयी मानसिकता का पर्दाफाश करते रहे । "कवि कर्तव्य" शीर्षक निबन्ध में उन्होंने नए कवियों को जोखिम भरा काम अपने ऊपर उठा लेने का आदेश दिया । खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने का क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए द्विवेदी सचमुच में सही कविता की तलाश कर रहे थे । "हे कविते" में उन्होंने तद्युगीन तुकबन्दियों, समस्यापूर्तियों एवं नीरस पदावलियों के प्रति अपनी असहमति यों प्रकट की,

"सुरम्य रूपे रसराशि रंजिते
विचित्र वर्णा भरणे कहाँ गई
अलौकिकानन्द विधायिनी यह
कवीन्द्र कान्ते । कविते अहो कहाँ ?"[40]

परंपरा की लीक से कविता को मुक्त करने तथा उसमें नवस्फूर्ति भरा देने में महावीर प्रसादद्विवेदी जैसे महान व्यक्तित्व के उपरान्त मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जैसी प्रतिभाओं ने

हार्दिक सहयोग दिया है । उन्होंने परंपरित ब्रजभाषा का परित्याग करके गद्य और पद्य के स्तर पर खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया । यह सही अर्थ में हिन्दी साहित्य की एक युगान्तरकारी घटना थी। द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक उपलब्धि यह है कि उसने गद्य और पद्य की भाषाओं का अंतर समाप्त किया । उसने ब्रजभाषा की पद्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया । यह खड़ीबोली इतनी सरल और मधुर थी कि भारत भारती हिन्दी प्रदेश के किसानों में भी लोकप्रिय हुई[41]।" परिणाम यह निकला कि द्विवेदी युग में गद्य-पद्य भाषा की पृथकता समाप्त हो गयी और साहित्य याने खड़ीबोली साहित्य जन साधारण का बन गया ।

~~इतिवृत्तात्मक~~

द्विवेदीयुगीन कविता की राष्ट्रीय चेतना, इतिवृत्तात्मकता, सामाजिक सजगता तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण में मात्र युग की माँग ही नहीं बल्कि एक नयी संवेदना की अदम्य पीड़ा भी थी, "द्विवेदी ने ब्रजभाषा को छोड़कर गद्य और पद्य दोनों के लिए जो खड़ीबोली का माध्यम स्वीकार किया वह केवल माध्यम का परिवर्तन ही नहीं था । वस्तुत: वह उस जड़ीभूत संवेदना से मुक्त होने का प्रयास था जो ब्रजभाषा के वातावरण से जुड़ी हुई थी[42]।"

पराधीन देश की दयनीय दशा से जनसाधारण को सचेत बनाना तथा देश की मुक्ति संघर्ष के लिए उन्हें एक-छत्र के नीचे ले आना ही उस समय का काव्यादर्श था । मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने "भारत भारती" में देश की दुर्दशा का वर्णन करते हुए जनमानस में देश प्रेम बढ़ाने का कार्य किया है । पर उनका "साकेत" तथा हरिऔध जी का "प्रियप्रवास" दोनों हमें अपने अतीत सुवर्णकाल का बोध कराते हुए कर्मपथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं । अत: उस समय की कविता का मुख्य स्वर आदर्शवादी था और उस मानसिकता की तह में सामाजिक प्रगति की अदम्य अभिलाषा वर्तमान थी । इसलिए हम बेशक इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि द्विवेदी युग हिन्दी कविता का शैशवकाल होते हुए भी सामाजिक साहित्यिक प्रगति की तैयारी का भी युग था[43]।

द्विवेदीयुगीन कविता की अतिशय सामाजिकता और इतिवृत्तात्मकता पर प्रश्न चिह्न डालते हुए सन 1918 से एक नई काव्य-धारा का उदय हुआ वह है छायावाद । "छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता के रोमांटिक उत्थान की वह धारा है जिसमें सामंती एवं साम्राजी मान्यताओं के विरुद्ध भावनात्मक विद्रोह है । यह द्विवेदीयुगीन थोथी नैतिकता, इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता, सामाजिकता की प्रतिक्रिया होते हुए भी उसका ऐतिहासिक विकास है ।"[44]

छायावाद की सबसे बड़ी खूबी उसकी वैयक्तिक अनुभूति की अतिशय कल्पनात्मक अभिव्यक्ति है । उसमें व्यक्ति की आन्तरिक पीड़ा का वर्णन हुआ है । व्यक्ति जगत की प्रतिकूलताओं से निरंतर संघर्ष करके पराजित व्यक्ति का आत्मरुदन उसकी मूल चेतना है । छायावादी कल्पना जगत में अपने मनोनुकूल भावभूमि की सृष्टि करके एक तरह से बाह्य जगत की वास्तविकताओं से पलायन करता है । उसकी आदर्शवादी दृष्टि जीवन वास्तविकताओं से नितांत कटी हुई तथा कोरी कल्पना प्रसूत है । परिणामत: कविता द्विवेदी युगीन कविता के समान सरल तथा जन सामान्य की नहीं रह गयी ।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी जैसे महान व्यक्तित्व इस नयी काव्य धारा को समृद्ध करने में सक्रिय प्रयत्न करते रहे । उनकी सौन्दर्य चेतना कल्पना जगत की अनुपम छटा का पर्दाफाश करती है । पंत की "उच्छ्वास"[45] प्रसाद की "आंसु"[46] निराला की "जुही की कली"[47] जैसी कविताएं इसकेलिए पर्याप्त प्रमाण है । वास्तव में आधुनिक हिन्दी काव्य का सौष्ठव काल छायावादी युग है । पर अपनी अतिशय कल्पना, घोर वैयक्तिकता, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह जैसी विशेषताओं के बावजूद छायावादी कविता काव्य जगत में ज्यादा दिन तक टिक न सकी । इसका एक कारण तो सामाजिक सच्चाई के प्रति अपनी सर्द मानसिकता रहा तो दूसरा जन साधारण से उसकी असंपृक्ति था । और एक महत्वपूर्ण समस्या यह थी कि छायावाद के समर्थक और समृद्धक पंत, निराला जैसे कवि प्रतिभाओं ने ही उसकी

असामाजिकता की घोषणा की । पंत ने युगांत की उद्घोषणा की[48]।
फलतः सन् 1936 तक आते-आते छायावादी की प्रमुखता नष्ट हो गयी ।
एक नितांत नई मानसिकता की शंख ध्वनि बजाते हुए प्रगतिवाद का आगमन
काव्य संवेदना के विभिन्न आयामों को खोल देता है ।

छायावाद की वैयक्तिकता, काल्पनिकता आदर्शपरकता,
सूक्ष्मता तथा आलंकारिकता के प्रतिक्रिया स्वरूप सन् 1936 में जिस काव्य
धारा का जन्म हुआ उसे प्रगतिवादी या प्रगतिशील कविता की संज्ञा दी गयी।
"प्रगतिशील कविता ने अलौकिक और वायवीय स्तरों का निषेध करते हुए
मनुष्य को ऐतिहासिक एवं सामाजिक द्वन्द्वों के बीच पनपने का यत्न किया[49]।"

सन् 1936 में प्रेमचन्द के सभापतित्व में प्रगतिशील लेखक संघ की
स्थापना प्रगतिवादी काव्य-विकास में एक महत्वपूर्ण कदम थी । प्रगतिवाद
के प्रसारण का तथा उसको विशिष्ट अर्थ देने का श्रेय इस संघ को है ।
सन् 1937 में पंत के "ग्राम्या" का प्रकाशन इसका दूसरा पड़ाव है । उसमें सबसे
पहले मजदूरों तथा किसानों का यथार्थ चित्रण हुआ । छायावादी भावजगत्
से वास्तविक जगत की ओर हिन्दी कविता के इस आगमन के पीछे मार्क्स
के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिन्तन का प्रमुख स्थान था । निम्नवर्ग की
ज्वलन्तसमस्याओं की ओर नजरअन्दाज कर के काल्पनिक जगत में विचरण
करने की नितांत निरर्थकता से अवगत पंत, निराला, रामविलास शर्मा,
नागार्जुन, गिरिजाकुमार माथुर जैसे क्रान्ति दर्शी कवियों ने इस काव्यधारा
को प्रशस्त करने में सक्रिय कार्यकिया । उनकी कविताओं में किसान-मजदूर
के अभावग्रस्त जीवन की करुण कथा साकार उठी है । निराला की "भिक्षुक"[50],
"वह तोड़ती पत्थर"[51] जैसी छोटी कविताएं भी उस पूरे वर्ग का इतिहास
ही प्रस्तुत करती है । पंत की "युगवाणी"[52] में शोषण के प्रति तीखा विद्रोह
प्रकटकिया गया है ।

समाज में व्याप्त असंगतियों के प्रति निर्मम व्यंग्य तथा आक्रोश प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषता है । निराला की "कुकुरमुत्ता"[53] में पूंजीवादी व्यवस्था पर तथा नागार्जुन की "प्रेत का बयान"[54] में तथाकथित आधुनिक नेता लोगों पर कठोर व्यंग्य छेड़ा गया है ।

संक्षेप में हिन्दी के समूचे पुराने साहित्य तथा खड़ी बोली आन्दोलन से लेकर प्रगतिवाद तक के विस्तृत साहित्यिक पृष्ठभूमि में माथुर के कवि व्यक्तित्व का स्थापन हुआ है । प्रत्येक आन्दोलनों से प्रगतिशील तत्वों को अपनाते हुए माथुर काव्य जगत में अपना एक अलग पथ प्रशस्त करते रहे । छायावाद और प्रगतिवाद के संक्रमण काल में काव्य जगत् में पदार्पण किए माथुर जी का सृजनात्मक व्यक्तित्व अब चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए पा सकते हैं । जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण, मानवजाति के वर्तमान तथा उसके भविष्य के प्रति जागरूकता, विश्व मानवता की कल्पना जैसे श्रेष्ठ विचार माथुर के व्यक्तित्व में तथा उनकी सृजनात्मक उपलब्धियों में देख सकते है । इस प्रकार के महान चिन्तन एवं उच्च विचार केलिए उनकी पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विरासत ही अवश्य उर्वर भूमि रही है ।

उपर्युक्त परिस्थितियों से स्थापित माथुर का व्यक्तित्व सामान्य नहीं विशिष्ट है । यह विशिष्ट व्यक्तित्व ही उन्हें अन्य श्रेष्ठ साहित्यकारों की पंक्ति में खड़ा होने की क्षमता देता है । काव्यजगत की गुटबन्दियों से बिलकुल मुक्त रहकर अपने को युगानुकूल बनाने में माथुर अत्यंत दत्तचित्त है । इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उनका मन चिरयुवक का है । वे प्रत्येक चीज़ के प्रति आसक्त हैं । यह आसक्ति ही उन्हें समय समय के विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट करती है । जिन्दगी की विभिन्न परिस्थितियों से संघर्षरत माथुर का मन उत्तरोत्तर नरम होता रहा । समाज के निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति पर माथुर की आत्मिक तड़प उनके उत्कृष्ट व्यक्तित्व एवं उच्च विचार का परिचय दिलाता है । उनमें,

"कोई द्वेष ईर्ष्या नहीं क्योंकि भीतर से कुछ भरा पूरा मन है, अनमिली पाटों की तरह परिवार में बोतरफा प्यार और ममता से बना व्यक्तित्व।"[55]

माथुर ने अपने जीवन से डास कर कवि व्यक्तित्व से कभी भी अन्याय नहीं किया। स्थान, व्यक्ति और परिस्थिति का ख्याल किये बिना निडर होकर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करनेवाला माथुर ज़रूर विद्रोही कवि है। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में यद्यपि छायावादी संस्कार छाया हुआ है तथापि आगे की कविताओं में उनका विद्रोही व्यक्तित्व ही झलकता है। "झूठ, दंभ, आतंक और आडम्बर से विद्रोह उनकी सामाजिक ऐतिहासिक चेतना में सहज व्यक्त हुआ है।"[56] अतः हम कह सकते हैं कि उनका व्यक्तित्व पारिवारिक तथा पारिवेशिक संबंधों के सांचे में ढला हुआ है। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा पारिवेशिक उथल पुथलों की जलती ज्वाला से ऊर्जा पाकर काव्याकाश में ध्रुवतारा के समान अकेला चमकती रहती है।

संदर्भ

1. धनंजय वर्मा - निराला काव्य: पुनर्मूल्यांकन, पृ. 58

2. Personality can be broadly defined as the total quality of an invividual's behaviour and it is revealed in his habit of thought and behaviour, his attitudes and interests, his manner of acting and his personal philosopy of life.
Donald G.Marquis,Robert S.Woodworth-Psychology-A Study of [illegible]

3. Popular psychology generally uses the term personality as short hand way of identifying one individual's impact upon others.
Ross stagner Charles M. Scully - Basic Psychology - A percemptual Homeostatic approach - pp.567-68

4. In popular psychology the term personality is used to refe an individual's social stimulas value, the impression Man his friends and acquintances. Scientific psychology defin personality as a pattern of inner forces including perception, emotion, motivation and cognitive style as wel specific responses such as persons loved, feared and disli
Ibid, p.604

5. Personality is the unique organisation of fairly permanent characteristics that sets the individual apart from the other individual and at the same time determines how the others responed to him.

Gregory A Kimble z | Principles of General
Norman Gamer | Psychology, p.462

6. गंगाप्रसाद विमल - प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में, पृ॰15
7. डॉ॰ नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेई - आज के लोकप्रिय कवि गिरिजा कुमार माथुर, पृ॰6
8. वही, पृ॰8
9. वही, पृ॰9
10. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰2
11. आज के लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार माथुर - शकुन्त माथुर का लेख,पृ॰6
12. वही, पृ॰10
13. मैथिलीशरण गुप्त - मातृभूमि
14. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰71
15. महादेवी वर्मा - नीरजा, पृ॰36
16. डॉ॰ नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेई - आज के लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार माथुर, पृ॰12
17. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰37
18. वही, पृ॰6
19. सुमित्रानन्दन पंत [सं॰] - रूपाभ अंक-1, जुलाई 1938
20. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर की भूमिका

21. डॉ॰ नगेन्द्र, कैलाशवाजपेयी - आज के लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार माथुर - शकुन्तमाथुर का लेख, पृ॰12

22. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰26

23. डॉ॰ शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य, पृ॰13

24. वही, पृ॰51

25. भगवतीचरण वर्मा - भैंस गाड़ी

26. शिवमंगल सिंह सुमन - पथ भूल न जाना पथिक कहीं

27 It is hardly necessary to say that August 15, 1947 was hailed with joy all over India, and no words can adequately describe the tumultuous scenes of wild rejoicings witnessed in every city and every village.

R.C. Majumdar - History of Freedom Movement in India Vol.I p.819

28. None of them returned to eat the meat-~~xxxx~~

- Larry collins & Dominique Lapierre - Freedom At Midnight, pp. 287-88

29. कमलेश्वर - नई कहानी की भूमिका, पृ॰10

30. Larry collins & Dominique Lapierre - Freedom At Midnight, p.317

31. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰49

32. शम्भूनाथ चतुर्वेदी - नया हिन्दी काव्य और विवेचना, पृ॰72

33. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰18

34. वही, पृ॰56

35. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और संभावनाएं, पृ॰73-44

36. नामवर सिंह - हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, पृ॰46

37. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰92

38. जवाहरलाल नेहरू - स्वाधीनता और उसके बाद, पृ॰38

39. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ॰87

40. महावीर प्रसाद द्विवेदी- सरस्वती पत्रिका

41. प्रभाकर श्रोत्रिय - हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, पृ॰110

42. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृ.125
43. प्रभाकर श्रोत्रिय - हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, पृ.100
44. मुक्तिबोध - नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.33
45. सुमित्रानन्दन पंत - उच्छ्वास, 1922
46. जयशंकर प्रसाद - आँसू 1982 वि.
47. निराला - जुही की कली, 1922
48. सुमित्रानन्दन पंत - युगांत 1936
49. डॉ. राजेन्द्र मिश्र - समकालीन कविता सार्थकता और समझ, पृ.16
50. निराला - भिक्षुक 1923
51. निराला - तोड़ती पत्थर 1937
52. पंत - युगवाणी 1939
53. निराला - कुकुरमुत्ता 1941
54. नागार्जुन - प्रेत का बयान
55. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र - गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य, पृ.6
56. वही, पृ.6

दूसरा अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य - कृतियाँ

दूसरा अध्याय

माथुर की काव्यकृतियाँ

बदलते हुए साहित्यिक मौसम और समसामयिक माँग के अनुरूप अपनी काव्यात्मक मानसिकता को बदलने की रोचक क्षमता माथुर की प्रमुख खासियत है । इसलिए वे समय की आकांक्षाओं के साथ न्याय कर सके हैं । समय समय पर अपने को अधिकाधिक प्रासंगिक बनाने की भरसक कोशिश में वे सफल निकले हैं । उनकी काव्यचेतना प्रगतिशीलता के कूलों पर टकराते-टकराते निरंतर परिवर्तित और विकास केलिए आतुर रही है । परिणामतः माथुर किसी एक स्कूल के कवि नहीं रह गये । उनकी कविताओं में वैयक्तिक काव्यधारा की मूर्त भंगिमा के साथ ही साथ सामाजिक चेतना का अंकन भी गुंफित है । रूमानी भावुकता, नूतन बौद्धिक और वैज्ञानिक चेतना दोनों मिलकर माथुर की कविता में एक नई भावभूमि तैयार करती है ।

माथुर की काव्यचेतना के विभिन्न आयामों को परखने केलिए "मंजीर" से लेकर "कल्पान्तर" तक की काव्यकृतियाँ पर्याप्त कसौटी हैं। उनके गतिशील कवि व्यक्तित्व ने अपनी सृजन-यात्रा में अनेक मोड लिए हैं। इसका श्रेय उनकी सहज प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को है। उनकी गीतात्मकता, उचित रंगों की योजना, प्रतिक्षण बदलनेवाली अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति, नूतन छन्द और रूपाकारों का प्रयोग आदि विशेषताएं उनकी कविताओं को साहित्य जगत् के कोलाहलों से दूर हटा ही नहीं ले जाती, पृथक् स्थान का अधिकारी भी बना देती हैं।

माथुर की अब तक प्रकाशित काव्यकृतियाँ कालक्रमानुसार निम्न-लिखित हैं।

(1) मंजीर - 1941 (2) नाश और निर्माण - 1946
(3) धूप के धान - 1955 (4) शिलापंख चमकीले - 1961
(5) जो बन्ध नहीं सका - 1968 (6) भीतरी नदी की यात्रा - 1975
(7) साक्षी रहे वर्तमान - 1979 (8) कल्पान्तर - 1983

1. <u>मंजीर</u>

माथुर की प्रारम्भिक कविताओं का संग्रह है "मंजीर"। इसके गीतों में उन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भावकल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है। इस में छायावादी रंगीनी तो है, पर भाववस्तु वायवी नहीं। याने छायावादी भाषा को इस नये कवि ने रूप प्रदान किया है। छायावाद की वैयक्तिकता को हृदय के स्थान पर बुद्धि से स्वीकार कर मानव जीवन की अनुभूतियों को मूर्त रूप प्रदान करने केलिए उन्होंने नूतन छन्दों, नवीन बिम्बों, नव प्रतीकों का प्रयोग पहली बार इस काव्य कृति में किया है। "मंजीर में गिरिजाकुमार माथुर मुख्यतः

एक कोमल भावुकता गीतकार के रूप में हिन्दी-संसार के सामने आए थे । छायावाद के तीसरे दहर में जो शब्द, जो अर्धस्फुट ध्वनियाँ, जो संकेत, जो स्वर, जो लय हिन्दी काव्य के पाठक वर्ग द्वारा स्वीकृत हो चुके थे, गहराई तक न देखने से लगता है कि वही सामग्री गिरिजाकुमार भी उसे देने आए थे[1] ।"

"मंजीर" में संकलित "अभी तो झुम रही है रात", "फिर मिलन होगा वियोगिनी", "हृदय के स्वप्निल गगन में हंस चली तुम चाँदनी बन" जैसी कविताएं माथुर को भाव एवं शिल्प की दृष्टि से छायावादी कवि सिद्ध करती हैं । निम्नलिखित पंक्तियाँ इसकी परिचायिका हैं ।

"बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हलकी लाज
तुम्हारे ही महलों में प्राण
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिन्ह
जागती नींद नयन में प्रात[2] ।"

इसका आलम्बन कल्पनागम्य नहीं, मांसल और मूर्त है, यथार्थ इसलिए है कि उन्होंने जीवन की मिठास का रस लेने केलिए कटुता से जुझकर संघर्ष किया और युवावस्था से अपना मार्ग प्रशस्त किया ।

"प्यार बड़ा निष्ठुर था", "दूर की आशा" जैसी कविताओं में वैयक्तिक निराशा, दुःख और असफलता का चित्रण हुआ है । विरह की मार्मिक पीड़ा ने "प्यार बड़ा निष्ठुर था" में अभिव्यक्ति पायी है ।

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मह तपते यौवन में
रस बरसानेवाले आकर
विष ही छोड़ गये जीवन में[3]।"

स्पष्ट है माथुर की प्रारम्भिक रचनाओं का मूल स्वर रोमांस है। वह भी मांसल रोमांस। "इसमें उनका रोमानी स्वरूप ही अधिक मुखरित हुआ है। मांसल रोमांस की स्थूल अभिव्यक्तियाँ यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं[4]।"

"मंजीर" की कविताओं में वैयक्तिक निराशा और विषाद की झलक मिल जाती है। शिवकुमार मिश्र की राय में "इन कविताओं में कवि की छायावादी निराशा, विषाद और असफलताओं की मांसल व स्थूल अभिव्यक्ति करनेवाले उत्तर-छायावादी संस्कारों को देखा जा सकता है। प्रेम और सौन्दर्य मुख्य विषय हैं। रुग्ण रोमान और क्षय की छाप उन पर गहराई से अंकित है[5]।"

"मंजीर" का माथुर मात्र रोमांस का कवि नहीं बल्कि युगीन घटनाओं के प्रति भी सजग है। अन्य नये कवियों की अपेक्षा पहले से ही माथुर ने "मंजीर" की कविताओं में जगत और जीवन की समस्याओं को काव्य विषय बनाया। "कदम पर बम्ब वर्ष", "रेल का पहिया" जैसी कविताएं इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

"यदि आयेंगे अत्याचारी
सुन्दर सुन्दर नगर ग्राम को
खंडहर और वीरान बनाने

क्या होगा इन आँखों में रहनेवालों को
क्या होगा इन सपनों में बसनेवालों को[6]।"

"थोड़ी दूर और चलना है", "विदा समय" जैसी कविताएँ ... सादगी, भाव और गेयत्व की दृष्टि से प्रशस्य हैं।

"थोड़ी दूर और चलना है
मुखर अभी प्राणों की गुंजन
थकती जाती स्वर की कंपन
बीती सब जीवन की सिहरन
ओ गीतों के पथिक
इसी सुनसान विजन वन में रुकना है[7]।"

"मंजीर" की बहुत सारी कविताओं में प्रकृति की सुन्दर छवि का दिग्दर्शन हुआ है। इनमें उल्लेखनीय हैं "माँ", "संध्या", "प्रभात" आदि। इनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में आलम्बन रूप में प्रकृति का अधिक चित्रण हुआ है। कहीं कहीं प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप में है तो कहीं मानवीय भावों की छाया के रूप में है। "माँ" शीर्षक कविता में प्रकृति का सफल एवं रोचक चित्रण द्रष्टव्य है।

गोधूली में धूल भरी जब
वन से चरकर गायें आती
दूर मंदिरों में सांझ की
सांझ आरती सी बज जाती[8]।"

"प्रेम से पहिले" नामक कविता यथार्थवादिता, नवीन उपमान और मुक्त छन्द का नवीन प्रयोग है।

"शिशिर के क्षणों की उस मीठी दुपहरी में
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से[9] ।"

यह बात निःसन्देह कह सकते हैं कि "मंजीर" में तीन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है । पहली तो अछूती गीतात्मकता और रंगों की योजना । दूसरी नवीन छन्द तथा रूपाकारों के प्रयोग में नये बिम्बों के द्वारा आत्मीय एवं व्यक्तिगत अंतरंग अनुभूतियों की उद्भावना । तीसरी वर्णनात्मक शैली की कविताएं जिनमें बाह्य वास्तविकता जीवन और जगत् की समस्याओं के साथ ऐतिहासिक अवबोध भी लक्षित होती है । ये तीनों प्रवृत्तियां जो "मंजीर" में बीज रूप में मौजूद हैं आगे विकसित होती हुई आज तक वर्तमान हैं । इस काव्यकृति से ही स्पष्ट है कि माथुर ने कथ्य एवं शिल्प के क्षेत्र में अन्य नये कवियों से पहले ही नूतन प्रयोग अवश्य शुरू किया था । "मंजीर" की कविताएं बहुत सरल तथा पाठकीय संवेदना को उजागर करने वाली हैं । "इन रचनाओं की अभिव्यक्ति एक ताज़गी की ओर संकेत करती है, जो अपनी स्वाभाविक मधुरता के कारण पढ़नेवालों का मन अनायास अपनी ओर खींच लेती है[10] ।" इस सिलसिले में निम्नलिखित कथन सार्थक और समीचीन लगता है कि "श्री गिरिजाकुमार माथुर निकलते ही हिन्दी की निगाह खींच लेनेवाले तारे हैं । काव्य के आकाश से उनका बहुत ही मधुर और रंगीन प्रकाश हिन्दी के धरातल पर उतरा है । बोलवाले तार की तरह मज़बूत और स्वर से मिले हुए अपने पहले ही झंकार से उन्होंने लोगों का दिल ले लिया है[11] ।"

2. नाश और निर्माण

"नाश और निर्माण" माथुर का दूसरा काव्य संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1946 में हुआ । इसमें संकलित कविताओं में परंपरागत रूढ़ियों का सर्वनाश और युगानुकूल निर्माण की व्याकुलता की अभिव्यंजना हुई है ।

"यहाँ जीवन के दोनों पहलुओं-नाश और निर्माण-पर विचार किया गया है । नाश के अंतर्गत व्यक्ति के दुःख उसकी निराशा ऊब, घुटन आदि की अभिव्यक्ति मिलती है तो निर्माण पक्ष में कवि विषमताओं और संकटों को ललकारता हुआ दृष्टिगोचर होता है ।[12]" यह संग्रह प्रगति और प्रयोग का अभूतपूर्व संयोग है । इसकी कविताएं प्रयोगवाद और नयी कविता की समर्थ पीठिका हैं ।

"मंजीर" से नाश और निर्माण" तक आते आते कवि माथुर अपने छायावादी संस्कार से अलग हो जाते हैं और आधुनिक जीवन की कठोर वास्तविकता से संघर्ष शुरू करते हैं । यह द्वन्द्व कवि के काव्य चिन्तन में आए बदलाव को भी सूचित करता है । अतः इसमें एक ऐसा संघर्ष पाया जाता है जो पुराने के प्रति मोह तथा नए के प्रति आकर्षण रखता है । "नाश और निर्माण की कविताओं में एक द्वन्द्व बोध भी उभरा है यह द्वन्द्व नये के प्रति आकर्षण और पुराने के प्रति मोह के कारण हुआ है ।[13]" स्वयं माथुर के शब्दों में "विकास का यह पथ पहिली और अंतिम कविता की दूरी से स्पष्ट हो जायेगा । इन दोनों कविताओं के बीच दो युगों का अंतर है - एक अंधकार का दूसरा प्रकाश का ।[14]"

रंग, रस, रोमांस का एक नया धरातल "नाश और निर्माण" में उद्घाटित हुआ है । इसकी "रेडियम की छाया" "चूड़ी का टुकड़ा", "रेडियो कवि सम्मेलन" जैसी कविताओं में मानव जीवन की कोमल और मधुर अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है । "चूड़ी का टुकड़ा" में चूड़ी के टुकड़े के ज़रिये पूर्व मिलन की अभिव्यक्ति करनेवाला कवि रेडियम की छाया में रेडियम के अंकों की मधु छाया पर रात में पन्द्रह बजे की घड़ी की दो छाँहों के मिलन के द्वारा पूर्व मिलन को उभारता है जो नितांत भिन्न, नवीन एवं प्रतीकात्मक प्रयोग है ।

"एक रेडियम घड़ी कोने में जलती
इन्हीं रेडियम के अंकों की मद्धु छाया पर
दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था[15]।"

यहाँ आलिंगन और चुम्बन सांकेतिक रूप में चित्रित हैं।

"मेरे सपने बहुत नहीं है" में ऐसे एक कवि से हमारी मुलाकात होती है जो अपने लिए एक अलग दुनिया का निर्माण करनेवाला है। कवि जो सपना देखता है, इसमें कवि है, मोती सी चुनी हुई किताबें है, काव्य और संगीत की सिंधु है।

"नाश और निर्माण" में कवि का सामाजिक रूप अधिक उभर आता है। "इस संग्रह में आप इस युग के मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक, शारीरिक, मानसिक संघर्षों की उन दशाओं को पायेंगे जिनसे गुज़रकर वह एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक पहुँचा है[16]।" आज के यान्त्रिक युग में मानव जीवन मशीन सा बन गया है। अब जाड़ों की मिठास ज़हर हुई, प्यार मिट चुका, सभी आदर्श मिट्टी में मिल गये। वह चाँदनी रात में चाँदनी की सिल्हुट जैसा लगता है। उसका जीवन जीवनहीन मशीन जैसा बन गया है। उसकी अभिव्यक्ति "मशीन का पुर्जा" में हुई है।

"कुहरा भरा भोर जाड़ों का
शीत हवा में ठंडे सात बजे
xx xx xx
बटनों के बदले दो डोर बँधे हुए है
जिसके एक जगह चलते रहते काँटों सा
इसका जीवन जीवनहीन मशीन बन गया[17]।"

"वैशाली", "कबीर","बुद्ध", "राम" जैसी कविताओं में माथुर ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक आदर्श नायकों को आधुनिक सन्दर्भ में परखा है । अव्यवस्थित और भ्रष्ट आधुनिक समाज में उन आदर्श पुरुषों का अभाव कवि को खलता है ।

"आज लौटती है पदचाप युगों की
सदियों पहले का शिव सुन्दर मूर्तिमान हो
चला आता है धोंखिले इतिहासों पर
श्वेत हिमालय की लकीर सा
दीर्घ विदेशों के अशोक साम्राज्यों ऊपर
:: :: ::
वहाँ विजय हुई प्यार के एक घूँट से ।[18]"

कवि की दृष्टि उन महापुरुषों की ओर भी गयी है जो हमारे श्रद्धा के पात्र रहे हैं । राम-रहीम की एकता स्थापित करनेवाले "कबीर" प्रेम से विश्व पर विजय पानेवाले "गौतम बुद्ध" तथा युग युगों को पार कर अब भी जन मानस का शासन करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम "राम" उनमें प्रमुख हैं ।

अभिव्यंजना की नवीनता "नाश और निर्माण" की और एक विशेषता है । "बसंत की रात" में मुक्त छन्द का अपूर्व आकर्षक प्रयोग हुआ है ।

"आज है केसर रंग रंगे वन
गृह द्वार नगर तन
जिनके विभिन्न रंगों में रंग गई
फूल की रेशमी-रेशमी छाँहें ।[19]"

इस प्रकार माथुर ने "नाश और निर्माण" में परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ने तथा युगानुकूल निर्माण करने का प्रयत्न ही नहीं अनुभूति की प्रामाणिकता

पर भी वांछित ज़ोर दिया है । इसका मूलस्वर प्रणय तज्जनित निराशा और वेदना होते हुए भी अनुभूति का दायरा विविधात्मक है । जीवन की वास्तविकताओं का सतर्क चिन्तन तथा वैयक्तिक समस्याओं का सूक्ष्म चित्रण "नाश और निर्माण की सृजनात्मक पक्ष की प्रमुख विशेषता है ।

3. धूप के धान

माथुर की काव्यकृतियों में बेजोड़ है "धूप के धान" । यह संग्रह माथुर की ही नहीं बल्कि आधुनिक हिन्दी कविता की भी महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है । "धूप के धान"की कुछ रचनाएं शिल्प तथा संवेदना की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं । वस्तुत: प्रारम्भ से ही शिल्प के प्रयोग में कवि की प्रतिभा प्रभावोत्पादक रूप से व्यक्त हुई है ।"[20] कैलाश वाजपेयी के निम्नलिखित कथन में भी इसकी ओर संकेत अवश्य हुआ है । "धूप के धान" की तो काफी रचनाएं ऐसी हैं जिनमें आधुनिक भाव-बोध तथा सौन्दर्य-दृष्टि के अछूते आयाम खुले हैं .... शिल्प की दृष्टि से "धूप के धान" की रचनाएं और भी अधिक सामन्त हैं - बिम्बों के ऐसे अनेक प्रकार जो अब तक हिन्दी कविता में पहले कभी न प्रयुक्त हुए थे, पहली बार इस संग्रह की रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कविता में आए ।"[21] रंग, रस,रोमांस की प्रवृत्ति इसमें भी है । कवि की अनुभूति का क्षेत्र यहाँ अत्यन्त विस्तृत है और उनकी दृष्टि व्यापक भी । भविष्य के प्रति उनका विश्वास और आस्था तथा सामाजिक चेतना की प्रखर अनुभूति इसमें प्रकट होती है ।

"धूप के धान" की "नई भारती", "युगारम्भ , "एशिया का जागरण" जैसी कविताओं में माथुर का विश्वबंधुत्व और मानवतावादी स्वर अनुगुंजित है ।

"चीन से पाताल तक झोल मारा
एक संस्कृति डोर में है बांध डाला।[22]"

विश्वम्भर मानव का यह कथन यहाँ सार्थक प्रतीत होता है, "धूप के धान" में पहली बार गिरिजाकुमार माथुर ने समस्त एशिया को अखण्ड रूप में देखा है और उसकी आत्मा को अभिव्यक्ति दी है। जैसे छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पंत ने विश्वव्यापी समस्याओं का अपने ढंग से समाधान किया है वैसे ही प्रयोगवादी कवियों में उन्होंने उन्हें उठाया है।[23]" जाहिर है कि माथुर की कविताओं में विश्वात्मा की धड़कन और काव्य कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। इस सन्दर्भ में कवि की प्रयोगात्मक उड़ान भी सार्थक निकलती है।

माथुर की "पन्द्रह अगस्त" राष्ट्रीयता की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। इसमें कवि को भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति से जो प्रसन्नता होती है, उससे अधिक चिन्ता होती है नवनिर्माण की। इस स्वतंत्रता को आगे भी बनाये रखने की चेतावनी माथुर ने इस कविता में यों दी है।

"आज जीत की रात
पहरुए सावधान रहना।[24]"

क्योंकि

"शत्रु हट गया लेकिन उसकी
छायाओं का डर है।[25]"

"प्रौढ़ रोमांस" में माथुर वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठकर सामाजिक बन जाते हैं।

"हमने भी सोचा था पहले
इस जीवन में

सबसे अधिक मूल्य होता कोमल भावों का
पर ठोकरपर ठोकर खाकर हमने जाना
तोल तराजू के पलड़ों में
मन के संघर्षों से बाहर के संघर्ष
अधिक बोझिल है ।"[26]

माथुर की "शाम की धूप" में आधुनिक मानव की बदली हुई ज़िन्दगी का चित्रण लक्षित होता है ।

"किन्तु इसका है गम नहीं कुछ भी
बन गया अब अभाव ही जीवन
छिन्न हैं अब समाज के सब तार
मानवी बंधनों की टूट गई है कड़ियाँ
ज़िन्दगी का बहाव बन्द हुआ
फकत धार रुकी, न्यून हुई, सूख गई
क्योंकि उद्गम ही कट गया उसका ।"[27]

"धूप के धान" की बहुत सारी कविताएं प्रकृति से सम्बन्धित है । "सिन्धु तट की रात", "डाकबनी" आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । "न्यूयार्क की एक शाम", "न्यूयार्क में काल" जैसी कविताओं में विदेशी प्रकृति का भी सौन्दर्यांकन हुआ है जो उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है ।

"देश काल तजकर मैं आया
भूमि सिंधु के पार सलोनी
उस मिट्टी का परस छूट गया
जैसे तेरा प्यार, सलोनी ।"[28]

"पहिये" में पहिये चिरपरिवर्तित एवं विकसित मानव संस्कृति और सभ्यता का

प्रतीक है जो अनादि काल से जूझता रहता है ।

"मानव की प्रकृति विजय का पहला सूत्रपात
घोड़े की विजय वनस्पति पर
ईश्वर पर पहली विजय
चिरंतन मिट्टी की ।"[29]

कुछ कविताओं में आधुनिक वस्तु प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । प्रतीक योजना की दृष्टि से "तैंतीसवीं वर्षगाँठ" नामक कविता बेजोड़ है । "चन्द्रिमा" में कवि ने नूतन बिम्बों की सृष्टि की है । "टाकवनी" में जहाँ एक ओर वातावरण निर्माण के लिए जनपदीय (बुंदेल खण्ड) उपमान प्रतीक और शब्द योजना का आधार लिया है वहाँ दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ के शिल्प का प्रथम बार प्रयोग किया है । "शाम की धूप" में उर्दू की छोटी बहर को तोड़कर उसके काल मान और लय के आधार पर नूतन मुक्त छन्द रचा है । इसी प्रकार "मरो साम की सांझ" का छन्द गज़ल के काल मान पर लिखा गया है । "चाँदनी गरबा" का छन्द एक गुजराती लोकगीत से लिया है जिसे गरबा नृत्य के समय गाया जाता है ।

"उभरे रोएं छुआ गई है चाँदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चाँदनी
चंचल नयी गोरी हिरनी चाँदनी ।"[30]

"सिंधु तट की रात" और "हेमन्ती पूनो" में छन्द और शब्द योजना की नवीनता द्रष्टव्य है । "इतिहास" माथुर के बृहद् काव्य "पृथ्वीकल्प" का अपूर्ण अंश है और "इन्दुमती" उसका काव्यरूपक है । "दियालोक का यात्री" में माथुर ने अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करनेवाले मनुष्य के भविष्य की ओर संकेत करते हुए भाषा का संस्कार करने का प्रयास किया है ।

"एक ही पथ है कि जिसके छोर दो हैं
विष इधर है उधर अमृत, मोड़ दो हैं
तो सुधा का छोर छूकर लौट आया[31]।"

इसके अतिरिक्त कुछ सुमधुर गीतें भी इस संकलन में मिल जाते हैं जिनमें नया एवं सफल प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि "धूप के धान" की रचनाओं में माथुर ने संवेदना और शिल्प के क्षेत्र में अनेक नूतन एवं सफल प्रयोग किये हैं। इसमें कवि ने काव्य क्षेत्र के अछूते और अनदेखे अंशों का असाधारण पूरी सफलता के साथ किया है। "धूप के धान में यद्यपि एकाधिक कविताएं प्रणय और रोमांस की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं, फिर भी उनमें कवि की सामाजिक दायित्व की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। कवि का अनुभव-क्षेत्र विस्तृत है, उसकी दृष्टि व्यापक। अब उसके स्वर में आक्रोश और तिक्तता के स्थान पर संयम और दृढ़ता है। कुल मिलाकर इस संग्रह की रचनाएं अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ हैं। यहाँ कवि ने मानसिक ग्रंथियों और संबन्धों से अधिक महत्त्व सामाजिक संबन्धों को दिया है[32]।"

4. शिलापंख चमकीले

"शिलापंख चमकीले" एक विचार-प्रधान काव्य-कृति है। "इसमें भावना के स्थान पर चिन्तन की प्रधानता है[33]।" माथुर की जीवन दृष्टि से उद्भूत एक प्रतीकात्मक नाम है "शिलापंख चमकीलें"। उन्होंने "प्रक्रिया" शीर्षक आरम्भिक गद्यांश, "चन्द्रकान्तों की आत्मा" और "अंधशिलाओं की दुनिया" नामक कविताओं में इसका प्रतीकार्थ स्पष्ट किया है। उन्होंने "प्रक्रिया" में यों कहा है -

"चमकीले पंखों वाली शिलाएं
विराट् शिलाएं जो चमकदार पंख फैलाकर उड़ जाती हैं
शिलाएं जो वास्तविकताओं - सी कठोर और
                    भावनाओं सी गहन हैं
जो दीप्तमान हैं और शून्य में तैर जाती हैं ।
यही तो चारों ओर देखती है [34]।"

उपर्युक्त पंक्तियों में शिलाओं की कठोरता, गहनता, कालिमा, चमक और विराटता के द्वारा कवि किसी व्यापक दीप्त और गहन आन्तरिक सत्य का व्यंजक बनाना चाहता है । जिस प्रकार चमकीली शिलाएं पंख फैला कर उड़ गयी हैं उसी प्रकार आदमी का पिछला सब कुछ खो गया है । कवि शिलाओं के प्रतीकार्थ को स्वप्न अतीत वैभव के मोह तक ला कर छोड़ देता है । यह भी एक खिन्नता, उदासी, और निराशा के बोझिले वातावरण के बीच जहाँ "इकाई के प्रति" व्यक्त किया गया उसका विश्वास भी खो देता है । "प्रक्रिया" की अपेक्षा उनकी कविताओं में यह अधिक स्पष्ट होता है ।

"यह मैं
मेरा व्यक्तित्व बोध
जन-जीवन का उपभोग चरम
पंखों सी गिरी शिलाएं
जिस की चमकदार
पंखों की नियति छूट जाना
पर्वत की नियति शिला होना
दुःख की अनुभूति नियति जन की
आगम की नियति विजय होना [35]।"

पंखों सी गिरी शिखाओं की चमक कवि के व्यक्तित्व का अतीत गर्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है । आधुनिक जीवन की संकुलता से ग्रस्त कवि स्वाभाविक रूप में कह उठता है -

"तप-भ्रष्ट मन सा विकल हुआ
जिस दिन विश्वास, स्वप्न प्यार यह
याद बना आकुल
परियाँ शिखाएं स्याह
वर्तमान आहत
भविष्य: अंधकार यह ।"[36]

"परियाँ शिखाएं स्याह" कवि के विगत जीवन की रूमानी निराशा का परिचायक है । "वैयक्तिक जीवन के निराशा - उदास रूमानी अतीत के भग्न वैभव की छाया में सहज रीति से उपजे प्रतीकों को कवि ने "प्रक्रिया" में मानवमात्र की नियति का व्यापक सन्दर्भ देकर अतिरिक्त अर्थ देने की चेष्टा की है और इसलिए उसके कथन में वास्तविकता के स्थान पर अतिरंजना और भावुकता की मात्रा अधिक हो गई है ।"[37] वास्तव में उनके मन में जिस भावना ने कल्पना बिम्बों के साथ ही साथ संवेदनापूर्ण भावों को जन्म दिया था वह परिवेश और चेतना के साथ मिलकर आधुनिक भावबोध के रूप में विकसित होती हुई है ।

"शिलापंख चमकीले" के "सूरज का पहिया" आधुनिक भाव-बोध से युक्त एवं अभिव्यंजकता की सूक्ष्म, संयमित नवीन भंगिमाओं से अनुस्यूत एक परिष्कृत गीत है । "धूप के धान" के "पहिया" के समान पहिये के प्रतीक के सहारे आधुनिक जीवन की गतिशीलता तथा परिवर्तन की प्राकृतिक विवशता को कवि ने व्यक्त किया है ।

"पांव में अनीति के मनुष्य कभी झुके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी बुझे नहीं।"[38]

"विद्याधरी" अभावों से पीड़ित मानव की दयनीय दशा का चित्रण है। आज महल, मंडप व अटारियों के स्थान पर टूटे मकान स्थित हैं। उनका जीवन दुःखों लाचारियों से परिपूर्ण है। वे अनगिनत चिकट फटे चिथड़ों में अपने शरीर को लपेटे बैलों को चराते घूम रहे हैं -

"कथागीत है सिर धुनते
टूटे खपरों के सामने
चिथड़ों में अनगिनत चिकट
.. .. ..
दुःख, रोग, रंज, लाचारियां।"[39]

"क्रानिक मरीज़" वर्तमान मानव जीवन की ऊब, घबराहट और बेचैनी की कविता है। मनुष्य का सारा विश्वास नष्ट हो गया। अब उसके मन में अनिश्चितता, आकुलता और अनास्था विद्यमान है।

"जीवन अपाहिज है
बेचैनी बोरियत
आशंका आकुलता, चिन्ता, अनास्था
कमज़ोरी, ज्वालामुखी
बदमिज़ाज नुक्ताची
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन।"[40]

"संत" शीर्षक कविता में माथुर ने संत को चालू संवाददाता के रूप में स्वीकारा है। उसमें मध्यवर्गीय जीवन की अभिव्यक्ति हुई है।

"डाक का संवाददाता है
हर घर में निजी सुख-दुःख कहानी
लिए आता है
मगर मन चाहता है
वह अभी आए
हँसी लाए
खुशी लाए ।"[41]

'अनकही बात' माथुर का मार्मिक गीत है । "इसकी सौन्दर्य-भावना में रीति कवियों जैसी परिपक्व रसमयता झलकती है और आधुनिक भावबोध की आत्मीयता भी ।"[42] 'खट्टीमिट्ठी चाँदनी' कवि की चाँदनी विषयक रचनाओं में अपना अलग अस्तित्व रखती है । चाँदनी यहाँ मात्र उजाली रात की रोशनी नहीं है, वह कवि के प्रेरक भाव स्रोत का सुकुमार प्रतीक भी । इसके द्वारा प्राप्त जीवन रस में केवल मधुर ही नहीं, कटु-तिक्त खट्टे मीठे आदि अन्य रसों का भी समावेश हुआ है । इसके कारण कवि की अनुभूति साधारण रूमानी स्तर से सर्वथा भिन्न अनुभव की विविधता से सिक्त और पकी हुई दिखाई देती है । 'हब्श देश' में माथुर ने आफ्रिका महाद्वीप को काव्य विषय बनाया है जो उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है । उन्होंने वहाँ के उत्थान पतन के साथ ही साथ नदियों, पर्वतों, जंगलों, पक्षियों, विशिष्ट स्थानों, जातियों, वस्तुओं एवं अद्भुत दृश्यों का विवेचन करने के साथ ही साथ उसकी भावी उन्नति पर विश्वास भी प्रकट किया है ।

"इस मिट्टी के द्रव्य, धातु, रस
मनुज, जीव, वन, नद, मरु पर्वत
में दीपित है
उसी अग्नि की व्यापक-काया
वही अग्नि देशों से उठकर
मुक्ति उषा बनकर आएगी ।"[44]

यहाँ माथुर का आशावादी स्वर मुखर है । नवीनतम भावों एवं विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने केलिए माथुर ने अनुनातम शिल्प को अपनाया है । इस संग्रह की कविताओं में ऐसे अनेक स्थल उपलब्ध हैं जहाँ बिम्ब विधान की यह विशिष्ट शिल्प शक्ति अपने पर्याप्त विकास रूप में सामने आती है ।

1. "अन्तहीन ओस सी रात"[45]
2. "धूप का गोटा लगी
   छतों की किनारियाँ"[46]

उत्कृष्ट एवं परिष्कृत वर्ण बोध और सादृश्य से संश्लिष्ट प्रत्यक्षीकरण इनके बिम्बों की विशेषता है । शब्दार्थ को नया संस्कार देकर भाव का संवाहक बनाने की उनकी अद्भुत क्षमता उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होती है । "शिलापंख चमकीले में जहाँ एक ओर खट्टमिट्ठी चाँदनी जैसी मधु प्रगीत रचनाएं हैं, वहीं दूसरी ओर "इब्ना देश" जैसी उदात्त शैली में लिखी लम्बी ऐतिहासिक कविताएं भी । जहाँ एक ओर "क्रानिक मरीज़" में कवि का दृष्टिकोण अत्यधिक तीखा और व्यंग्ययुक्त हो गया है, वहीं संघर्ष और तिक्तताओं की चोट से भरी "व्यक्तित्व का मध्यान्तर" जैसी रचनाएं भी हैं, जिनमें न केवल नई संवेदना का अनुभव होता है, बल्कि काव्य की नवीनता भी अपना अमिट छाप छोड़ जाती है ।[47]

जहाँ तक शब्द योजना का सम्बन्ध है "शिलापंख चमकीले" में नूतन शब्दों का सार्थक प्रयोग किया है । "प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में कवि ने अपनी पिछली कृतियों की परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए ऐसी शब्दसूची दी है जिसमें कुछ तो नए रचे हुए सामाजिक शब्द और विशेषण हैं अथवा ऐसे शब्द भी हैं जो कविता के क्षेत्र में प्रथम बार प्रयुक्त किए गए हैं ।"[48]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इतिहास के प्रति सजगता, मानव मूल्यों की ओर झुकी हुई चेतना, मानव भविष्य के प्रति शुभकांक्षा, प्रगाढ

गीतिमयता और वस्तु को स्थापित करनेवाली व्यंजक बिम्ब योजना, शब्द योजना आदि शिलापंख चमकीले के सशक्त पक्ष है । उसमें उनकी आस्थावादी मानसिकता का पर्दाफाश हुआ है । "शिलापंख चमकीले की रचनाओं में युग का यथार्थ पूरी तरह अभिव्यक्त हुआ है । साथ ही भविष्य के प्रति आस्था भी इन कविताओं में दृष्टिगत होती है । महान विषमताओं के बीच निरंतर असफलता से संघर्ष करते रहने के बावजूद कवि भविष्य के प्रति आस्थावान है ।"[49] निस्सन्देह माथुर की काव्य-यात्रा में शिलापंख चमकीले और एक मील पत्थर बन गया है ।

5. <u>जो बंध नहीं सका</u>

माथुर का पाँचवाँ काव्य संग्रह है "जो बंध नहीं सका" । उसमें कवि की बहुआयामी प्रतिभा अपने पूरे वैशिष्ट्य और मार्मिकता के साथ फिर एक नये रूप में प्रकट होती है । यह काव्य-कृति नयी कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । उस संग्रह को कवि ने तीन खण्डों में विभक्त किया है - "इतिहास की पीड़ा", "काल दृष्टि", और "प्रतिबिम्बों का मधु" ।

"इतिहास की पीड़ा" नामक खण्ड में माथुर ने इतिहास की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है । उसमें आधुनिकता बोध के विभिन्न आयामों की झलक मिल जाती है । आज के आम आदमी के चारों ओर अतिपरिचय फैला हुआ है, वह भीड़ में भी अकेलापन महसूस करता है। वह विसंगतियों का शिकार है । अस्तित्व की पीड़ा के कारण वह फालतू हो गया है उसका अकेलापन फालतू होने की मनस्थिति की देन है । इस अकेलापन की अभिव्यक्ति "दो पाटों की दुनिया", "सत्य का अपराध : एक स्वप्न" जैसी कविताओं में हुई है । आज की दुनिया में चिन्ता,

यौनिकता, नैराश्य और उलझनों के कारण व्यक्ति दिग्भ्रमित हो जाता है। इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति "कुनाबोर्ध" में हुई है। "इतिहास का सिंहासन" में राजनीतिक हरकतों पर व्यंग्यात्मक दृष्टि डाली है। "इतिहास एक आदिम न्याय" में जय-पराजय को "आदिम न्याय", "इतिहास का एक बच्चा" में इतिहास को "अंधा", "बहरा", "गूंगा" "लंगड़ा" और "बच्चा" कहा गया है। "इतिहास : विकृत सत्य" में सत्य विकृत हो गया है। "अर्ध आधुनिकों की बासफित" में इस बेईमान दुनिया में अस्मिता की खोज में भटकनेवाले मानव का मार्मिक चित्रण हुआ है। "पत्तीदार रोशनी का दम्भ" में एक ऐसी ग्रामीण रूप का दर्शन होता है जो आधुनिक साज-सज्जा से अलंकृत हो। "अग्नि की शेष परीक्षा", "अन्तिम आत्महत्या" तथा "सितम्बर 1966" में युद्ध के दुष्परिणामों का जीवन्त चित्रण हुआ है।

"बीत गई बीसवीं सदी
तीन तिहाई
बुढ़िया माई
पाई पाई
पैदा होते ही मैं आई
हुई लड़ाई
और लड़ाई
और लड़ाई
फिर और लड़ाई हुई नहीं।"[50]

"काल दृष्टि खण्ड" में देश की अपेक्षा काल का बोध अधिक है। "कलात्मक अभिव्यक्ति की एक सर्वथा अछूती दिशा तथा प्रेरणा भूमि, इन रचनाओं के ज़रिये साहित्य में प्रथम बार उद्घाटित हुई है।"[51] इस खण्ड की कविताओं में तर्कशास्त्र की धारणाओं और निष्कर्षों का प्रभाव पड़ा है। क्योंकि माथुर साहित्य के विद्यार्थी होते हुए भी आधुनिक विज्ञान से भी परिचित हैं।

उनकी "समानान्तर सत्य" में कवि समानान्तर से चलनेवाले आदमी की खोज में संलग्न है ।

"निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पण में
चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गयी
:: : ::
इनमें कौन मेरा है[52] ।"

"चलती हुई भीड़" में कवि की मान्यता है कि समष्टि में व्यक्ति की सत्ता एक एकमुद्रा से अधिक नहीं है । कोहरे सी भीड़ में पल भर जिसकी सूरत दिखाई देती है और पल भर में विलुप्त हो जाती है ।

"सहसा मैं ने चौंक कर
देखा
अपने को उस फिल्म में
परदे की छाती से फूल कर उभरती
एक कोहरे सी भीड़ में
एक दूसरे में मिल असंख्य चेहरों में
उठकर डूबता
एक अतिरिक्त चेहरा[53] ।"

"जो बँध नहीं सका" का "प्रतिबिम्बों का भय" नामक अन्तिम खण्ड में संकलित कविताओं में रोमानी स्वप्निल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है । इस खण्ड की कविताओं में कवि अपनी भावभूमि पर उतर आया है "यह भूमि है

रोमानी स्वप्न-अनुभूतियों की । इन अनुभूतियों को पकड़ने केलिए शब्द, अर्थ और नाद प्रभाव के बारीक उपकरणों की अपेक्षा होती है । वे आधुनिक युग में दो चार कवियों को ही उपलब्ध है - वरिष्ठ कवियों में पंत को और मध्यम पीढ़ी के कवियों में शमशेर और गिरिजाकुमार माथुर को[54] ।" यद्यपि इस खण्ड की कविताओं में रोमानी स्वप्न अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है तथापि उनको मूर्त रूप प्रदान करनेवाले उत्कृष्ट शिल्प के कारण इस खण्ड का अपना अलग अस्तित्व है, "इतिहास की पीड़ा", और "काल दृष्टि" खण्डों से माथुर की काव्य कला और निखरे हुए रूप में प्रकट है । "रूप विभ्रमा चांदनी" में चांदनी को एक आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है। "संघर्षरत व्यक्तित्व", "अलिंद की व्यथा" आदि कविताओं में आधुनिक बोध की सही अभिव्यक्ति हुई है । "अलिंद की व्यथा" में विपरीत छोर बहती हुई नदियां और अलग दिशाओं में जाती हुई नौकाएं मन के विपरीत विचारों के संघर्ष की ओर संकेत है -

"एक ओर तर्क है
एक ओर संस्कार है
:: : ::
किसको मैं छोड़ूं
किसको स्वीकार करूं[55] ।"

ज़ाहिर है कि कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से "जो बंध नहीं सका" काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । माथुर के विकासोन्मुख काव्य संसार का एक महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में इस संग्रह का अपना महत्व है ।

<u>भीतरी नदी की यात्रा</u>

माथुर की विशिष्ट काव्य प्रवृत्तियों और मार्मिक अनुभूतियों से संपन्न अनूठी कविताओं का संग्रह है "भीतरी नदी की यात्रा ।

भीतरी नदी की यात्रा का मतलब किसी प्रकार का पलायन नहीं बल्कि अन्तरंग अनुभूतियों का बहिस्फुरण है । मानव के प्रति प्रेम और अपनत्व की प्रतिष्ठा तथा प्रकृति केमनोहर रूप का चित्रांकन इस काव्य की खासियतें हैं । कवि का यह कथन उसका मुख्य स्वर है कि "भीतरी नदी की यात्रा" में मेरी व्यक्तिगत अनुभूति की कविताएं संकलित हैं । इसमें सौन्दर्य और प्रेम सम्बन्धी कविताएं जो जीवन के मधुर पक्ष से सम्बन्धित है, दूसरे प्रकार की रचनाएं प्रकृति से सम्बन्धित है और कुछ कविताएं मेरी यात्राओं की भावात्मक प्रतिक्रियाएं हैं । सभी रचनाएं एक अन्तःसूत्र में जुड़ी हुई है ।[56]"

माथुर ग्रामांचल को अभिजात नागरिक दृष्टि से देख सके हैं क्योंकि ग्रामांचल की निर्मल गोद में पले माथुर के रक्त में प्राकृतिक सौन्दर्यबोध का अप्रायत्न वर्तमान है किन्तु "नयी कविता में नगरबोध के नाम पर अधिकांश कविताएं देश के उस बृहद् ग्रामांचल से कट गयी हैं जो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और बुनियादी हिस्सा है|तीव्र भावना, रसमयता, प्रकृति के रंग, पेड़ पौधों, फूलों और फसलों के रंगों को इस तरह "रोमानी" कहकर छोड़ दिया गया है जैसे कि यह सब यथार्थ से विमुख प्रवृत्ति हो।[57]" माथुर की कविताओं में नगर एवं ग्राम से सम्बन्धित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है ।

प्रेम और प्रकृति की प्रतिष्ठा होने के नाते आलोचकों ने "भीतरी नदी की यात्रा" को माथुर की मूल काव्य प्रवृत्ति की ओर वापसी कहा है ।[58] उनकी प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धीकविताओं में मानव जीवन के प्रति कवि की गहरी पैठ व सूझबूझ का दिग्दर्शन होता है । उनमें भाव की अपेक्षा चिन्तन की प्रौढ़ता और दृष्टिकोण की परिपक्वता है । इस दृष्टि से "मामुली शब्दों की मुस्कराहट", "कुछ बातों की रात", "स्थायी आयु", "थोड़ी देर हो गयी है", "आयु बहुत है" जैसी कविताएं विचारणीय हैं

प्रेम सम्बन्धी कविताओं में माथुर ने प्रेम को जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है । यह जीवन की शाश्वत अनुभूति है जिस पर स्थान या काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इसकी खुशबू स्थायी है जिसकी भीनी भीनी महक मन में समाई रहती है ।

"क्यूटीक्यूरा पाउडर की
भीनी गंध
मन में
ये तुम भी हो
याद भी ।"[59]

माथुर का प्रेम किसी काल्पनिक आलम्बन के प्रति निवेदित न होकर वर्तमान जगत के जीते जागते मनुष्य के प्रति समर्पित किया गया है याने प्रेम की स्वीकृति लौकिक धरातल पर की गई है जिसमें शरीर आवश्यक रूप से समाविष्ट है । इसलिए "यह प्रेम काम भावना से व उद्दाम आकर्षण से युक्त है जिसकी स्थूल और ऐन्द्रिय-अभिव्यक्ति की गई है ।"[60]

"नयी आँखें", "वक्त के हाशिये", "चेहरे पर आती है परछाइयाँ" जैसी कविताओं में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण हुआ है । ये कविताएं विस्तृत जीवनानुभव के प्रत्यक्ष भागी हैं । युवावस्था में तन सौन्दर्य से पूर्ण, पुष्ट और मांसल होता है । मन में जोश व उमंग की लहरें होती हैं। इसलिए इस अवस्था में प्रणय समर्पणकी भावना सर्वाधिक है । प्रौढावस्था में उम्र का उतार अवश्य है परन्तु जिन्दगी का तजुर्बा है, दूरदर्शिता की भावना है, शक्ति है, अपनत्व की भावना है । बुढ़ापा उम्र से नहीं विचारों से आता है । यदि व्यक्ति केसोचने विचारने का ढंग बहुत सुलझा हुआ व नवीन विचारों से परिपूर्ण है और यदि वह दुनिया को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में युवा दृष्टिकोण से देखता है तो उस के लिए हर दिन उत्सव है ।

उसकी आँखों में हमेशा ताज़गी और चमक होती है । "नयी आँखें" में कवि ने इसकी ओर संकेत किया है ।

"जो नयी आँखों से देखते हैं दुनिया को
उन केलिए हर दिन उत्सव है, त्योहार है ।"[61]

मानव जीवन नाटक सा है । यह संसार विशाल मंच है । इस मंच पर प्रत्येक व्यक्ति को मृत्यु तक अभिनय करना पड़ता है । यह जीवन नाटक अविराम है जिसका कोई अंत नहीं । वह समय की गति के साथ-साथ आगे बढ़ता रहता है । अंतर केवल इतना है कि पुरानी कतारें आगे बढ़ती रहती हैं और नये लोग उनका पीछा करते रहते हैं । सुख दुःखात्मक क्षणों को भोगते-भोगते मनुज जीवन में विजय केलिए प्रयत्नरत रहता है । पर मानव जीवन की विडम्बना यह है कि जीवन भर के प्रयास के उपरांत अंत में उन्हें अकेला ही रहना पड़ता है याने मनुष्य अकेला रहने केलिए अभिशप्त है । इस अभिशाप की ओर कवि ने यों इशारा किया है ।

"कट रही है रात मेरी
हार पर
हर सुबह सूली
इसी मझधार पर
भोगना हर क्षण अकेला ही पड़ेगा
मृत्यु तक ।"[62]

"अनमिले स्वर", "नयी पहचान", "समुद्र की साँसें", "गरमी की शाम", "बीहड़ जंगल" के बीच", "निसर्ग में वापसी" जैसी कविताएं प्रकृति से सम्बन्धित हैं । उनमें कहीं आलम्बन रूप में चित्रांकन हुआ है तो कहीं रोमानी भावों की उद्दीप्ति में सहायक के रूप में और कहीं सामाजिक वैषम्य को

साकार करने में सक्षम माध्यम के रूप में । "नयी पहचान" में भोपाल की एक रात को साकार किया गया है । रात में सब कहीं चाँदनी छिटकी हुई है । चाँद का प्रतिबिम्ब नदी में पड़ने के कारण वह भी दूधिया रंग का हो जाता है । सर्वत्र शीतल मन्द सुगन्ध पवन वातावरण को मोहक और मदमस्त बना देता है ।

"चाँदनी रात
.   .   .
नदी दूध-धार
अछूती उजास
सलोनी रात ।"[63]

"बीहड़ जंगलों के बीच" में वन प्रदेश की गहनता, बीहड़ता और भयावहता का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । घाटियों, पर्वतों से घिरे ढाक के जंगल में दिन में भी रात महसूस होती है । "मिट्टी में वापसी" में माथुर ने निःस्वार्थ सेवा करनेवाली नदी और पौधे के माध्यम से आलसी, निश्चिंत और अकर्मण्य होकर दुनिया में बेखबर निद्रालीन रहनेवाले आदमी को सचेत और सजग बनाने का प्रयत्न किया है ।

"यह पौधा
अपने ही पत्तों से लिपटा
धूप हवा सेवा अपने में मगन है
यह सेवा पसारती है - सहज वृक्ष के धरातल पर
..   ..   ..
—और मैं : मुझे नींद कितनी प्यारी है
आत्मदान कितना प्यारा है,
परितोष कितना प्यारा ।"[64]

"पतझर की एक दुपहर" में कवि ने यह आशा प्रकट की कि जिस प्रकार पतझर के मौसम में पुराने पत्ते एक एक करके झड़ जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य के जीवन की समस्त तकलीफें, समस्यायें, अवहेलनाएं भी एक न एक दिन समाप्त हो जायेंगी ।

आधुनिक वैज्ञानिक युग की यान्त्रिकता हृदयहीनता, महानगरों की खोखली संस्कृति और उससे अभिभूत संत्रास को "भीतरी नदी की यात्रा" में देख पाते हैं । इनमें "नया दूकेवाना", "बर्बर सिम्फनी का उन्माद", "अर्थ-शून्य", "मूड ट्रैंक्वेलाइज़र", "कमांट पोस", "यन्त्र-चाल", "वणिक संस्कृति का मृत्यु-गीत", 'बीसवां अंधकार' जैसी कविताएं उल्लेखनीय हैं ।

आज की दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अभिनय कर रहा है । सुख-दुःख, उदासी-गुस्सा और रोमांस के बीच की जिन्दगी नाटक से कम नहीं । लगता है कि विपरीत परिस्थितियों के बीच जीवन के हर क्षण में मनुष्य अभिनय कर रहा है । मानवीय सम्बन्धों की शिथिलता आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता का परिणाम है । आज माता-पिता व बच्चों के बीच वह आत्मीय सम्बन्ध नहीं जो पुराने ज़माने में पवित्र माना जाता था । पत्नी ..... नारी के उच्च आदर्शों को विस्मृत कर अपने आप स्वतंत्र रहना चाहती है । इसलिए उसे घर गृहस्थी और पति बच्चों से ज्यादा सुख होस्टल में डेबरे करने व माडलिंग करने में उपलब्ध होता है । ऐसा लगता है कि जीवन का सुख-चैन अपनापन सब अपना न रहकर बाजारू सा हो गया है । मां बाप, पति-पत्नी का रिश्ता मात्र मर्द और औरत का है । आधुनिक सभ्यता में रंगे हुए आज के मानव की इसी विडम्बना का चित्रण 'यन्त्र-चाल" कविता में हुआ है ।

"सारा अपनापन उजड़ा
बाजार हुआ शोरगुल
आदमी हुआ सस्ता
अब न माँ है न बाप है
न पत्नी है, न पति है -
अब 'प्रोफेसी-गलास' के
किसी भी उचके प्लेट में
कोई भी मर्द है
कोई भी औरत है[65]।"

"बीसवाँ अंधकार" में माथुर ने पाश्चात्य देशों के मशीनीकरण के दुष्परिणामों का आकलन किया है। अपने चारों ओर इस छितराये अंधकार के फैलाव के कारण ही पश्चिमी देशों के लोग प्रकृति से काफी दूर हो गए हैं। प्रकृति के रम्य स्थल मशीनी सभ्यता के राक्षसी पंजों की जकड़न में धीरे धीरे जकड़ते जा रहे हैं। लगता है कि उनका सुन्दर रूप - रंग छीन कर मनुष्य उन्हें भी मशीनी बनाने में पीछे नहीं रहना चाहता। आज की इलेक्ट्रॉन सभ्यता ने मनुष्य को सेन्ट्रल हीटिंग, कम्प्यूटर, टीवी, कार आदि जीवन की सुख सुविधाएं तो दी हैं, लेकिन इसके साथ साथ समाज को मर्फिया, स्मगल चोरी, मर्डर, भोग, कैबरे आदि पापमयी प्रवृत्तियों से परिपूर्ण दुनिया भी दी है। इन सबकी अभिव्यक्ति "बीसवाँ अंधकार" में द्रष्टव्य है।

"मोहमाया, कोमलता, संवेदना
नकारात कहाँ
यहाँ
बदले में मिला प्रेम
सेन्ट्रल-हीटिंग, कम्प्यूटर, "टीवी"
एसिड, फिश कार
किस कीमत पर मिला[66]।"

मध्यवर्गीय जीवन की कटुता को घुटन और संघर्ष को कवि ने "रचनाहीन" में उभारा है ।

"भीतरी नदी की यात्रा" की कविताएं मुक्त छन्द में लिखी गई है फिर भी उनमें लय का पूर्णत: निर्वाह हुआ है । "शब्द प्रयोग के प्रति जिस सूक्ष्म संवेदनशीलता का परिचय प्रारंभ में ही गिरिजाकुमार माथुर ने दिया था वह अपने परिपक्व रूप में इन कविताओं में भी विद्यमान है ।"[67]

इस उजली उम्र को देखता हूं
दु:ख नहीं होता -
पीस पीस कर मुझको
दु:खों की चक्की भी भोथरी हो गयी है ।"[68]

संक्षेप में इस संकलन की कविताएं न सिर्फ कवि के विशिष्ट काव्य-व्यक्तित्व का परिचायक है बल्कि नयी हिन्दी कविता के बदले हुए सौन्दर्यबोध की सही और सशक्त पहचान भी है । "भीतरी नदी की सम्पूर्ण यात्रा में गिरिजाकुमार माथुर का स्वर निषेधात्मक नहीं सकारात्मक या रचनात्मक है ।"[69]

7· साक्षी रहे वर्तमान

माथुर का आधुनातन काव्य प्रयोग का प्रत्यक्ष साक्षी है 'साक्षी रहे वर्तमान'। इसमें सन् 1966 से 1977 तक रचित कविताएं संकलित है।"एक अधूरा आदमी", "सड़क से देश दर्शन, "अंधेरी दुनिया", "निर्णय का क्षण", इतिहास के उत्तरों में", "क्रान्ति की भूमिका", "नयी परंपरा" "इतिहास की कालहीन कसौटी", "जन्मभूमि", "पराजित और आदमी",

"समय के ढेर पर", "खोटा हुआ जल", "मन मेरा गुलाब", "आने दो आँच" "मैं तो सिर्फ सागर हूँ", "असीम सुनसान", "सम्मोहन के अकेले आकाश" आदि इस संकलन की प्रमुख कविताएं हैं । कवि का दावा है कि "ये कविताएं समकालीन सामाजिक यथार्थ को पर्त-दर-पर्त खोलती हुई मानवीय संवेदना की सनातन भूमि पर अवस्थित हैं । इनमें दोहरे तीहरे स्तर पर गति शील जीवन की आंतरिक तथा बाह्य स्थितियों का गहरा स्पन्दन है, समय के विकृत वेग में बनते-मिटते मूल्यों की संस्थिति है, साथ ही इनमें संघर्ष का स्वस्थ तेवर है जो मनुष्य को आत्मबल प्रदान करता है ।"[70] उनमें कहीं अधूरापन है, कहीं अँधेरी दुनिया है ।

माथुर ने अपने रंग, रस, रोमांस की केंचुली बदल कर "एक अधूरा आदमी" में आज की वास्तविक जीवन की कुरूपताओं का बेलौस च किया है । समकालीन जीवन की उबलती समस्याओं की ऊष्मा इस कविता को जीवन्त बनाती है । पराजित व्यवस्था की निष्क्रियता पर अपनी आक्रोश प्रकट करते हुए कवि माथुर ने यों कहा -

"मेरे भीतर
हर वक्त एक पुश्तैनी राजरोगी
हाथी दांत के बेपेंदे फ्रेम में
बीमार हँसी हँसता है
सोने मढ़े दांतों से कहता है -
अभी वक्त बहुत दूर है ।"[71]

समकालीन जीवन से कवि बेहद असन्तुष्ट है । सब कहीं अव्यवस्था, अन्याय और अत्याचार ही है । कवि का आहत अन्तरात्मा इस युगीन संकट पर संत्रस्त होकर रो उठती है ।

"मैं एक पहाड़ हूँ
सफेद गोबर का
मैं एक जर्जर रेगिस्तान हूँ
भूसे का
मैं एक मातमी नदी हूँ
भूख और मौत की उल्टियाँ करती हुई ।"[72]

"कविता माथुर के लिए कोई अपरिष्कृत क्रिया नहीं । उनके लिए कविता एक परिष्कृत संयोजन है ।"[73] "एक अधनंगा आदमी" में ऐसे कई नये प्रयोग लक्षित होते हैं । "सफेद गोबर का जर्जर रेगिस्तान","मातमी नदी", "भूख और मौत की उल्टियाँ करती हुई", "छरहरा जंगल", "विराट विष्टा में धंसा खड़ा हूँ आराम से" आदि ऐसे प्रयोग हैं जो काव्य जगत् में अपने आप नए हैं ।

अव्यवस्थित सामाजिक परिस्थिति के प्रति अदम्य विद्रोह के कारण कवि कभी कभी गालियाँ देने लगता है । "सड़क से देश दर्शन", "एक अधनंगा आदमी" जैसी कविताएं इसकेलिए पर्याप्त प्रमाण है ।

"हज़ारों पैरों के निशान
पीछे गवाह हैं
मेहनत आकांक्षा जीवट के नहीं
आपसी घोट्टेपन के
उड़ते हैं
मोटी फटकारती हुई दुम की तरह
[illegible] गई है
मुझे बदतमीज़ बादल ।"[74]

परिचितों के दायरे में जो अपरिचित दायरा छिपा हुआ है उसकी झांकी "परिचयहीन" कविता में मिलती है ।

"जब जब यहाँ आता है
हर परिचित आदमी
अपरिचित हो जाता है ।"[75]

समकालीन समाज के एक बहुत बड़े यथार्थ की ओर कवि ने इशारा किया है ।

आज के जीवन नाटक में सारे पात्र खलनायक है
इनके प्रत्येक कुकर्म पर विदूषक तालियाँ बजाता है । "दस्तक" नामक कविता में इसकी सही अभिव्यंजना हुई है ।

"यह कौनसी व्यवस्था है
नाटक के सारे पात्र जहाँ
खलनायक हैं
खुशामदी विदूषक
जिनके कुकर्म पर
तालियाँ बजाते हैं ।"[76]

नया संस्कार, काम, रोमांस, कुंठा अवहेलना और अपमान से भरे संसार के बीच कवि को जीने का दुःख होता है ।

"न बड़ा काम करने दिया है
न छोटा होने दिया है
जीने का सुख भी
रहने नहीं दिया है ।"[77]

जिस मानव को आज तक "बेजुबान कठपुतली" "समूह की एक इकाई" मात्र समझा गया, वही हाड़-मांस का मनुष्य सब कुछ करने की अपार शक्ति भी रखता है। विकृतियों का पुंज होने पर भी उसमें सब कुछ करने का साहस रहता है क्योंकि उसका आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास अभी मरा नहीं है। इन भावों की अभिव्यक्ति उन्होंने "निर्णय का क्षण" नामक कविता में की है।

"भीड़ वह नहीं है
जिसे तुम हिकारत से
कहते रहे नाचीज़
: : : : :
दुत्कारते रहे हर बार
तुमने जिसे समझा है
बेजुबान कठपुतली
वह हाड़ मांस की सबसे बड़ी ताकत है।"[78]

दूसरा उदाहरण

"सब हर अपमान
क्रान्ति राग बन जाएगा
बन्द अंगार होगा मन
आग बन जाएगा।"[79]

"क्रांति की भूमिका" में समाज में व्याप्त अत्याचारों के विरुद्ध क्रान्ति उपस्थित करने तथा "परम्परा और आदमी" में पास और दूर की परम्पराओं के बीच लड़खड़ापन का भाव प्रकट किया गया है। इस लड़खड़ापन के बीच भी कवि की आस्था "सम्मोहन के ओने आभास" में द्रष्टव्य है।

"उन सारी अज्ञात अपरिचित, अनाहूत जगहों पर
अलौकिक क्षण पर
मैं बंट-बंट कर पहुंचा हूँ
जब भी, जहाँ भी वह होते हैं होंगे
मैं वहाँ वहाँ आसन्न हूँ
सहज ही समर्पित हूँ।"[80]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि के समर्पण की भावना और जिजीविषा लक्षित होती है

समाज में व्याप्त जीवन की विसंगतियों की सीधी सपाट अधिकतर नक्शेदार भाषा में अभिव्यंजन करते हुए माथुर ने इस कृति में भी कुशल शिल्पगत चातुर्य का निर्वाह किया है। उन कविताओं में शब्द और अर्थ के आंतरिक सम्बन्ध की झलक मिल जाती है।

अतः निर्विकल्प रूप से कहा जा सकता है कि माथुर के सृजनात्मक संकल्प और सतत संघर्षशीलता का साक्षी है "साक्षी रहे वर्तमान"। इनकी कविताओं में पीड़ित मानवीय तत्वों की ईमानदारअभिव्यक्ति हुई है। आरंभ ही से उनकी काव्य-संवेदना में सघन भावना के सान्द्र बिम्बों के साथ यथार्थ बोध का जो स्वर रहा है वह "साक्षी रहे वर्तमान" में संपूर्णता में मुखरित है। समसामयिक जीवन की विसंगति व्यवस्था-विरोध तथा अनुभूतिजन्य शिल्प प्रयोग से यह संकलन माथुर की कवि प्रतिभा के उत्कर्ष को सूचित करता है। "समूची असंतुलित सामाजिक विषमताओं का चित्रण करते हुए कवि विचार की बहुलता का परिचय देता है जो एक तरह से उसकी व्यवस्था के प्रति जागरूक दृष्टि का परिचय देती है।"[81]

8• कल्पान्तर

माथुर का सद्यप्रकाशित काव्य ग्रन्थ है "कल्पान्तर" । यद्यपि उसका प्रकाशन सन् 1983 में हुआ तदापि उस काव्य की रचना प्रक्रिया के पीछे तीस वर्षों का लंबा अंतराल है । इस अंतराल में कवि ने युगीन संवेदना के विस्तृत आयाम को रूप और भाव देकर "कल्पान्तर" में समेटने का कार्य किया है । उसका मूल आलेख सन् 1952 में कवि ने अपनी पहली विदेशी यात्रा से लौटने के बाद ही तैयार किया था । सन् 1959 में कवि ने उसका प्रारूप तैयार किया और 1960 में उसका कुछ अंश "पृथ्वीकल्प" नाम से "कल्पना" में प्रकाशित भी किया था । इन सारे प्रयत्नों के बावजूद वह काव्य सन् 1983 तक प्रकाश में नहीं आया । सन् 1952 से 1983 तक के तीस वर्ष में कवि ने सही अर्थ में अभिव्यक्ति का संघर्ष झेला है । अभिव्यक्त अंशों को बार बार मांजकर एक अनुपम प्रौढ रूप देने का प्रयास करता रहा । फलत: सन् 1983 में "कल्पान्तर" सही अर्थ में हिन्दी काव्य जगत् में कल्पान्तर उपस्थित करते हुए प्रकाश में आया। कविता में वैज्ञानिक फेन्टसी का प्रयोग आनुषंगिक ढंग से हिन्दी काव्य जगत् में हुआ तो था, वैज्ञानिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक मानव की विसंगति का इतना तीक्ष्ण बोध पहली बार हमें "कल्पान्तर" से उपलब्ध होता है । सही अर्थ में "कल्पान्तर" हिन्दी का पहला विज्ञान काव्य है ।

"कल्पान्तर" के पात्र अब तक हिन्दी काव्य जगत् के लिए अपरिचित थे । अब पहली बार वे अपनी पूरी प्रमुखता और भीषणता के साथ काव्य जगत् में अवतरित हुए हैं ।

"कल्पान्तर" को वैज्ञानिक काव्य की अपेक्षा वैज्ञानिक ज्ञान गीतिनाट्य या यांत्रिक सभ्यता का दस्तावेज़ कहना अधिक संगत है । मनुष्य

जन्म से लेकर अब तक के विकास परिणाम की गाथा इसमें है । सं-गाथा, स्वर्ग देश, मोह देश और शांति देश इस विकास को सूचित करनेवाली सीढ़ियाँ हैं ।

निस्सीम अंतरीक्ष में फैले अनंत ग्रह नक्षत्रों के बीच पृथ्वी के विराट अस्तित्व और जीवन्त अद्वितीयता की उद्घोषणा के साथ सं-गाथा शुरू होती है ।

"सब अनन्ते तारकों में
एक तुम सुन्दर, सचेतन !"[82]

पृथ्वी की महिमा सचेतनता में है । खास कर मनुष्य की उपस्थिति उसकी गरिमा को गहराती है । मनुष्य का इतिहास वास्तव में पृथ्वी का इतिहास है। युग युगों से मनुष्य सक्रिय है । इस सक्रियता का परिणाम है उनकी सांस्कृतिक, भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति । "कल्पान्तर" में गाथाकार आकर पृथ्वी के इतिहास के ज़रिये मनुष्य के इतिहास की गाथा सुनाता है ।

"आज सुनाते हैं हम गाथा कोटि युगों की
अंधकार से महा ज्योति के संघर्षों की
नक्षत्रों में लिखी कथा पृथ्वी के मन की
यह गाथा है इतिहासों के आवर्तन की ।"[83]

इस इतिहास के आवर्तन के सिलसिले में बर्बर मनुष्य सुसभ्य बन गए । पृथ्वी धन संपत्तियों और वैज्ञानिक सामग्रियों से संपन्न हो गयी । नक्षत्र, सदियाँ और इतिहास इस पर अपनी अपनी गवाही देते हैं । सदियाँ कहती हैं यद्यपि पृथ्वी का विकास हुआ मनुष्य सुसंस्कृत बन गए फिर भी अब भी यह दुनिया बलवानों की है ।

"अब भी यह दुनिया
बलवानों की दुनिया है
विवेकशून्य बल की
अंध शक्ति ठोकर मारती है अभी न्याय को[84] ।"

मनुष्य के विकास की ऐतिहासिक सच्चाई को प्रस्तुत करते हुए इतिहास बोलता है कि अविवेक और अन्याय की प्रमुखता बहुत देर तक चल नहीं सकती । न्याय और विवेक की विजय सुनिश्चित है। अब तक के संघर्ष का इतिहास इसकेलिए पर्याप्त प्रमाण है ।

"सत्ता नहीं चल सकी बहुत देर
मृत्यु के उपासक
अन्याय अविवेक की
विजय हुई है सदा
न्याय की, विवेक की[85] ।"

इतिहास इस ओर ध्यान दिलाते है कि यद्यपि मनुष्य संसार की सुन्दरतम सृष्टि हैतदापि उसमें व्याप्त संशय, घृणा, युद्ध लिप्सा सब तामसी हैं । मानव समुदाय केलिए भी खतरनाक है । उन्होंने अपनी लिप्सा को पूर्ण करने केलिए नए नए वैज्ञानिक आविष्कार किए उसमें सबसे खतरनाक है अणु शक्ति । उसका सदुपयोग और दुरुपयोग संभव है । मनुष्य की धन कामना के कारण उसके दुरुपयोग की ही अधिक संभावना है । यह मानव राशि केलिए ही नहीं पृथ्वी केलिए भी विनाशकारी है ।

"क्योंकि धरा पर
अणु युद्धों का भय छाया है[86] ।"

अणु युद्ध ही नहीं किसी भी प्रकार का युद्ध मानव समुदाय की उन्नति को अवरुद्ध करनेवाली है ।

"देखो, अंतरिक्ष क्षितिज पर
सूर्य-ग्रहण चढ रहा मनुज पर
अंग-असुर मुख खोल रहे हैं
युद्ध-राक्षस डोल रहे हैं ।"[87]

मानव राशी के उन्मूलन केलिए अणु शक्ति पर्याप्त है । अणु युद्ध का मतलब अब मानव समुदाय का संहार है । अगर अणु युद्ध छिड जाये तो

"धू धू अब तक का वैभव जल जायेगा
छोडे जो भस्मासुर, भस्म हो जायेगा ।"[88]

इस प्रकार सुन्दर और प्राकृतिक संपदाओं से संपन्न पृथ्वी के ऊपर अब विनाश का शैतान घूम रहा है। सभ्यता का पतन, घोर कामवासना, युद्ध लिप्सा, अशांति, मृत्यु, अस्त्र, सब मिलकर पृथ्वी पर प्रहार कर रहे हैं ।

"रक्त नयन शैतान बढ रहा
लेकर यह सारे हथियार
युद्ध अशांति, मृत्यु अस्त्रों से
पृथ्वी पर कर रहा प्रहार ।"[89]

मनुष्य के सुसंस्कृत बनने के साथ एक अवांछित सभ्यता का उदय हुआ है वह है यांत्रिक सभ्यता । वह अब मानव समुदाय को ही नहीं सारी पृथ्वी को भी केलिए दैत्य सा खडी है । मजे की बात यह है कि वह मनुष्य का बनाया हुआ

स्वर्ण देश

अद्यतन वैज्ञानिक अविष्कारों से प्रदत्त भौतिक सुख सुविधाओं से समृद्ध देश है स्वर्ण देश। वहाँ समृद्धि, संपत्ति, यंत्र और भोग की भरमार है। अतः मानवीय चेतना का तिरस्कार सहज ही हुआ है। स्वर्ण देश का शासक स्वर्ण दैत्य है। सभी यांत्रिक तथा आर्थिक शक्तियों से संपन्न आधुनिक ईश्वर के रूप में स्वर्ण दैत्य का शासन हो रहा है। उसके मंत्रि मंडल में अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धि का प्रतीक डिक्टाफोन है यंत्र मनुष्य। अर्थ मंत्री, अनुमति, यंत्र दैत्य, पराविद्युत, प्रचारक, कामकन्या ये सब यंत्र दैत्य के इशारे पर चलने केलिए कटिबद्ध हैं। स्वर्ण दैत्य के स्वर्ण देश में अब परंपरागत सूरज नहीं जलता लेकिन लेसर का सूरज जलता है। देश विदेश के कोने कोने को छान डालकर खबर लाने केलिए रडार, रेडियो, बम, टेलिविज़न सब तैयार हैं। शत्रु संहार केलिए दूरगामी राकेट हैं। सबसे बढ़कर क्षण में मानवराशि को भी भस्मीभूत करने की ताकत वाले उद्जन बम हैं। यह भी नहीं शत्रु के आगमन की तुरंत सूचना देने केलिए "इंच इंच पर पहरा देते मकड़-पाँव जैसे एंटेना।"[90] फौजी इंतजाम करनेवाला कोई जनरल नहीं कंप्यूटर चालित डिक्टाफोन है। इस प्रकार के मारक उपकरणों के अधीश स्वर्ण दैत्य के सामने मनुष्य और मानवीय चेतना परिहास की चीज़ें हैं। वह हमेशा सोने, अर्थ-शक्ति, युद्ध-रक्त की विजय बोलता है। उसके इशारे पर सब चलते हैं। उसकी चाह पर सब नाचते हैं। सब उसके प्रशंसक हैं।

"हे स्वर्ण दैत्य।
बीसवीं सदी के
हे तकनीकी चमत्कार
अरबों अरबों पद्मों के स्वामी।"[91]

फिर अनुमति आकर नमस्कार करता है कि हे स्वर्ण दैत्य तुम ही सब कुछ हो अम्पराव हो लोक-लोक के डिक्टेटर हो । "बोलो क्या नई आज्ञा है ।"[92]

आगे यंत्र दैत्य हुंकार शब्द में स्वर्ण दैत्य का प्रणाम करता है । स्वर्ण दैत्य उसका स्वागत करते हुए कहता है "यंत्र दैत्य तुम मेरी प्रेसडेन्ट दुनिया के ।" फिर पराविद्युता आती है और वैज्ञानिक भाषा में नमस्कार करती है

"स्वर्ण दैत्य, तुमको है मेरा
अलफाम न्यूट्रान हृदय का
बीटा-गामा - एक्स प्रणाम
मेरा ये कास्मिक शरीर
एनोड और कैथोड हृदय
है झुका तुम्हारे पैरों पर ।"[93]

पराविद्युता आकर अपने नए आविष्कार की घोषणा करता है और उसे स्वर्ण दैत्य के चरणों पर समर्पित करती है वह है मृत्यु किरण । मृत्यु किरण को पाकर स्वर्ण दैत्य का अहं चरम सीमा पर पहुँच जाता है । वह कहता है -

"मृत्यु किरण !
है हाथ आ गयी मृत्यु किरण ।
अब तो मैं अपराजेय हुआ ।"[94]

स्वर्ण दैत्य नीरों, हिटलर जैसे स्वेच्छाचारियों की पूजा करता है । वह के प्रेतों के हाथ नए अस्त्र रख देना चाहता है उसे जनमत की चिन्ता

वह अपनी शक्ति पर ताण्डव रचाने की उत्सुकता में है । पराविधुता इसके विरुद्ध बोलती है । वह भविष्य की ओर इशारा करते हुए कहती है । इन मारक अस्त्रों का मनमाना प्रयोग दुनिया केलिए विनाशकारी है ।

"हे महासत्व यह, स्वर्ण दैत्य
हमने खोजी हैं परम सिद्धियाँ जीवन की
जो हैं आधार सृष्टि तक की
उनका यह मनमाना प्रयोग
है छेड़-छाड़ का रहा
प्रकृति की नीति नियम मर्यादा से
यदि क्रुद्ध, क्रुद्ध हो गयी प्रकृति
वह भस्मीभूत करेगी सारी दुनिया को ।[95]"

स्वर्ण दैत्य जैसे अधिनायक को यह अच्छा न लगा । वे उसको और उसके समर्थक को बन्दी बनाना चाहते हैं । अंत में स्वर्ण दैत्य अपने मारक अस्त्रों के सहारे अपने पड़ोसवर्ती मोह देश पर आक्रमण करने में लग जाता है । इस प्रयत्न में अर्थ मंत्री, यंत्र दैत्य, काम कन्या, अनुरति सब अपनी अपनी भूमिका निभाने का वादा करते हैं । फिर स्वर्ण दैत्य का आदेश निकलता है । मोह देश में अणु विस्फोटकारी गुप्तचरी यानों को भेजो, भूख उगाओ मोजी तनाव को बढ़ाओ, दुःख फैलाओ, फूट कलह हत्या के काले मेघ उठाओ । इस प्रकार स्वर्ण दैत्य, आधुनिक युग का काला ईश्वर मनुष्य रक्त से होली खेलता है।

मोह देश

मोह देश में अतिनायक का शासन है । उसके आदेशों के सामने सब लोग भयातुर काँप रहे हैं । हर व्यक्ति दूसरे को सन्देह भरी दृष्टि से देखता है । अतिनायक की तानाशाही के सामने सब भयभीत है ।

युद्ध की तैयारियाँ यहाँ भी हो रही है । स्वर्ण देश की सारी शक्ति को चकनाचूर करके अपने को सर्वशक्तिमान साबित करने की कोशिश अधिनायक स्वयं कर रहा है । मानवीय चेतनाएं यहाँ इतिहास की पीछे हैं गीतिका कहती है -

"करुणा, प्रेम, त्याग, भिन्नता
मैत्री, निष्ठा, वचन-बद्धता
संवेदना, क्षमा, उदारता
मानी जाती है कमजोरी व्यक्ति की
यहाँ बसी इतिहास-विज्ञान है
षड्यंत्रों की, रक्त की ।"[97]

आखिर है लौह देश में भी मनुष्य का तिरस्कार और यंत्र की पूजा हो रही है । फौजी शक्ति, अणु बम्ब और यंत्र शक्ति के सहारे अधिनायक का आतंक निर्बाध हो रहा है । यहाँ का मनुष्य जिन्दा मुर्दा है । अधिनायक का प्यारा है रोबोटो । उसकी हर आज्ञा का हू-ब-हू पालन करने केलिए वह तैयार खड़ा है । अतः लौह देश में मनुष्य और मानवता की मृत्यु हो गयी है । हर आदमी अपनी अपना कब्र को ढोकर चल रहा है ।

"एक एक आदमी यहाँ पर
चलती फिरती कब्र है ।"[98]

यांत्रिक सभ्यता की चक्की में यहाँ का मनुष्य पिस रहा है । उसकेलिए नितांत आवश्यक वस्तु भी नहीं मिलती । खाना जो मिलता है वह रूखा सूखा है । फिर भी वे दिन रात परिश्रम करने केलिए अभिशप्त है ।

"रोटी कपड़ा जिनको मिलता रूखा सूखा
बाकी के सारे अभाव हैं

ये सब श्रमिक चींटियाँ फौजी
सुबह शाम करते परेड हैं।[99]

अपनी असीम सत्ता पर बेहद गर्व करनेवाले अतिनायक का शासक लोह देश को विनाश की ओर ले जाता है। आस-पड़ोस के देशों से लड़ने केलिए अतिनायक तैयार खड़ा है। वह अपने नस्ल के नए युग की कल्पना करता है।

"याद रखो मेरी सत्ता लोहे की है
वह अडिग, अजेय अपरिमित है -
जब से हजार वर्षों तक मेरी लोह सभ्यता जायेगी
जन्मेगी उससे शुद्ध नस्ल
इंसान नया
वह अतिमानव
मेरी इस अग्नि कुठाली से।"[100]

भीषण शासन के नीचे जनता अवरित शोषण पिसता रही है। मनमोहन उसकी इस दशा को स्पष्ट करता है। वह कहता है कि अब लोह वासी इस शासन का आदि हो चुका है। उनका दिमाग खोखला कर दिया गया। उनकी बुद्धि से सब विचार लिए गए। उनके शरीर को मरणांतक कष्ट दिया। बाहर के देशों में भी हमारे प्रभुत्व की खबर पहुँची है।

रक्षावादी आकर अपनी शक्ति पर विश्वास दिलाता है गुप्तचर यह खबर लाता है कि स्वर्ण देश में मृत्यु किरण की खोज निकाला है। यह खबर सुनते ही अतिनायक चिल्ला उठाता है और स्वर्ण देश पर तुरन्त आक्रमण करने की आज्ञा देता है। उस केलिए अपने पास अणुशक्ति चालित जितने नवीन अस्त्र है उन सबका प्रयोग करता है। भीषण नरहत्या शुरू होती है। बर्बर मनुष्य को भी लजानेवाली नरहत्या। मिट्टी रक्तरंजित

हो गयी । मौह देश और स्वर्ण देश दोनों अणु युद्ध के फलस्वरूप नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं । इस भीषण ध्वंस के बीच में भी अतिनायक मृत्युकिरण को खोज पाने की आशा देता है यह भी नहीं इस भीषण संहार ताण्डव में वह आनंद पुलकित हो जाता है । पृथ्वीतल में कबन्धों का ढेर अणु ज्वाला में जल रहा है भूमि और आकाश रक्त रंजित हो गया ।

शांति देश

शांति देश में कवि शांति की कल्पना करता है । आधुनिक युग भीषण यंत्रों को अधिक महत्व देता है । अगर कहीं युद्ध छिड़ जाए तो समझो कि मनुष्य वर्ग और पृथ्वी का सर्वनाश दूर नहीं है । स्वर्ण देश और मौह देश के बीच की लड़ाई वास्तव में जगत् के सर्वनाश केलिए पर्याप्त है । उस भीषण स्थिति से जगत और उसके प्राणी को बचाने का एक मात्र उपाय है शांति । यंत्र का सामना यंत्र से करे तो सारी सृष्टि भस्म हो जाएगी । कवि जगमोहन के द्वारा युद्ध के विरुद्ध अपनी आवाज़ यों उठाता है -

"हम नहीं पक्षधर
युद्धों रत सत्ताओं, पद्धतियों के
हम अलग खड़े फौजी गुटबंदी ~~से~~ अधिपो। से
हम हैं मनुष्य के परम पक्षधर
अनुकूल परिवर्तन के
हम सिर्फ चाहते हैं
अभाव में फंसे
करोड़ों का विकास
गरिमा मनुष्य की
मन वाणी विचार की आज़ादी
का बढ़ता मनोल्लास
मारक अस्त्रों पर

अरबों के व्यय के बदले ।"[101]

कम्प्यूटर में मानव को भस्मीकृत करने की ताकत यंत्र दैत्य को है । वह उसके ऊपर खड़े होकर राक्षसीय अट्टहास कर रहा है ।

"मैं माप गया कुंआ सब को
यदि युद्धविरोधी सामूहिक आवाज़
उठायी गयी नहीं ।"[102]

यंत्र दैत्य के स्वर में अभिव्यक्त में वैज्ञानिक प्रभुत्व से उछलने कूदनेवाले आधुनिक प्रभुत्व से आधुनिक राष्ट्र का स्वर है । मात्र भौतिकता चाहनेवालों केलिए मानवीय विकार गौण है । वे मनुष्य को भी यंत्र सा देखते हैं । उनके सामने हर आदमी छोटा छोटा यंत्र है । उस नागरिक स्थिति से मनुष्य का उद्धार अनिवार्य है । इस केलिए जगमोहन आह्वान देते हुए कहता है -

"स्वाहा
लेकिन रोको विनाश के यंत्र-चाल !
यह सामूहिक जनमेध
मृत्यु पर्व रोको
xx xx
ये बंद करो उन्माद युद्ध का ।"[103]

एक नए युग, नई संस्कृति और नए मूल्य की कामना करते हुए जगमोहन एक नए सुनहले शांतिपूर्ण भविष्य की कल्पना करता है जहाँ मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकृति मिले जहाँ उसके हृदय और उसकी सद्भावना को वांछित सम्मान मिले ।

संपूर्ण विनाश दो अदूरदर्शी शासकों की करतूतों का परिणाम है। यांत्रिक सभ्यता के प्रभुत्व में ही शासकों की मनुष्यत्वहीन क्रिया। यह आधुनिक युग की महत्वपूर्ण विडम्बना है। हर देश दूसरे से डरता है। अतः हर देश नए नए अस्त्रों के आविष्कार में लग जाता है। व्यक्ति भी भयातुर है। क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों से उद्भूत नए नए अस्त्र मनुष्य के सामने दैत्य बन खड़े हैं। यहीं पर मनुष्य अनस्तित्व की व्यथा भोगता है और अपने भविष्य को अनिश्चित पाता है। स्वर्ण देश में स्वर्ण दैत्य, लौह देश में अधिनायक दोनों अपने को शक्तिमान साबित करना चाहते हैं। इसी द्वन्द्व में आम जनता की स्थिति इतना भयानक बन जाती है कि उसका भविष्य अंधकार में घिर जाता है।

लौह देश और स्वर्ण देश के बीच का युद्ध यह साबित करता है कि जगत् का भविष्य वैसा उज्ज्वल नहीं जैसी हम कल्पना करते हैं। इस यांत्रिक युग में शांति की कामना ही मानव समुदाय को एक सुनहला भविष्य प्रदान कर सकती है।

जाहिर है कि "कल्पांतर" में माथुर की क्रांत दर्शी कवि दृष्टि जीवन की गहनतम वास्तविकताओं का पर्दाफाश करती है। अंतरिक्ष युग के प्रारंभ से ही भविष्य के परिवर्तन और संचारों की ऐसे पहचान इतिहास के प्रति कवि की दूरगामी दृष्टि की परिचायिका है।

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि माथुर की काव्य साधना निरंतर विकसित एवं गतिशील रही है। वे ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाएँ आधुनिक हिन्दी कविता की विकास-यात्रा की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में

"गिरिजाकुमार माथुर में प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, प्रगतिशील, रोमांटिक, नया कवि और अब समकालीन कवि, सबका सहसंचरण रहा है।"[104]

संदर्भ

1· देवीशंकर अवस्थी - विवेक के रंग - बालकृष्ण राव - पृ·36
2· गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर - पृ·69
3· वही - पृ·56
4· डॉ· शान्तिस्वरूप गुप्त - आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ·113
5· डॉ· शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ·269
6· गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर - पृ·47
7· वही - पृ·2
8· वही - पृ·106
9· वही - पृ·102
10· डॉ· नगेन्द्र व कैलाश वाजपेयी - आज के लोक प्रिय हिन्दी कवि गिरिजाकुमार माथुर - भूमिका - पृ·17
11· गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर - भूमिका
12· डॉ· शान्तिस्वरूप गुप्त - आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ·113
13· हरिचरण शर्मा - नये प्रतिनिधि कवि - पृ·283
14· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - भूमिका
15· वही - पृ·56
16· वही भूमिका
17· वही - पृ·62-63
18· वही - पृ·102
19· वही - पृ·107
20· रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ·57

21. डॉ॰ नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजाकुमार माथुर - पृ॰20
22. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ॰18
23. विश्वम्भर मानव - नयी कविता नये कवि - पृ॰254
24. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ॰55
25. वही - पृ॰56
26. वही - पृ॰39
27. वही - पृ॰46
28. वही - पृ॰78
29. वही - पृ॰36
30. वही - पृ॰89
31. वही - पृ॰93
32. डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त - आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ॰114
33. विश्वम्भर मानव - नयी कविता नये कवि - पृ॰257
34. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - भूमिका
35. वही - पृ॰41
36. वही - पृ॰44
37. डॉ॰ जगदीश मानव - नयी कविता नये क गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं - पृ॰308
38. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ॰2
39. वही - पृ॰8
40. वही - पृ॰22
41. वही - पृ॰28
42. डॉ॰ जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं - पृ॰310
44. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ॰60
45. वही - पृ॰35

46· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ·74

47· डॉ· नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि
गिरिजाकुमार माथुर - पृ·22

48· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले-प्रकाशक का कथन

49· डॉ· शान्तिस्वरूप गुप्त - आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ·114

50· गिरिजाकुमार माथुर - जो बन्ध नहीं सका - पृ·38

51· वही - पृ·40

52· वही - पृ·41

53· वही - पृ·47

54· डॉ· नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - पृ·137

55· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका - पृ·99

56· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा - भूमिका

57· वही

58· समीक्षा - अप्रैल, 1976 - हरदयाल - पृ·32

59· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा - पृ·24

60· विजयकुमारी-गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में
- पृ·205

61· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा - पृ·71

62· वही - पृ·38

63· वही - पृ·14

64· वही - पृ·29

65· वही - पृ·48-49

66· वही - पृ·64-65

67· समीक्षा - फरवरी-अप्रैल 1976 - पृ·32

68· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा - पृ·64-65

69· समीक्षा - सुरेश - फरवरी - अप्रैल - 1976 - पृ·35

70· गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान - प्रकाशक का कथन

71. गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान - पृ.9

72. वही - पृ.9-10

73. डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय तथा मंजुल उपाध्याय - समकालीन कविता की भूमिका - पृ.61

74. गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान - पृ.16

75. वही - पृ.27

76. वही - पृ.34

77. वही - पृ.45

78. वही - पृ.51-52

79. वही - पृ.68

80. वही - पृ.100

81. आजकल - दिसंबर - 1981 - अरविनी पाराशर - पृ.37

82. गिरिजाकुमार माथुर - कल्पान्तर - पृ.17

83. वही - पृ.19

84. वही - पृ.24

85. वही - पृ.28

86. वही - पृ.31

87. वही

88. वही - पृ.37

89. वही - पृ.40

90. वही - पृ.43

91. वही - पृ.49

92. वही - पृ.52

93. वही - पृ.56

94. वही - पृ.57

95. वही - पृ.61

97. गिरिजाकुमार माथुर - कल्पान्तर - पृ.81

98. वही - पृ.84

99. वही - पृ.85

100. वही - पृ.86

101. वही - पृ.100-101

102. वही - पृ.104

103. वही - पृ.110

104. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका - पृ.59

तीसरा अध्याय

प्रयोगवादी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

तीसरा अध्याय

प्रयोगवादी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

प्रयोगवादी कविता

आधुनिक हिन्दी कविता छायावादी काल्पनिक सौन्दर्य जाल के कुहास से जब बाहर आयी तब उसकी दृष्टि मानव जीवन की कठोर वास्तविकताओं पर केन्द्रित होने लगी। इसने मानव जीवन की संगतियों एवं विसंगतियों को अपने भीतर समेट लिया। कविता की इसी बदली हुई मानसिकता के परिणामस्वरूप प्रगतिवादी साहित्य अस्तित्व में आ गया। प्रगतिवादी साहित्य ने समाज की हर गतिविधि को आत्मसात् कर लिया। सब कुछ समाज के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखने परखने और मूल्यांकन करने लगा। पर बात यह हुई कि व्यक्ति उपेक्षित सा रह गया। वैयक्तिक आशाओं और निराशाओं को प्रगतिवादी साहित्य एक सर्द मानसिकता से देखने लगा। परिणामतः प्रगतिवादी साहित्य अल्पायु बन गया। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि ने सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए वैयक्तिक संघर्ष शुरू किया। समाज में व्यक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठित करने तथा उसे वांछित मान्यता प्राप्त करने के इस संघर्ष ने साहित्य जगत् में भी हलचल मचा दी। फलतः हिन्दी कविता में एक नूतन वैयक्तिक चेतना का उदय हुआ, वह है प्रयोगवाद ।

"ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद का जन्म छायावाद की सूक्ष्मतावादी मनोवृत्ति, अमूर्त भावबोध और स्फीत काव्य पदावली की प्रतिक्रिया के रूप में था[1]।"

प्रत्येक युग की कविता प्रयोगवादी है । क्योंकि उसमें कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर पूर्ववर्ती काव्यधारा से एकदम भिन्न प्रयोग अवश्य होता है । "किन्तु प्रयोगवाद नाम उन कविताओं केलिए रूढ़ हो गया है जो कुछ नए बोधों, नयी संवेदनाओं एवं उन्हें प्रेरित करनेवाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू शुरू में 'तारसप्तक' से सन् 1943 में प्रकाश आदि में आई और प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयी तथा जिनका पर्यवसान नयी कविता में हो गया[2]।" असलियत में प्रयोगवादी कविता से हिन्दी में नवलेखन का कार्य शुरू होता है । या यों कहिए कि प्रयोगवादी कविता नवलेखन की भूमिका है । "प्रयोगवाद नवलेखन के ठीक पहले की स्थिति है[3]।"

कोई भी साहित्यिक आन्दोलन किसी योजना के अनुसार नहीं होता । उसकेलिए ऐतिहासिक सन्दर्भ, विशिष्ट व्यक्तियों का परिश्रम और विशिष्ट परिस्थिति की आवश्यकता है । "इन सबके समवेत होने पर साहित्य में एक नई प्रवृत्ति परिलक्षित होती है और वह धीरे धीरे घनीभूत होकर सुदृढ़ और नामी बन जाता है[4]।" प्रयोगवाद के सन्दर्भ में भी यही हुआ । प्रयोगवादी कविता 'तारसप्तक' के प्रकाशन से एकदम फूट निकली हुई आकस्मिक घटना नहीं है । बरसों पहले से ही इस केलिए बादल उमड़ने लगे थे और उचित समय पाकर बरस पड़े । शिवकुमार मिश्र की दृष्टि में 'तारसप्तक के प्रकाशन (1943) से कुछ वर्ष पूर्व 1939-40 के आसपास की परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं जिनमें इस आन्दोलन को प्रेरणा देनेवाले और पनपनेवाले तत्त्व पर्याप्त मात्रा में निहित थे[5]।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि "तारसप्तक" के प्रकाशन के पहले भी साहित्य के क्षेत्र में ऐसी व्यक्तिवादी चेतना की झाँकियाँ अवश्य हुई हैं । पर एक व्यवस्थित आन्दोलन के रूप में प्रयोगवाद की शुरुआत तारसप्तक से होती है । "दूसरा सप्तक" तथा "प्रतीक" पत्रिका से इसको प्रतिष्ठा मिली । नामवरसिंह के शब्दों में "हिन्दी कविता के पाठकों में प्रयोगवाद की चर्चा "तारसप्तक" कविता संग्रह (1943 ई०) से शुरू हुई "प्रतीक" पत्रिका (जुलाई 47-52) से उसे बल मिला और "दूसरा सप्तक" कविता संग्रह (1951 ई०) से उसकी स्थापना हुई ।[6] "शिवकुमार मिश्र ने भी इस विचार का समर्थन किया है । "सन् 1947 में भी अज्ञेय के संपादकत्व में "प्रतीक" नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिस में प्रकाशित अधिकांश कवियों तथा कविताओं ने प्रयोगवाद सम्बन्धी प्रचलित धारणा को बल प्रदान किया और उसकी चर्चा अधिक तीव्रता से की जाने लगी ।[7] " अलावा इसके प्रयोगवाद के विकास केलिए "उन्मुक्त", "स्पार्श", "हंस", "विशाल भारत" जैसी पत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण है ।

"तारसप्तक" का महत्व इसलिए है कि उसने परिवर्तनकामी सात कवियों को संगठित करने का श्रेष्ठ कार्य किया । काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है । तारसप्तक में सात कवियों - मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय - की कविताएँ संकलित हैं । इन कवियों को एक साथ बाँधने से अज्ञेय इनका अगुवा बन गए । "तारसप्तक" के कवियों की कविताओं के साथ उनके अपने अपने वक्तव्य भी जोड़े गये हैं । वे सब न समान मानसिकता के हैं न उनका उद्देश्य एक ही है । असलियत में वे सब अन्वेषक मात्र हैं । उनके अन्वेषण की दिशाएँ भिन्न भिन्न हैं । तारसप्तक की विस्तृत भूमिका में संकलनकर्ता अज्ञेय ने विभिन्न दिशाओं में भटकते हुए अन्वेषियों के सम्बन्ध में यों कहा, "वे कविता के किसी एक स्कूल के न नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं अभी राही हैं - राही नहीं,

राहों के अन्वेषी । उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है - जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में, काव्यवस्तु और शैली के, छन्द और तुक के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है[8] ।" काव्य सत्य की खोज में विभिन्न दिशाओं में भटकते ये अन्वेषी वास्तव में प्रयोगधर्मी है । "तारसप्तक" का दूसरा संस्करण सन् 1963 में, तीसरा संस्करण 1970 में सामने आये । दूसरे संस्करण में संपादक महोदय ने कुछ और स्पष्टीकरण भी किया है । तीसरे संस्करण में सातों कवियों ने पुनश्च: लिखकर अपनी मान्यताओं के सम्बन्ध में अतिरिक्त विवरण भी दिए है साथ ही साथ कुछ कविताएं भी । बाद में यह ग्रन्थ प्रयोगवाद का घोषणा पत्र बन गया ।

"तारसप्तक" के अलावा अज्ञेय द्वारा संपादित प्रतीक से हिन्दी की समयुगीन काव्य प्रवृत्तियां विशेष रूप से पुष्ट हुई वास्तव में उसे प्रयोगवादी कविता का मुख पत्र कहा जा सकता है । "द्वितीय महायुद्ध के आसपास की नयी साहित्यिक चेतना " प्रतीक" {1946} के माध्यम से सबसे पहले मुखरित हुई थी और इसलिए तारसप्तक के साथ ही साथ प्रतीक भी आधुनिक साहित्य को विशेष मोड़ देने में ऐतिहासिक योग रहा है[9] ।"

सन् 1951 में अज्ञेय द्वारा संपादित "दूसरा सप्तक" ने प्रयोगवादी कविता के स्वरूप को स्वच्छ करने में पर्याप्त योग दिया है । उसमें और सात कवियों-भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती-का मेल हुआ । उनकी बहुत सारी कविताएं प्रयोगात्मक है । पर इसके सभी कवि प्रयोगधर्मी नहीं है । धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय जैसे कवि कुछ आगे जाकर कविता की नई भावभूमि तलाशते हुए दिखाई पड़ते हैं । प्रयोग के प्रति तारसप्तककालीन जैसा आग्रह "दूसरा सप्तक" में नहीं है ।

"तारसप्तक" तथा "दूसरा सप्तक" में स्थिति तथा व्यक्ति का बहुत बड़ा भेद मौजूद है । अत: उनकी समस्याओं में भी काफी फर्क आ गया है । "तारसप्तकवाले अपने छायावादी अवधि पारकर उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया करते हुए प्रयोगवादी थे तो दूसरे सप्तकवाले अपनी रोमांटिक भावनाएं लेकर प्रयोगवाद में आये । पहले सप्तक और दूसरे सप्तक में यही मौलिक भेद है । व्यक्ति के विकास की दृष्टि से पहला तारसप्तक अधिक मजबूत है और दूसरा सप्तक रोमांटिक परिधान की दृष्टि से अधिक मनोरम ।[10]"

प्रपद्यवाद

बिहार के नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश ने मिलकर एक नकेनवादी "प्रपद्यवाद" की स्थापना की । वे प्रयोगवाद की गरम चर्चा से अपने को बिलगाकर एक नए काव्यान्दोलन केलिए भी प्रयत्नशील थे । पर वास्तव में प्रयोगवाद से अपने को पृथक रखनेलायक कोई खास विशेषता के अभाव में नकेनवाद को प्रयोगवाद की कोख में ही शरण लेना पड़ा । "प्रयोगवाद का एक दूसरा पहलू बिहार के नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश के नकेनवादी प्रपद्यों द्वारा सामने आया जो अपनी समझ से अज्ञेय के प्रयोगवाद का विरोध करते हुए भी वस्तुत: उसी की एक शाखा है ।[11]"

संक्षेप में प्रयोगवाद सन् 1943 से 1953 तक के समय में काफी प्रतिष्ठित हो गया । उसके मूल में अतृप्त व्यक्ति मन की वैयक्तिक प्रतिक्रियाएं निहित हैं ।

माध्यम की सार्थकता

बदली हुई सामाजिक परिस्थिति से अनेक बुद्धिजीवियों की सृजनात्मक प्रवृत्तियों में सहज ही प्रयोग की मानसिकता आ जाएगी ।

नए काव्य सत्य की तलाश में रत "तारसप्तक" के राहियों का पाथेय रहा "प्रयोग"। अज्ञेय और उनके सहयोगियों में प्रयोग करने की त्वरा वर्तमान है। उनकी प्रयोगशीलता कथ्य एवं शिल्प के अछूते तथा उनदेखे आयामों पर स्थित है। "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं यद्यपि किसी एक काल में विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़ कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक छुआ नहीं गया या जिनको अभेद्य मान लिया है।"[12]

वैसे ही प्रयोग उनकेलिए साध्य नहीं साधन है। उनकी इस प्रयोगात्मक मानसिकता को और भी स्पष्ट करते हुए अज्ञेय ने कहा, "प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वह साधन है। और दोहरा साधन है। क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छीतरह अभिव्यक्त कर सकता है।"[13] उनके प्रयोग की प्रवृत्ति में कोई सीमितता नहीं विस्तार है। वे काव्य सत्य के प्रत्येक आयाम को प्रयोग की कसौटी पर कसने के इच्छुक हैं चाहे वह कथ्य से सम्बन्धित हो चाहे शिल्प से। "किन्तु प्रयोग केलिए प्रयोग इनमें से भी किसी ने नहीं किया है, पर नयी समस्याओं और नये दायित्वों का तकाज़ा सबने अनुभव किया है उससे प्रेरणा सबको मिली है।"[14]

प्रयोग को मापदण्ड माननेवाले उन कवियों को बाद में प्रयोगवाद के घेरे में बन्द रहना ही पड़ा। किन्तु प्रयोगधर्मी लेखकों का अगुआ अज्ञेय ने ही उस के प्रति असहमति प्रकट की है। "प्रयोग का कोई वाद नहीं है हम वादी नहीं रहे, नहीं है न प्रयोग अपने-आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है कविता

अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है । अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना ।[15]" नेमिचन्द्र जैन के इस कथन में भी प्रयोगवाद नाम की अस्वीकृति की झलक मिल जाती है । "तारसप्तक के कवियों और विशेषकर संपादक महोदय के चुनौती भरे स्वर तथा सिद्धान्तवाजी के कारण और कुछ हिन्दी के आलोचकों के कारण उन कवियों को काल्पनिक प्रयोगवाद की ही चर्चा अधिक हुई, उनकी कविता का उचित आकलन या मूल्यांकन नहीं हो सका ।[16]" वादों के सीमित दायरे में अपनी प्रयोगात्मक त्वरा को बांधकर नए काव्य सत्य की तलाश में निरत सप्तक काव्य के कवियों की विशाल मानसिकता को संकुचित करने के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए अज्ञेय ने कहा कि हम प्रयोगवादी नहीं प्रयोगशील है । इस शील में विस्तार का बोध निहित है । इसलिए अज्ञेय ने अपने को प्रयोग शील सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

वस्तुतः प्रयोगवाद और प्रयोगशील एक दूसरे से भिन्न नहीं । शिल्प के प्रति अतिशय झुकाव के कारण कुछ लोगों ने इसे रूपवादी कविता[17] घोषित करने का प्रयत्न किया है । इसका खण्डन माथुर ने यों किया - "मात्र रूपाकारों पर प्रयोग करनेवाली कविताओं को प्रयोगवाद नाम देने का श्रेय प्रगतिवादियों को है ।[18]" प्रयोगवाद में मात्र रूपाग्रह ही नहीं विषय विस्तार भी है । वे काव्य के अछूते और अनदेखे आयामों को छूने और उन्हें प्रकाश में लाने के प्रयत्न में कटिबद्ध हैं । इस केलिए वे काव्य के क्षेत्र में एक नवीन भावबोध एक मानसिकता को आजमाते हुए प्रयोग के क्षेत्र में उपस्थित हो गए । पूर्ववर्ती काव्य संस्कारों को नकारते हुए उन्होंने कुछ नवीनता को प्रक्षेपित किया है । "प्रयोगवाद कोरे रूपवाद से अधिक व्यापक प्रकृति तथा विचारधारा का वाचक है जिसमें थोड़े थोड़े से अंतर के साथ अनेक ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों और विभिन्न धाराओं का समावेश हो गया है ।[19]"

नए काव्य सत्य की तलाश

प्रयोगवादी कवियों की प्रयोगात्मक मानसिकता के पीछे नए काव्य सत्य को तलाशने की अदम्य अभिलाषा विद्यमान है। इसीने उन्हें राही बना दिया। उस सन्दर्भ में काव्य उनकेलिए साधन है। साध्य बन गया काव्य सत्य। ज्ञात में अज्ञात अंशों को खोजना और अज्ञात की प्राप्ति केलिए तरसना यह प्रवृत्ति प्रयोगवादी कविता को दूसरों से अलगाती है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने यों कहा 'प्रयोगवाद केवल अज्ञात की खोज ही नहीं करना चाहते थे वह ज्ञात में भी अज्ञात खोजते थे।[20]' शिवकुमार मिश्र ने भी प्रयोगवादियों के राहों के अन्वेषण के पीछे निहित काव्य सत्य को तलाशने की कामना की ओर इशारा किया है। 'काव्यगत नए सत्य की खोज के सिलसिले में प्रयोगवादी कवि ने नयी राहों के अन्वेषण का प्रयत्न किया तथा अछूते क्षेत्रों की ओर जाने की अपनी रुचि प्रदर्शित की।[21]' वास्तव में सत्य का यह अन्वेषण साहस एवं जोखिम भरा काम है।

परंपरा का निषेध

प्रयोगवादी कवियों ने अपने अन्वेषण के दौरान प्रचलित मान्यताओं की निरर्थकता महसूस की। उन्होंने उन पर प्रश्न चिह्न भी डाला। अपने मार्ग पर बाधा उपस्थित करनेवाले तत्वों पर उन्होंने सन्देह भरी दृष्टि ही नहीं डाली, उन्हें निर्मूल करने का साहस भी किया। काव्यगत सत्य के साक्षात्कार केलिए वे नयी उद्भावनाओं के उद्घाटन में रत रहे। अपनी नयी मानसिकता की स्थापना केलिए हर युग में सृजनात्मक व्यक्तित्व को ऐसा काम करना पड़ा है। 'युग चेतना का साहित्य अपने पिछले युग की समस्त मान्यताओं और परंपराओं को तोड़कर नवीन स्थापनाएं करता है।[22]' स्पष्ट है कि परंपरा का निषेध प्रयोगवादी कविता की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने छायावाद - प्रगतिवाद की रूढ परंपरा तथा प्रवृत्ति

के प्रति विद्रोह किया है । यह भी नहीं काव्य में अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने की अपेक्षा भी उन्होंने यों की है ।

"यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ नया हूँ :
काव्य तत्व की खोज में कहाँ नहीं गया हूँ ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक एक शब्द सराहते हुए पढ़ें ।"[23]

वास्तव में "तारसप्तक का प्रकाशन छायावाद रहस्यवाद प्रगतिवाद आदि के बन्धनों से मुक्ति का आह्वान था – यद्यपि तारसप्तक के कुछ कवि अपने को छायावादी रोमानी प्रवृत्तियों से पूर्णतः मुक्त नहीं कर पाए ।"[24]

प्रयोगवादी कविता की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं ।

1. वैयक्तिकता   2. बौद्धिकता   3. नूतन सौन्दर्यबोध
4. निराशा, असंतोष, अस्वीकृति, अनास्था का चित्रण
5. ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह   6. लघुता बोध   7. क्षणवाद
8. विषय भूमि का विस्तार   9. शैल्पिक सजगता

1. वैयक्तिकता

प्रयोगवादी कविता व्यक्ति की मनःस्थितियों, आकांक्षाओं और संवेदनाओं को प्रश्रय देनेवाली कविता है । इसकी व्यक्तिवादिता छायावादी व्यक्तिवादिता का विकसित रूप है । "ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद उत्तर-छायावाद की समाज-विरोधी अतिशय व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का ही बढ़ाव है ।"[25]

मनुष्य मूलत: वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और प्रतिष्ठा चाहता है । "मनुष्य पहले व्यक्ति है पीछे समाज की इकाई और उसका पहला रूप ही मौलिक स्वरूप है ।[26]" व्यक्ति अपने इस मौलिक रूप को ही पसन्द करता है । जब इस मौलिक स्वरूप पर बाहरी शक्तियों का दबाव आ जाता है तब वह सहज ही वैयक्तिक स्वातन्त्र्य केलिए संघर्षरत हो जाता है । वास्तव में प्रयोगवादी कविता की वैयक्तिकता अपने सामाजिक अनुभव से जन्मी है याने प्रगतिवाद के सामाजिक यथार्थ को विकसित करके यह काव्यधारा अग्रसर हुई है । इसलिए प्रयोगवादी कविता समसामयिक जीवन की चेतना से उद्भूत अवश्य है । यह चेतना मात्र कवि की नहीं बहुतों की है ।

प्रयोगवादी वैयक्तिकता छायावादी वैयक्तिकता का विकसित रूप होते हुए भी उससे भिन्न स्तर की है । उसमें अयथार्थ वायवी जगत् में विचरण करनेवाले कवि की काल्पनिक पीड़ा का बोध नहीं है । व्यक्ति द्वारा अनुभूत विसंगतियों का मार्मिक चित्रण ही प्रयोगवादी वैयक्तिकता को छायावादी वैयक्तिकता से पृथक रखता है । वैयक्तिकता की प्रमुखता के कारण आलोचक उसे "व्यक्तिवादी"[27] कविता मानते हैं । नामवरसिंह ने यों कहा, "प्रयोगवाद के पन्द्रह वर्षों का इतिहास व्यक्तिवाद के दो सीमांतों के बीच फैला हुआ है । इनमें से एक सीमांत है मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति मध्यवर्गीय कवि का वैयक्तिक असंतोष और दूसरा सीमांत है जन जागरण से डरे हुए कवि की आत्म रक्षा की भावना । कुल मिलाकर यह चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्र बिन्दु है और विभिन्न राजनैतिक, नैतिक, सामाजिक मान्यताओं के रूप में यह संकीर्ण व्यक्तिवाद अपने को व्यक्त करता रहता है ।[28]" व्यक्तिगत राग-विरागों की अभिव्यक्ति के हेतु उसमें अहंवाद, क्षणवाद और भोगवाद का प्रवेश किया गया है ।

प्रयोगवादी वैयक्तिकता की प्रमुख विशेषता यह है कि वह समाज से जुड़ी हुई है । प्रयोगवाद वास्तव में प्रगतिवादी अतिशय सामाजिक

चेतना के बीच उभरित व्यक्ति मन की प्रतिक्रिया थी अत: अपने व्यक्ति सत्य की स्थापना तथा उसे समष्टि तक पहुँचाने की समस्या उन्हें सदैव सताती रही थी । "व्यक्ति का सत्य उसे समष्टि तक कैसे संपूर्णता में पहुँचा जाये यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।[29]" गोया कि वह समष्टि की इकाई है । प्रयोगवादी कवि अपने आत्मगत सत्य को समष्टिगत सत्य में परिवर्तित करके एक वृहत्तर सन्दर्भ से जुड़ने की कोशिश में रत है । कहीं कहीं समष्टिगत सत्य की वैयक्तिक प्रतिक्रिया भी हुई । संक्षेप में प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की पुन: प्रतिष्ठा हुई और उसके मूल में बौद्धिक चिन्तन की प्रधानता है । प्रयोगवाद के प्रवर्तक तथा बाद में नई कविता के समर्थकों की कविताओं में यह विशेषता स्पष्ट है ।

धर्मवीर भारती ने अपनी वैयक्तिक पीड़ा को यों व्यक्त किया है ।

"अपनी कुंठाओं की
दीवारों में बन्दी
मैं घुटता हूँ ।[30]"

कवि की पीड़ा व्यक्ति के सीमित दायरे का अतिक्रमण करके समाज के व्यापक आयामों में जुड़ती है । अतृप्त व्यक्ति मन की आंतरिक पीड़ा अज्ञेय की कविताओं में भी गुंजित है । समसामयिक परिस्थिति से त्रस्त कुंठाग्रस्त व्यक्ति की आत्मरुदन अज्ञेय की "नदी के द्वीप" नामक कविता में प्रकट है । कवि ने इसमें यह विचार प्रकट किया कि अतिशय सामाजिकता की आँधी में व्यक्ति का द्वीप नहीं टिकेगा । वह समर्पण करता है । किन्तु कवि ने यह आशा भी प्रकट की है कि अनुकूल स्थान पर पुन: पाँव टिकेगा और अपने अस्तित्व को प्रमाणित करेगा ।

"हम नदी के द्वीप हैं
x x x x x
स्थिर समर्पण है हमारा
x x x x x
फिर छनेंगे हम जिएंगे हम
कहीं फिर भी पैर टेकेंगे
कहीं फिर भी खड़ा होगा नव
व्यक्तित्व का आकार ।"[31]

अनस्तित्व की पीड़ा से संत्रस्त कवि ने अपने अस्तित्व के लिए अनुकूल परिस्थिति की आशा प्रकट की । यहाँ "स्थिर समर्पण" में वैयक्तिक पैठ विद्यमान है । "द्वीप" से "व्यष्टि" तथा "नदी" से "समाज" की इसमें व्यंजना हुई है । कवि ने इस सत्य को बारंबार प्रस्तुत किया कि काव्य प्रेम से कभी भी व्यक्ति सत्ता कुम्हलाती नहीं । वह समाज की व्यापक भावभूमि में अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के पक्ष में है ।

"हम नदी के द्वीप हैं
यह नहीं कहते कि
हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाए ।"[32]

किन्तु अज्ञेय सामाजिक समस्याओं के प्रति अनास्था रखनेवाला कवि नहीं है । अतिशय सामाजिकता के दबाव में वैयक्तिक चेतना को बिलकुल उपेक्षित करने के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठाई है । इस दृष्टि से अज्ञेय व्यक्तिवादी की अपेक्षा व्यक्तित्ववादी है। जैसे नेमिचन्द्र जैन ने कहा, "कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में है उसकी व्यक्तित्व हीनता में नहीं ।"[33]

प्रयोगवादी कवि की कुछ व्यक्तिपरक कविताओं में रोमांटिक भावना का बदला हुआ रूप विद्यमान है। उसमें छायावादी कल्पनाजन्य वैयक्तिक सौन्दर्य चेतना नहीं। प्रयोगवादी कविता की रोमांटिक चेतना ठोस यथार्थ से उत्पन्न है। उसमें अनुभूत सत्य की मिठास और कटु वाचन दोनों है। अतः प्रयोगवादी कविता की रोमांटिक भावना को नव स्वच्छन्दता कह सकते हैं। यद्यपि स्वच्छन्दता प्रयोगवादी कविता की मूल प्रवृत्ति नहीं फिर भी कुछ कवियों में यह प्रवृत्ति कभी-कभी दिखाई पड़ती है। उनमें रोमैंटिक का उतार चढ़ाव लक्षित होता है। अन्-वेषण, एकांत प्रणय, सौन्दर्य वासिता अतीत का सम्मोहन, देश भक्ति आदि रोमैंटिसिज्म के मूलभूत तत्व हैं। प्रयोगवादी कवि धर्मवीर भारती ने प्रेम और सौन्दर्य को जिस कल्पनाशील भावुकता से आत्मसात किया है वह जीवन के कठोर और निर्मम यथार्थ से टकराती है। देखिए -

"हरी बांसुरी को आयी है मोहन के होठों की याद
बहुत दिनों के बाद,
फिर, बहुत दिनों के बाद खिला बोला
मेरा आंगन महका।"[34]

स्पष्ट है कि छायावादी स्वच्छन्दता का बदला हुआ रूप प्रयोगवादी कविता में वर्तमान है।

2. बौद्धिकता

छायावादी भावुकता की जगह प्रयोगवादी कविता में बौद्धिकता की प्राणप्रतिष्ठा हुई जो यथार्थ परक दृष्टि और सामाजिक दबाव का परिणाम है। विश्वम्भर मानव की शब्दावली में "प्रयोगवादी

कविता में भावना की अपेक्षा बौद्धिकता का प्राधान्य है।[35] यह बौद्धिकता कदापि आरोपित नहीं। आधुनिक मानव सोचता है तर्क करता है। प्रयोगवादी कवि प्रत्येक अनुभूति या संवेदना को बुद्धि की कसौटी पर कसने के पक्ष में है। मुक्तिबोध ने इस की ओर संकेत यों किया है। "प्रयोगवादी कविताएं तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध व्यक्ति द्वारा की गई भावनात्मक प्रतिक्रियाएं हैं किन्तु अब व्यक्ति छायावादी नहीं उसमें अब बौद्धिकता आ गई है। वह जो देखता है उस पर सोचना चाहता है, जो अनुभव करता है वह लिखना चाहता है।[36]"

वैसे ही प्रयोगवादी कविता में हर भावना के सामने प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। इस प्रश्न चिह्न को हम बौद्धिकता कह सकते हैं। यह प्रश्न चिह्न ही अभिव्यक्ति में साहित्य के क्षेत्र में बुद्धितत्व के प्रवेश को सूचित करता है जो बाद में आधुनिकता का मूल मंत्र बन जाता है। प्रयोगवादी कवि अपनी आत्मनिष्ठ अनुभूति के सभी क्षेत्रों में बुद्धितत्व को स्थान देता है। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की निम्न लिखित पंक्तियों में बौद्धिक यथार्थ की ओर इशारा है।

"क्रौंच बैठा हो कभी वाल्मीक पर
तो मत समझ
वह अनुष्टुप बांचता है संगिनी के स्मरण से
जान ले वह दीमकों की टोह में है।[37]"

क्रौंच पक्षी वाल्मीक पर भूख के मारे बैठता है न कि अपनी प्रिया की याद में। यहाँ कवि के बदलते हुए सौन्दर्यबोध के साथ ही साथ यथार्थ की व्यंजना हुई है।

G 3468

3. नूतन सौन्दर्यबोध

प्रचलित धारणाओं और मान्यताओं को बदलने तथा अपनी नयी मानसिकता के अनुरूप नए मूल्यों की स्थापना करने की अदम्य अभिलाषा से प्रयोगवादी कवि ने प्रचलित रूढ़ सौन्दर्य चेतना के प्रति असहमति प्रकट की। कोरी सौन्दर्यवादिता के प्रति, सौन्दर्य के प्रतिष्ठित उपमानों के प्रति विद्रोह करते वक्त उनका नवीन सौन्दर्यबोध उजागर होता है। छायावादी प्रकृति सौन्दर्य के प्रति कवि अज्ञेय ने यों अपना विद्रोह प्रकट किया है।

"चंचला है चांदनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार-
शिशिर की राका-निशा की शान्ति है निस्सार।"[38]

प्रस्तुत प्रकृति चित्रण में कवि का परिवर्तित सौन्दर्यबोध स्पष्टतः प्रकट है।

प्रयोगवादी प्रकृति चित्रण का परिचय देते हुए रामदरश मिश्र ने कहा, "वह एक तो प्रकृति को बहुत सीमित रूप में देख पाता है दूसरे उस सीमित रूप को भी नवीन सत्यों (नवीन सत्यों का अर्थ उसके यहाँ मध्यवर्गीय कवि की कुंठा, दर्द, घुटन, तड़पन है) को व्यक्त करने के उपकरणों के रूप में स्वीकारता है। ये कविताएं जन जीवन के उल्लास से कटकर भी कवि की अनुभूति व्यथा से सिंची होने के कारण तथा बिम्बात्मक होने के कारण दर्द की लकीर सी खींच जाती हैं। प्रयोगवाद के मुख्य कवि अज्ञेय, शमशेर, गिरिजाकुमार माथुर की अधिकांश कविताएं इसी प्रकृति का परिचायक हैं।"[39]

4· निराशा, असंतोष, अस्वीकृति, अनास्था

प्रयोगवादी कविता में निराशा, अनास्था, असंतोष और उदासी का स्वर अधिक मुखरित है जो वास्तव में कुंठित चेतना की उपज है। "कुंठित अनास्था, निर्भ्रान्ति और पीड़ा का अतिवैयक्तिक स्तर पर उद्घाटन प्रयोगवादी काव्य का प्रमुख स्वर रहा है।"[40] उसके कवि युग जीवन की विषमताओं से जूझकर संघर्ष करते हैं। पर वे उस संघर्ष में पराजित होकर निराशा, अनास्था, उदासी आदि का शिकार बन जाते हैं। यहीं पर दुबारा उन्हें असफलता का शिकार बनना पड़ता है और झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा से विमुख होकर निरीह की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वास्तव में उनके व्यक्तित्व में व्याप्त असंतोष, अनास्था, निराशा, अस्वीकृति के मूल में यह पराजयजन्य पीड़ा ही सक्रिय रही है।

परंपरा और मानवीय मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप ईश्वर देवी-देवता, नैतिकता, आस्था, अस्तित्व के प्रति उनका विश्वास टूट गया। जीवन के प्रति अनास्थामूलक दृष्टिकोण अपनाने से उनकी कविता में कुंठाग्रस्तता और व्याकुलता की झलक भी मिल जाती है।

> "इस सूनी दुनिया में प्रियतम/मुझको और कहाँ रस होगा ?
> तुम्हें, तुम्हारी स्मृति के सुख से/प्लावित मेरा मानस होगा।"[41]

अज्ञेय से भिन्न स्तर का है मुक्तिबोध के असंतोष और अस्वीकृति का स्वर। उनमें एक नये ढंग की कशमकश द्रष्टव्य है। यह कशमकश संस्कार और विवेक की है।

5. ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह

प्रयोगवादी कविता में छायावादी आदर्शपरकता की जगह यथार्थ परकता का समावेश हुआ । उसका यथार्थ प्रगतिवादी कविता का सामाजिक यथार्थ नहीं, वैयक्तिक यथार्थ है । क्योंकि इस पर फ्रायड का प्रभाव पड़ा है प्रगतिवादी कविता के समान मार्क्स का नहीं । अतः उसका यथार्थ मनोवैज्ञानिक यथार्थ है । मनोवैज्ञानिक यथार्थ होने के नाते उसमें अंतर्मन की अतल गहराई में छिपी हुई भावनाओं का बिम्बीकरण हुआ है । प्रयोगवादी कवि ने अपने व्यक्ति मन के ज़रिये मध्यवर्गीय समुदाय की दुर्बलता को उद्धृत किया है । प्रयोगवादी कविताएं ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र है । इसमें मध्यवर्गीय हीनता, दीनता, अनास्था, कटुता, पलायन आदि का चित्रदर्शन हुआ है । मतलब उसका यथार्थ बिलकुल अंतर्मुखी है, बहिर्मुखी नहीं ।

6. लघुता बोध

वैयक्तिक, बौद्धिक, यथार्थ अनुभूतियों को शब्दबद्ध करने के सन्दर्भ में प्रयोगवादी कवियों का लघुताबोध उजागर होता है । इसको प्रसाद जी ने "यथार्थवाद का केन्द्र बिन्दु"[42] माना है । प्रयोगवादी कवि का लघुताबोध प्राचीन कवियों के लघुताबोध से एकदम भिन्न है । प्रयोगवादी कवि भक्ति कालीन कवियों के समान अपने आराध्य देवता के चरण कमलों पर अपने को न्योछावर करने केलिए तैयार नहीं । वे अपनी अस्मिता को कायम रखने के पक्ष में हैं । वास्तव में उन्हें यह बोध यथार्थवादी मानसिकता से मिला है ।

7. क्षणवाद

प्रयोगवादी कविता में क्षणवादी विचारों की व्यापक उद्भावना हुई है। "अमूर्त क्षणों की पहचान क्षणवाद नहीं बल्कि क्षणों में पूर्वापर क्रम न देखना क्षणवाद है[43]।" इस क्षण के आग्रह के पीछे वर्तमान को भोगने की अदम्य लालसा वर्तमान है। "क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं, अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है[44]।" यह क्षण लघु होकर भी विराट और असीम है। कवि अज्ञेय की शब्दावली में -

"एक क्षण, क्षण में प्रवाह व्याप्त संपूर्णता[45]।"

किन्तु सभी क्षण अभिव्यक्ति नहीं पाते "व्यक्ति जीवन में समस्त जीवनानुभव समान रूप से प्रधान नहीं होते। समूचे जीवनानुभवों में ऐसे कुछ क्षण इतने महत्वपूर्ण बन जाते हैं जब व्यक्ति की अनुभूति अभिव्यक्ति पाती है। वह अमुक क्षण व्यक्ति के अस्तित्व से सम्बन्ध रखता है। हमारी आत्मा में बहुतेरे अनुभव संचित हैं उनमें गहन अनुभूति के क्षण थोड़े होते हैं जब हममें एस्थेटिक इमोशन जाग उठता है तब हम कविता लिखते हैं[46]।" प्रयोग कलात्मक अनुभव का क्षण है। प्रयोगवादी कवि चेतना पर किसी संज्ञा का अनवरत सूक्ष्म स्पन्दन भी अनुभव करता रहता है।

8. विषयभूमि का विस्तार

बौद्धिक संवेदनता, क्षणवादिता आदि के कारण प्रयोगवादी कविता में यथार्थवादी दृष्टिकोण को अधिक विस्तार मिला। फलतः काव्य विषय सम्बन्धी परम्परागत धारणाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन लाते हुए प्रयोगवादी कविता ने कविता के कलेवर को जीवन के बृहत्तर तथा सूक्ष्म सन्दर्भों से सम्बद्ध किया। उन्होंने "मोयठो", "गंधमय अम्बर", "कंक्रीट

के पोर्च", "पाँवों में इठलाती चप्पल", "सायरन", "रेडियम घड़ी", "बाथरूम", "चाय की प्याली" आदि को दाखिल किया ।

प्रयोगवादी कविता में कहीं कहीं रहस्यात्मकता की झलक मिल जाती है । उनका रहस्यवाद छायावादी रहस्यवाद के समान ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है । इसी प्रकार उनमें असीम, अमेय और अमूर्त सत्ता से जुड़ने का मोह भी नहीं। इनका रहस्यवाद किसी दैविक शक्ति की खोज न करके आत्मस्व की ही खोज है । अज्ञेय की प्रस्तुत पंक्तियाँ उसका अच्छा मिसाल हैं ।

"मैं भी एक प्रवाह में हूँ
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है ।
मैं उस असीम शक्ति से
सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ -
अभिभूत होना चाहता हूँ
जो मेरे भीतर है ।"[47]

व्यक्ति स्वातन्त्र्य की यह खोज प्रयोगवादी कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । दूसरे शब्दों में उसका रहस्यवाद बौद्धिक रहस्यवाद है ।

९. शैल्पिक सजगता

जहाँ तक काव्य-शिल्प का सम्बन्ध है, प्रयोगवादी कविता में शिल्पपक्ष को अधिकाधिक महत्व दिया गया है । इस शिल्प सजगता के कारण इसका नाम शिल्पनिष्ठ काव्य भी हुआ है । प्रयोगवादी कवि अपनी वैयक्तिक यथार्थ-मानसिकता की अकुण्ठ अभिव्यक्ति केलिए शिल्प के

विविध उपादानों के प्रति विशेष सजग थे । उनकी शिल्प सजगता छायावादी शिल्प-सजगता से एकदम भिन्न है । छायावादी कवि अतिशय कल्पनाओं की अभिव्यक्ति केलिए कृत्रिम शिल्प को अपनाते थे जबकि प्रयोगवादी कवि अपनी यथार्थ अनुभूति को स्वरबद्ध करने केलिए परंपरागत शिल्पगत प्रयोगों को झकझोरते हुए शैल्पिक चमत्कारिता उत्पन्न करते थे । फलत: प्रयोगवादी कविता में नूतन भाषा, शब्द, बिम्ब, प्रतीक और छन्द के प्रयोग परिलक्षित होते हैं ।

अ· काव्यभाषा

प्रयोगों की खोज में संलग्न प्रयोगवादी कवि ने काव्य भाषा को बोलचाल के निकट लाने का स्तुत्य कार्य किया । इस केलिए शब्द-प्रयोग पर उन्होंने अधिक ध्यान दिया है । अत: कवि के मन में उठती अनुभूति को कविता में उंडेलने केलिए शब्द की महत्ता असंदिग्ध है । प्रयोगवादी कवि ने अपनी बदली हुई अनुभूति की अभिव्यक्ति केलिए परम्परागत शब्द संचय को अपर्याप्त समझकर अभिधान शब्दों की खोज की । फलत: प्रयोगवादी कविता में एक ओर पिसी पिटी शब्दावली का परित्याग हुआ दूसरी ओर नये शब्दों की खोज की गई । कहीं कहीं उन्होंने पुराने शब्दों में नया अर्थ भरकर उन्हें नए सन्दर्भ से जोड भी दिया है । और कहीं अनुभूति को मार्मिक तथा प्रभावात्मक बनाने केलिए विराम संकेतों को, छोटे बडे टाइप को, सीधे या उल्टे अक्षरों को, लोगों और स्थानों के नामों को काव्यात्मक बनाया है । "छायावादी कविता के शब्द जहाँ कल्पना कलित कोमल थे वहाँ प्रयोगवादी कविता के शब्द अनगढ़ ठोकरों से कडे थे ।"[48] उन्होंने "कंकड", पत्थर और रोडे जैसे शब्दों को उनके सहज सौन्दर्य के साथ काव्य में ढाला है । "जीवन की भट्ठी में भाषा के भी पाशा रूप बना लेने का कवि संकल्प प्रस्तुत कविताओं में प्रत्यक्ष दीखता है ।"[49] नरेश मेहता को छोड़कर शेष

प्रयोगवादी कवियों की शब्द रचना अधिक सरल दीखता है । इस सरलता में भी अर्थ गंभीरता प्रयोगवादी कविता की प्रमुख खासियत है ।

{आ} बिम्ब

जहाँ तक बिम्ब योजना का सम्बन्ध है प्रयोगवादी कवियों ने शब्दों से बिम्बों का जो नूतन एवं सफल प्रयोग किया वह सूक्ष्म तथा मौलिक है । उसमें बिम्बों का विभिन्न रूप अंकित होता है ।

{1} दृश्य बिम्ब

"कलगियों पर कपोती सी
चांदनी अलसा रही थी ।"[50]

{2} अलंकृत बिम्ब

"गोमती तट
दूर पेंसिल रेख-सा वह वास झुरमुट ।"[51]

{3} भाव बिम्ब

"अब दिन डूब रहा है जैसे
कोई अपनी बीती बातें भुला रहा हो ।"[52]

{इ} प्रतीक

प्रतीक योजना के स्तर पर भी प्रयोगवादियों ने सफल एवं सार्थक प्रयोग किये है । यथार्थ की कटुता, नग्नता तथा वक्रता से छुटकारा पाने केलिए संकेतगर्भी प्रतीकों का योगदान अविस्मरणीय है । प्रयोगवादियों में अज्ञेय और शमशेर प्रतीकवादी है । प्रयोगवादी कविता में ऐतिहासिक,धार्मिक,पौराणिक, वैज्ञानिक, प्राकृतिक तथा यौन्य प्रतीकों की

बोलचाल है । उन्होंने सांस्कृतिक प्रतीकों को [धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक] नए सन्दर्भ में पेश करने की कोशिश की । "मनु"[53] दधीच[54] "गेटे"[55], "हिटलर"[56] आदि सांस्कृतिक प्रतीक है । दो पंखुरियाँ"[57], चाँदनी,[58] "दीप"[59] "साँप"[60] औरत प्रकृति से गृहीत प्रतीक है । यौन प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।

"सो रहा है झोंप अँधियारा
"नदी" की जाँघ पर ।"[61]

नवीनता के धुन में प्रयोगवादी कवि परम्परागत उपमानों के प्रति वितृष्णा प्रकट की । क्योंकि "ये उपमान मैले हो गये है ।"[62] फलस्वरूप ये कवि नवीन उपमानों को जुटाने तथा परंपरागत उपमानों को नए सन्दर्भ में ढालने के प्रयत्न में रत रहे ।

[ई] छन्द

परिवर्तित जीवन की अस्थिरता का वहन करने केलिए छन्द की स्थिरता असमर्थ तथा अनावश्यक ठहरती है । अत: प्रयोगवादी कवि मुक्त छन्द पर अधिक ज़ोर दिया । छायावादियों ने सोरठा और घनाक्षरी के लय पर मुक्त छन्द गढ़ा तो प्रयोगवादियों ने सवैयों तथा प्राचीन छन्दों के लयों पर ।

निष्कर्ष यह है कि प्रयोगवादी कविता मात्र रूप विधान की कविता नहीं उसमें जीवन की यथार्थता है । आत्मसत्य के ज़रिये काव्य सत्य को पाने की कोशिश में ये कवि एक हद तक सफल निकले हैं । नए रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रयोगवादी कविता कदापि समाज

निरपेक्ष नहीं । फ्रायड से प्रभावित होने के नाते उसमें दमित यौन भावनाओं की सहज स्वीकृति है । अन्तर्मन की उलझी हुई संवेदनाओं को सुलझाने के सन्दर्भ में निराशा कुंठा पीड़ा उदासी आदि की गुंजाइश भी हुई है । इन सब ऊपर कमर कसके बैठती है बौद्धिकता । अलावा इसके भाषा शब्द, उपमान योजना बिम्ब प्रतीक पर अवश्य नये नये प्रयोग हुए है । किन्तु उसकी अपनी सीमाएं भी हैं । निराशा, अनास्था, संत्रास, कुंठा बौद्धिकता शिल्प सजगता आदि पर सचेत प्रयोगवादी कवि ने यथार्थ की एक नयी मनसिकता का पर्दाफा किया । यह युग की मांग थी । उसका अगला चरण है नई कविता । नई कविता प्रयोगवादी कविता की प्रतिक्रिया नहीं उसका सहज विकास है ।

प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तकों में माथुर

प्रयोगवादी कविता जिस प्रयोगात्मक मानसिकता को प्रश्रय देते हुए हिन्दी काव्य जगत् में अवतरित हुई उसमें माथुर का महत्वपूर्ण स्थान है । प्रयोगवाद की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि बने "तारसप्तक" के ज़रिये एक अन्वेषी के रूप में काव्य जगत में माथुर का प्रवेश हुआ कुछ निश्चित धारणाओं और मानसिकताओं को लेकर काव्य सत्य की तलाश में निरत माथुर मुख्त: रंग-रस-रोमांस के कवि थे । बदली हुई संवेदना को स्वरबद्ध करने के सिलसिले में उन्होंने कथ्य एवं शिल्प के विभिन्न आयामों पर विभिन्न सफल प्रयोग किया है । परिणाम स्वरूप वे प्रयोगवाद के प्रवर्तकों में माने गये । विचार और अनुभूति के सामंजस्य से उनकी प्रयोगशीलता उत्तरोत्तर समृद्ध होती रही है । अत: जीव-वस्तु-जगत की संगति और विसंगति उनकी कविता में उजागर हुई है । यह भी नहीं प्रकृति और सामाजिक यथार्थ का सीधा सरोकार उनकी कविता को अन्य प्रयोगवादी काव्यों से पृथक् स्थान देता है । वास्तव में "प्रयोगवादी कविता का सुथरा रूप उनके काव्य में मिलता है"[63] ।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने जिस प्रयोगवाद को 'नवलेखन की भूमिका' कहा उसी को माथुर ने "आधुनिकता का नवोन्मेष"[64] कहा । एक जागरूक कवि सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, अंतराष्ट्रीय जैसी सभी गतिविधियों से सचेत रहता है । इसलिए देश-विदेश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तनों पर समान मानसिकता बरतनी चाहिए । अतीत इतिहास का अगाध ज्ञान, भविष्य के प्रति उन्मुखता ये दोनों तत्व एक सचेत कवि की जागरूकता को प्रमाणित करते हैं तथा उन्हें युग यथार्थ का वक्ता बना देते हैं । माथुर ज़रूर एक जागरूक कवि हैं । भविष्य के प्रति आस्थावान तथा जनता के उद्धार में दिलचस्पी रखनेवाला कवि है । अतः उनकी कविता में आधुनिकता की सारी विशेषताएं लक्षित होती है । अलावा इसके माथुर ने अपने को आधुनिकतावादी होने की दावा भी की है । "आधुनिक बोध की काव्यधारा को प्रारंभ हुए अब चौथाई सदी बीत चुकी है, 'तारसप्तक' जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति था । जो चेतना विश्व सन् 1939 - 40 में उदित हुआ था वह अब तक हिन्दी कविता का संपूर्ण क्षितिज आच्छादित कर चुका है अनेक तीखे संघर्ष तथा विरोधी आघातों को पार करके अपनी विजय सत्ता स्थापित कर चुका है । कविता की जिस चेतना का प्रादुर्भाव सन 1939-40 में हुआ उसने पिछली समस्त व्याख्याताओं को बदल डाला और एक अभूतपूर्व बौद्धिक नवोन्मेष [इन्टेलेक्चुअल रेनासां] को जन्म दिया । पूरी की पूरी मर्यादा प्रतिस्थापित कर दी गयी । इतनी बड़ी तात्विक क्रान्ति हिन्दी कविता में नहीं आयी थी ।....मुझे गर्व है कि मैं इस क्रान्ति बिन्दु पर लेखनी लिए उपस्थित था और मुझ पर तथा मेरे कुछ सहधर्मियों पर आधुनिकता का वह नया उठता हुआ आलोक प्रथम बार पड़ा था ।"[65]

प्रयोगवादी कविता की सभी प्रवृत्तियाँ माथुर की कविताओं में पुंजीभूत-सी दिखाई पड़ती है ।

1. वैयक्तिकता
2. बौद्धिकता
3. नूतन सौन्दर्यबोध
4. निराशा, अनास्था, अस्वीकृति, असंतोष आदि का चित्रण
5. ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह
6. लघु मानव
7. क्षणबोध
8. विषय-भूमिका विस्तार
9. शैल्पिक सजगता ।

1. <u>वैयक्तिकता</u>

प्रयोगकाल में रचित माथुर की कविताओं में वैयक्तिकता का स्वर अधिक मुखरित है । उसमें व्यक्ति की विचारधाराओं, मन:स्थितियों और संवेदनाओं का स्फुटन भली-भांति हुआ है । उन्होंने छायावादी वैयक्तिकता को हृदय के स्थान पर बुद्धि से स्वीकार किया और प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति वैयक्तिक आक्रोश बिलकुल संयमित स्वर में प्रकट किया है । पर उनकी वैयक्तिकता की प्रमुख विशेषता यह है कि वह केवल उन्हीं तक सीमित न रहकर प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव बन जाता है । यानी अनुभूति की प्रामाणिकता उनकी कविता की प्रमुख विशेषता बन गई है । इस वैयक्तिक भावना की प्रमुखता के कारण उन पर व्यक्तिवादी कवि का आरोप लगाया गया है । असलियत में उनका व्यक्तिवाद समाज-निरपेक्ष नहीं सापेक्ष्य है । समाज-सापेक्ष्य होते हुए भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने की अदम्य अभिलाषा कहीं कहीं स्पष्ट हुआ है ।

"वह [illegible]नुभव था
जो मैं ने बोला था
वह उससे अलग
जो मैं सोचा था
वह वृत्त मेरा है ।"[66]

यहाँ अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा की जागरूकता व्यंजित है। उनकी व्यक्तिपरक कविताओं में रोमांस एवं सौन्दर्य को एक नये स्तर पर आँकने का प्रयास किया है।

माथुर मूलत: रोमांटिक मिज़ाज के कवि है। प्रगतिवादी प्रयोगवादी नई कविता से सम्बद्ध रहकर भी उनका विकास एक सूक्ष्म रोमांटिक कवि के रूप में ही था। रामनरेश त्रिपाठी से जिस रोमांटिक प्रवृत्ति की शुरूआत हुई उसको विकसित तथा परिष्कृत करने में माथुर का योगदान असंदिग्ध है। इसका समर्थन रघुवंश ने यों दिया है, "बच्चन, दिनकर और नवीन के बाद रोमैंटिक प्रवृत्ति गिरिजाकुमार माथुर जैसे प्रयोगशील कवियों में परिलक्षित होती है। पर माथुर पर प्रयोगशील आन्दोलन का प्रभाव है और उनके काव्य में सौन्दर्य, प्रेम, कल्पना और स्वप्न वैयक्तिक भावोल्लास अथवा तन्मयता में अभिव्यक्त होने के बजाय बिम्ब चित्रों में रूपांतरित हुए हैं।"[67] यहाँ माथुर की कविता की रोमांटिकता के साथ ही साथ प्रयोगशीलता की पहचान भी हुई। अलावा इसके उनकी प्रयोगवादी कविताएं इसकेलिए पर्याप्त प्रमाण हैं। माथुर ने छायावादी काल्पनिक रोमांस के बजाय यथार्थ रोमांस की आवश्यकता महसूस की जिसके मूल में उनकी व्यक्तिवादी मनोवृत्ति सक्रिय रहती है। छायावादी काल्पनिकता में वांछित परिवर्तन की घोषणा करते हुए माथुर ने यों कहा, "छायावादी रूपाकार और संवेदना-दृष्टि अनुपयुक्त और अपर्याप्त हो चुकी थी। युग यथार्थ के समक्ष उसकी कल्पनाप्रियता और भावुक रोमानवाद एक व्यंग्य प्रतीत होता था।"[68] फलत: उनकी दृष्टि जीवन की वास्तविक रोमांस पर पड़ी। माथुर की "चूड़ी का टुकड़ा", "रेडियम की छाया", "खट्मिट्ठी चांदनी", "विदा समय", "प्यार बड़ा निष्ठुर था", "अभी तो झूम रही है रात" जैसी कविताओं में रोमांस का नया आयाम खुल गया।

"उन्हीं रेडियम के अंकों की मद्धछाया पर
दो छाँहों का चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था
कमरे की सारी छाँहों के हल्के स्वर-सा
पड़ती थी जो एक दूसरे से मिला गूँथकर
सूनी आधीरात ।"[69]

यहाँ बिम्ब प्रतीकों के ज़रिये यौन सम्बन्धों का चित्रण हुआ है । फ्रायड से प्रभावित होने के नाते माथुर ने अवचेतन की कुंठा और वासना की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की । "अवचेतन की काम कुंठाओं का प्रतीकों द्वारा यथातथ्य चित्रण अज्ञेय और गिरिजाकुमार माथुर में अत्यन्त स्पष्ट है और अन्य कवि भी इससे मुक्त नहीं ।"[70] स्पष्ट है माथुर की काव्यात्मक अभिव्यक्ति में भावुकता तथा कल्पनाजन्य ऊहापोह नहीं । प्रणय के सम्बन्ध में छायावादी परिवृत्त के कवियों की भाँति माथुर भिक्षुक या कैशोर बोध का अनुभव न करते थे और न ग्लानि के भाव का । उनकी कविताओं में अतिरीं अनुभूति या आरोपित विह्वलता भी नहीं ।

माथुर की कविता में काल्पनिक रोमांस का निषेध करते हुए राजकुमार शर्मा ने यों कहा उन्होंने "छायावादी अशरीरी वासना और वायवीय प्रेम के स्थान पर भौतिक प्रेम की प्रतिष्ठा की । वैयक्तिक प्रेम की निराकुल एवं सहज अभिव्यक्ति को महत्व दिया जिसमें न तो कोई परिताप है न कुंठा और न अप्रस्तुत पक्ष ही सब कुछ सुस्पष्ट और निष्कपट है ।"[71] ज़ाहिर है कि माथुर की रोमानियत से संयुक्त कविताएं कदापि यथार्थ का निषेध नहीं करती । उसमें रोमांस है, यथार्थ भी । उनका यथार्थ व्यक्ति का भोगा हुआ यथार्थ है । अनुभूति की प्रामाणिकता के कारण वह समाज से जुड़ जाता है ।

माथुर ऐसे कवि है जिन्होंने प्रयोग युग में ही वैयक्तिक अनुभूतियों के साथ ही साथ सामाजिक समस्याओं को भी काव्यात्मक बनाया है। व्यक्ति बनाम समाज के प्रति जागरूकता उनकी और व्यापक दृष्टि का परिणाम है। प्रयोगवाद के सन्दर्भ में अज्ञेय जैसे श्रेष्ठ कवि जब व्यक्ति तक सीमित रहे थे तब माथुर व्यक्ति की सीमित दायरा लाँघकर समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में आ टिकते थे।

प्रयोगवाद के दौरान रचित माथुर की "मशीन का पुर्जा", "बस", "टाइफाइड" जैसी कविताओं में समाज की विषमताओं को शब्दबद्ध किया गया है। "तैतीसवीं वर्षगाँठ" में समाज से घिरे जीवन की झलक मिल जाती है।

> "जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
> जिन्दगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
> भूख बीमारी, गरीबी, गंदगी
> कौड़ियों के मोल बिकती जिन्दगी।"[72]

इस प्रकार माथुर ने आत्मगत अनुभूतियों के साथ ही साथ युगीन यथार्थ को अपनी कविताओं के ज़रिये जीवन्त बनाने की कोशिश अवश्य की है।

2. बौद्धिकता

माथुर ऐसे भी कवि है जिन्होंने कविता में भावुकता के साथ ही साथ बौद्धिकताको स्थान दिया है। उन्होंने प्रत्येक अनुभूति को या संवेदना को बुद्धि की कसौटी पर कसने का प्रयासकिया। बौद्धिकता में भी दुरूहता के बजाय सरलता उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। उसका सहज विकास उनकी परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट होता है।

३. नूतन सौन्दर्यबोध

माथुर मूलत: रोमांस एवं सौन्दर्य के कवि हैं । उनका सौन्दर्यबोध छायावादी काल्पनिक सौन्दर्यबोध नहीं । उनकी एक बहुत बड़ी खूबी है यथार्थ या सत्य को आत्मसात् करने की पिपासा । इस पिपासा के कारण उनकी रचनाओं में जीवन के कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष का चित्रण हुआ है । "छायावादी कवियों की भाँति उनके काव्य में केवल कल्पना-प्रसूत सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते । युगीन सौन्दर्य ने उन्हें जितना आकर्षित किया है उतना ही कालुष्य व विकृतियों ने । उनकी दृष्टि में सुन्दर और असुन्दर दोनों ही सत्य हैं ।"[73] फलत: नारी तथा प्रकृति सौन्दर्य के साथ ही साथ "खत", "पहिया" जैसे असुन्दर वस्तुओं को उनकी कविताओं में स्थान मिल जाता है । उनकी कविता की नारी मात्र भोग की वस्तु नहीं बल्कि कर्मपथ पर आगे बढ़ने प्रेरणादायिनी शक्ति है ।

"शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड सकूँ मैं मौत की ललकार से ।"[74]

यहाँ प्रसाद की "तुम केवल श्रद्धा हो"[75] वाली नारी से माथुर की नारी का अलगाव स्पष्ट होता है ।

"खत" नामक कविता में माथुर ने खत जैसे कागज के टुकड़े में भी सौन्दर्य दर्शाया है ।

"खत नये अशोक का गुच्छा बने
हर घर में हँसी की धूप का झरना बने
स्वस्थ, शान्ति जिन्दगी का
आइना अच्छा बने ।"[76]

स्पष्ट है कि माथुर के सौन्दर्यबोध में कदाचित संकोच नहीं बल्कि विस्तार है जिसमें कल्पना के बजाय जीवन की वास्तविकता ही अधिक उभरता है । उसमें एक ओर नारी सौन्दर्य के प्रति रोमांटिक आसक्ति मिलती है दूसरी ओर कुरूपता के प्रति मोह भी । इसमें संदेह नहीं है कि "प्रयोगवादियों में विचारों का विरोधाभास मिलता है ।"[77]

4. निराशा, अनास्था, अस्वीकृति और उदासी

प्रयोगवादी कविता का प्रमुख स्वर निराशा, अनास्था, अस्वीकृति और उदासी का है । उसके अधिकांश कवियों की रचनाओं में यह स्वर मुखरित है । लेकिन माथुर अनासक्त और निराशावाला कवि नहीं है । उनकी अधिकतर रचनाओं का स्वर आस्था और आशा का है । किन्तु उन्होंने अनास्था और निराशा की अभिव्यक्ति की है । "मंजीर" एवं "नाश और निर्माण" की रचनाओं में प्रसाद के "आँसू" तथा पंत की "ग्रन्थि" में चित्रित प्रणयजन्य निराशा एवं उदासी का विकास लक्षित होता है । प्रेयसी से प्रेम न पाने पर माथुर का कवि मन अपने को पापी समझता है ।

"प्यार हाथ में पाता कैसे, मैं तो चिर पापी हूं रानी ।"[78]

प्रेम की पराजय के कारण सारे स्वप्न शिथिल हो गए । अतः अब उनका मन प्यार करने से हिचकिचाता है ।

"अब वह दिन ही नहीं रहा
जो फिर हिम्मत ही रही नहीं
जो एक नया पाषाण सजाऊं
मेरी थकी हुई पूजा अब
पूजन करने से घबराती ।"[79]

प्रेम की असफलता से कवि के स्वर में विषाद एवं विफलता की ध्वनि मुखरित है ।

"हम जिस पर बरबाद हुए
वह सपना ही निकला आखिर में
प्यार हमारा टूट गया,
ज्यों कच्चे डोरे सा छिन भर में ।[80]"

घोर निराशा में भी कहीं कहीं आशा के सुनहली किरणें प्रारम्भ से ही माथुर की कविताओं में यत्र-तत्र दिखाई देती है ।

"राजमहल तो उजड़ गया
पर खंडहर में सपने बाकी है
फूल यहाँ के नहीं किन्तु फूलों जैसे पाषाण लिए हूँ
रूठ गए वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ ।[81]"

माथुर के निराशाबोध की एक अनोखी विशेषता यह है कि वे जीवन की पराजय में आँसू बहाते हुए निष्क्रिय तथा निराशाग्रस्त रहने के बजाय प्रतिकूल परिस्थितियों का [illegible] प्रसन्नतापूर्वक सामना करके उससे संघर्ष करना चाहते है । क्योंकि प्रणय तो बलिदान है । उसे शाप समझना मृत्यु के समान है -

"क्या चलूँ क्यों एक हिमालय
दु:ख के कन को बढ़ा बढ़ा कर
विषय तो अमृत बन न
सकेगा जीवन भर आँसु बरसाकर
पाषाणों से हँसकर जीना
हँसकर मरना ही जीवन
बलिदानों को शाप समझना ।[82]"

मरने से भी पृथक मरण है।[82]"

यद्यपि "मंजीर" तथा "नाश और निर्माण" की कतिपय कविताओं में निराशा और उदासी की प्रधानता है तथापि "धूप के धान" और "शिलापंख चमकीले" की बहुत सारी रचनाओं में आशा और उल्लास की अधिकता है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि प्रारम्भिक रचनाओं में आशा-वादिता का नितांत अभाव है।

"ये अम्बर चूमी दीवारें
भीगी पड़कर गिर जायेंगी
और भरे पत्थर सा यह चूना बन जायेगा
नई जिन्दगी की अविजेय नींव का पत्थर।[83]"

माथुर एक ऐसे समाज के निर्माण के इच्छुक हैं जिसमें सुख और उल्लास की भरमार हो। कुटिलता और त्रास के बीच में भी कवि को जन कल्याण, सत्य एवं शिव का पूर्ण विश्वास है।

"विश्व में जब कुटिलता है त्रास है
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है
और है विश्वास जन कल्याण का
रंग रस त्याग का बलिदान का।[84]"

शोकपूर्ण समाज में आशारूपी सुनहरी किरण के पदार्पण की व्यंजना माथुर की "नया देश" में भी हुई।

"नई उषा आ रही
सौम्य एक समूची आदिम कौम पर
नई उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर।[85]"

स्पष्ट है कि प्रयोगवाद के आस्थावान कवि है माथुर। उनकी कविता में भविष्य के प्रति आस्था और विश्वास की प्रस्तुति हुई है। प्रयोगवाद की चर्चा के दौरान अवध नारायण त्रिपाठी ने इसका समर्थन यों किया, "गिरिजाकुमार माथुर के स्वर में आस्था की गंभीर ध्वनि है। दुःखद वर्तमान को स्वीकारते हुए सुखद भविष्य के आकांक्षी दृष्टिकोण को लेकर हरिव्यास, नरेश मेहता और गिरिजाकुमार माथुर ने विशेष सफल रचनाएं की है। उनकी प्रमुख विशेषता दुःख और निराशा से विरत रहकर उसकी तीव्र उपेक्षा है। साथ ही प्रत्येक बन्धन से मुक्ति पाने का दृढ विश्वास भी ध्वनित है।

5. ठोस यथार्थ के प्रति आग्रह

माथुर की कविता में छायावादी आदर्शपरकता की जगह यथार्थपरकता का सन्निवेश हुआ है। उनका यथार्थ प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थ नहीं बल्कि वैयक्तिक यथार्थ है।

6. लघु मानव

माथुर की कविता में लघुमानव की सहज स्वीकृति है। यह "लघुमानव प्रयोगवादी दर्शन की आधार शिला है, जिसमें लघुता को सैद्धान्तिक मानदण्ड के रूप में आंका गया है।[86]" इसका परिचय माथुर ने यों दिया "क्या वह अविनश्वर आत्मा है महापुरुष है, आदर्शनायक है, अतिनायक, व्यक्तिवादी हीरो है, अर्द्ध शिरा आत्मलीन समाज विमुख अराजक व्यक्ति है कुंठाग्रस्त वर्जना प्रतीडित मनुष्य है अथवा समुदाय मानव है {मेस मेन} है समूहीकृत व्यक्ति {कोलेक्टिवाइज्ड-मेन} है लघुमानव है सहज मानव है या इस व्यक्ति की कोई और भी किस्म है।[87]" माथुर ने

जिस लघुमानव का चित्रण किया है वह असलियत में कुंठित वेदनाग्रस्त तथा घुटन से संयुक्त आज का मानव है ।

"इस माटी का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान
दुःख,दर्द, अभाव भोग कर भी जो झुके नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते सब साथ ।"[88]

7. क्षणबोध

अन्य प्रयोगवादी कवियों के समान माथुर ने भी क्षण की महत्ता को स्वीकारा है । उनका विचार है कि लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षण का अनुभव करना ही चाहिए - चाहे वह सुखपूर्ण हो या दुःखपूर्ण । वे जीवन के किसी भी क्षण को गंवाना नहीं चाहते । क्योंकि एक एक क्षण मिलकर ही संपूर्ण जीवन बनता है ।

यह मैं
मेरा व्यक्तित्व बोध
क्षण-जीवन का उपभोग परम ।"[89]

किसी को समर्पित किए गए क्षण अर्थात क्षण व्यर्थ न होकर अविस्मरणीय इतिहास का निर्माण करता है ।

"अपना कुछ नहीं है
क्यों रुककर पछताए मन
अर्पण का हर क्षण
इतिहास बना जाता है ।"[90]

स्पष्ट है कि माथुर की कविताओं में क्षण को आत्मसात करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है । उनकी क्षणवादी विचारधारा में भोगवादी प्रवृत्ति नहीं है मानव जीवन की गरिमा को प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य मात्र है ।

माथुर रहस्यवादी कवि न होने पर भी उनकी कुछेक कविताओं में उसकी झलक मिल जाती है । उनकी रहस्यवादिता वैयक्तिक जीवन की निराशात्मक वास्तविकता को कुछ छिपाव के साथ प्रकटाने का परिणाम है न कि अलौकिक सत्ता की प्राप्ति केलिए सतत अन्वेषण का । अतः अभिव्यक्ति की एक प्रवृत्ति के रूप में ही रहस्यवाद की गणना हम माथुर के सन्दर्भ में कर सकते हैं ।

माथुर स्वयं सन्देह करता है कि उनके हृदय में किसने करुणा की पीड़ा जगायी जिसकी सुधि से उनका हृदय भार हल्का हुआ है ।

"कौन ने वीणा बजाई
आज इस एकांत तट पर
करुणा वागीश्वरी गाई
स्वप्न में भी कौन ने है
करुण पीड़ा ने जगाया
आज भरने कोष आहें का
हृदय के हृदय में सुधि समाई ।"[91]

यहाँ कवि की देवि उसकी प्रेयसी है न कोई अलौकिक शक्तिशाली देवि ।

१· शिल्प सजगता

प्रयोगवादी कवियों में सर्वाधिक शिल्प सजग कवि है माथुर। उन्होंने कविता में कथ्य के साथ ही साथ शिल्प पर भी अपनी नयी तथा प्रयोगात्मक दृष्टि डाली है। उनकी दावा है कि "कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।[92]" अलावा इसके रामस्वरूप चतुर्वेदी ने माथुर के सजग शिल्प प्रयोग के सन्दर्भ में यों कहा "प्रयोगवाद के क्षेत्र में माथुर ने टेकनीक पर विशेष बल दिया था और शिल्प के कुछ नवीन रूप उन्होंने प्रस्तुत किए थे। वर्ण योजना को लेकर उनके प्रयोग काफी सफल हुए है। ·······"तारसप्तक" में संकलित माथुर की कविताएं उनके शिल्प प्रयोगों का सूचक है।[93]"

जीवन की वास्तविक विसंगति तथा विडम्बना से उद्भूत नयी समस्याओं के साथ ही साथ कवि ने अपनी अंतसत्ता को पहचानने केलिए पुराने माध्यम की निरर्थकता महसूस की। क्योंकि नई भावदिशा नया परिधान लेती है और इस बदले हुए परिधान में नए नए प्रयोग अवश्य हुए हैं। माथुर ने अपनी कविताओं में एक ओर कथ्य की विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया दूसरी ओर शिल्प के विभिन्न आयामों पर औरों से अधिक सार्थक प्रयोग भी किया है। कहीं कहीं उनका शिल्प कथ्य से भी उभरकर प्रस्तुत है।

काव्य-कथ्य के अनुरूप उसके शिल्प के उपादानों - भाषा, प्रतीक, बिम्ब, उपमान, छन्द - पर माथुर के कुशल हाथ अवश्य पड़े हैं और निजी विशेषता और प्रयोगशीलता से उन्हें संपुष्ट भी किया। "माथुर का काव्य-शिल्प" नामक विस्तृत अध्याय में उनके शिल्प सम्बन्धी अवबोध पर विशद विवेचन किया गया है। अतः बहुत संक्षिप्त रूप में उनका काव्य

शिल्प यहाँ विचार करेंगे ।

प्रयोग युग में रचित माथुर की कविताओं की भाषा असलियत में प्रयोगवादी कविता की भाषा है।प्रयोगवादियों में माथुर की काव्यभाषा सशक्त एवं समृद्ध है । उन्होंने सामान्य व्यवहार की भाषा में नाद सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य की अवधारणा कर आम जनता की भाषा को काव्य भाषा की गरिमा प्रदान की । लोक जीवन से सम्बद्ध होना उनकी काव्य भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है । उन्होंने भाषा को नयी अभिव्यंजना शक्ति दी है और शब्दों को नूतन भावबोध या अर्थ भंगिमाएं दी हैं । शब्द चयन के स्तर पर माथुर प्रयोगवादियों में सबसे अधिक सतर्क थे । "वह न तो छायावादी काव्य के समान दुरूह और अस्पष्ट है, न भोगवादी काव्य के समान एकदम मांसल और न प्रयोगवादी काव्य की भांति उसमें अभिनव के प्रति दुराग्रह है । अभिव्यक्ति में कसाव है और शब्द-चयन में प्रतिभा की दीप्ति । अपनी भावानुभूति को सशक्त बनाने केलिए उन्होंने बिम्बों, प्रतीकों, नये उपमानों का आश्रय लिया है । उनकी भाषा सर्वत्र विषय के अनुकूल और समयुक्त है ।"[94]

कहीं कहीं उन्होंने "सुनसान" तथा "खंडहरों" जैसे शब्दों को वातावरण के ध्वनि-भाव केलिए प्रस्तुत किया है ।

"गूंजता था सुनसान
उजड़ खंडहरों में
गिरते थे पत्ते
वन पंछी बोलते थे ।"[95]

उपर्युक्त पंक्तियों में "सुनसान" शब्द में "उ" की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करती है, "आ" की ध्वनि विस्तार । बीच में "न ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है । इस प्रकार "सुनसान" शब्द का

ध्वनि भाव "आँ उ" हो जाता है जो गहरे सुनसान का यथार्थ रूप है।"[96]

बिम्बगत प्रयोगशीलता की दृष्टि से माथुर की कविता सर्वाधिक सम्पन्न है। उन्होंने बिम्बों का नूतन प्रयोग अवश्य किया है। उदाहरण के तौर पर "चन्द्रिमा" शीर्षक कविता प्रस्तुत है जो उनकी प्रकृति के प्रति नयी रागात्मकता का भी परिचायक है।

"यह अचानक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नये चूने से
धुल रहे घर द्वार
चाहे पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल।"[97]

यहाँ परंपरागत उपमान और प्रतीक नये उपमान और प्रतीक के साथ मिलकर एक बिलकुल नूतन बिम्ब की संरचना हुई है। साथ ही साथ कवि की भावानुभूति की झलक भी मिल जाती है।

जहाँ तक प्रतीक योजना का सम्बन्ध है माथुर ने प्रतीकों का सफल प्रयोग किया है। उसमें विविधता एवं नवीनता का दिग्दर्शन अवश्य हुआ है उन्होंने जीवन में निरलम्बल संघर्ष करने के लिए "कवच कुण्डल" दान करने के प्रतीक का प्रयोग किया है। कहीं कहीं प्रकृति का अभिनिवेश यौन प्रतीक के रूप में हुआ है। उनकी "केसर रंग रंगे वन" इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। "सूरज का पहिया", "चूड़ी का टुकड़ा", "शिलापंख", धूप का उन", "रेडियम की छाया" आदि उनकी कविताओं में आए अन्य सार्थक प्रयोग हैं।

उपमानों की नवीनता की दृष्टि से माथुर की कविता विशेष आकर्षक लगती है। उन्होंने एक ओर तो परंपरागत उपमानों में नया अर्थ भरकर उन्हें अधिकाधिक अभिव्यक्ति क्षम बनाने का स्तुत्य कार्य किया दूसरी ओर युग जीवन से सम्बन्धित सर्वथा नए उपमान भी जुटाये हैं। नवीन संवेदनीयता, यथार्थता, कलात्मकता, प्रभावोत्पादकता तथा प्रयोगशीलता उनकी उपमान योजना की प्रमुख खासियतें हैं। "सूनी सी सैया", "चन्द कोर सा टुकड़ा", "मीठी रातें", "छत पर पीत सांझ का उतरना", "चन्दन वन की कुंजियाँ", "क्वारी मिट्टी", "सपनों की पूनो", "प्यार के चाँद" "घबराये भाव", "उनकी बाँहों सी दीवारें", छन्न सी खुली हुई छाती, "वायु का कठला", "झींगुरों की झड़ी", "साँझ का डीलड बड़ी गेन", चाँदनी की रेग चिड़िया", "साँस जैसा बियाब", "मृत्युगामा पहने हुएधुंध", "खुले मुख सी धूप", "मन-विश्वास का सोन कफ" वगैरह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अभिव्यक्ति को मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक बनाने के प्रयत्न में माथुर ने छन्द योजना के क्षेत्र में भी अपनी प्रयोगात्मक मानसिकता का परिचय दिया है। इसकी परिणति है मुक्त छन्द। उन्होंने ध्वनि सिद्धांत के आधार पर नये प्रयोग भी किये हैं और वर्णिक और मात्रिक छन्दों में मिश्रण और रूपान्तर भी। सवैये को तोड़कर अतुकांत संगीतमय नया छन्द वास्तव में माथुर की देन है। उनकी छन्द योजना नूतन इतिहास बोध और आधुनिक जीवन की नयी पहचान से उद्भूत है। इस प्रकार माथुर ने शिल्प के विभिन्न स्तर पर अनेक नवीन प्रयोग करके मौलिक उद्भावनाएं उपस्थित की हैं। उनका प्रयोग केवल प्रयोग के लिए नहीं। उनमें एक तर्क तथा वैज्ञानिकता निहित है।

माथुर की कविताओं में इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त प्रयोगवादी कविता की अन्य कुछ खूबियाँ लक्षित होती हैं जैसे आधुनिक भावबोध, व्यंग्य

आदि । उनका विवेचन नयी कविता के अन्तर्गत करना समीचीन है । क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ किंचित परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप में बाद की कविताओं में गोयाकि नयी कविता में द्रष्टव्य है ।

माथुर के सम्बन्ध में सुरेशचन्द्र निर्मल ने कहा है "अज्ञेय द्वारा प्रवर्तित प्रयोगवादी काव्यधारा के सात नव अन्वेषकों में से जो सर्वाधिक सशक्त और उभरा हुआ कवि प्रकट हुआ वह था गिरिजाकुमार माथुर । वैज्ञानिक काव्य का श्रीगणेश, अभिव्यक्ति का नया निराला अन्दाज,व्यक्ति से लेकर अंतराष्ट्रीय भावभूमि तक की दृष्टि तथा सबसे अधिक काव्य-शिल्प में शब्दावली से लेकर काव्य रूप तक के विविध नये प्रयोग माथुर जी की महत्त्वपूर्ण देन है ।"[98]

जाहिर है कि प्रयोगवादी कवियों ने काव्य के क्षेत्र में सर्वांगीण परिष्कार और परीक्षण किये हैं उनमें माथुर अपनी अलग शख्सियत के कारण दूसरों से भिन्न रहते हैं । वे उस युग के समन्वयवादी कवि हैं । एक ओर घोर वैयक्तिक यथार्थ, निराशा, अनास्था और उदासी का वर्णन करते हुए वे अन्य प्रयोगवादी कवियों की पंक्ति में खड़े हो जाते हैं तो दूसरी ओर आस्था, आकांक्षा और उल्लास का वर्णन करते हुए कहीं उनसे कुछ आगे बढ़ जाते हैं । अतः प्रयोगवादी कविता में जहाँ मूल स्वर प्रयोग के साथ अनास्था, कुंठा, निराशा, आक्रोश और अस्वीकृति का रहा वहाँ माथुर में प्रयोगात्मक मानसिकता के साथ ही साथ भविष्य के प्रति आस्था आकांक्षा का स्वर भी है जो उन्हें निस्सन्देह प्रगति की ओर ले जाता है । और एक उभरती विशेषता यह है कि ऐन्द्रिक सजगता । इस दृष्टि से माथुर प्रयोगवाद के सशक्त हस्ताक्षर माने जानेवाले कवि अज्ञेय से भी कहीं आगे हैं । स्पष्ट है कि प्रयोगवाद के प्रवर्तकों में माथुर का भी अपना अलग अस्तित्व है । उसके कथ्य एवं शिल्प के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण है ।

संदर्भ

1. डॉ॰ केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, - पृ॰296
2. रामदरश मिश्र- हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ॰84
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ॰31
4. वही - पृ॰11
5. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰202
6. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ॰128
7. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰202
8. सं॰अज्ञेय (दूसरा सं॰) तारसप्तक - पृ॰12
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ॰182
10. मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ॰62
11. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ॰129
12. सं॰अज्ञेय - तारसप्तक - पृ॰276
13. सं॰अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ॰7
14. सं॰अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ॰13
15. वही - पृ॰6
16. वही - तारसप्तक (दूसरा सं॰) नेमीचन्द्र जैन का वक्तव्य - पृ॰31
17. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ॰42
18. अवन्तिका- जनवरी 1954
19. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ॰130
20. लक्ष्मीकांत वर्मा - साहित्य कोश भाग - 2
21. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ॰211
22. रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - पृ॰55
23. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ॰21
24. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ॰108

25. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.130
26. नगेन्द्र - आस्था के चरण - पृ.268
27. सुरेशचन्द्र निर्मल - आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि - पृ.43
28. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.136-37
29. अज्ञेय - दूसरा सं. तारसप्तक - पृ.277
30. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा - पृ.56
31. अज्ञेय - पूर्वा - पृ.231
32. अज्ञेय - पूर्वा - (हरी घास पर क्षण भर) - पृ.231
33. सं. अज्ञेय - तारसप्तक - नेमिचन्द्र जैन का वक्तव्य - पृ.7
34. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा - पृ.17
35. विश्वम्भर मानव - नयी कविता नये कवि - पृ.200
36. मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.61
37. अज्ञेय - पूर्वा - पृ.231
38. सं. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ.286
39. रामदरश मिश्र - आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि-पृ.85
40. डॉ. अवध नारायण त्रिपाठी - नयी कविता में वैयक्तिक चेतना-पृ.99
41. अज्ञेय - पूर्वा (ठ रहस्यम)
42. प्रसाद - काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध - पृ.118
43. डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय - समकालीन सिद्धान्त और साहित्य - पृ.3
44. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.169
45. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए ये - पृ.44
46. मुक्तिबोध - नयी कविता आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - पृ.16
47. अज्ञेय - पूर्वा - रहस्यम्
48. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.161
49. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ.63

50• नरेश मेहता - बन पंखी सुनो नामक कविता
51• अज्ञेय - दूसरा सप्तक - नरेश मेहता - पृ•110
52• वही रघुवीर सहाय - पृ•159
53• सं•अज्ञेय - तारसप्तक - मुक्तिबोध - पृ•89
54• वही प्रभाकर माचवे - पृ•210
55• वही - दूसरा सप्तक -नरेश मेहता - पृ•129
56• वही - पृ•113
57• अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ•26
58• अज्ञेय - तारसप्तक - पृ•286
59• अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ•62
60• अज्ञेय - इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - पृ•29
61• अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ•48
62• अज्ञेय - पूर्वा - पृ•144
63• डॉ• शीमोहन प्रदीप - प्रयोगवादी नयी कविता - पृ•154
64• गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं - पृ•1
65• सं•अज्ञेय - तारसप्तक {बुनाव} माथुर का वक्तव्य - पृ•148-150
66• गिरिजाकुमार माथुर-शिलापंख चमकीले - पृ•80
67• रघुवंश - भारती का काव्य - पृ•4
68• गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं - पृ•6
69• गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ•59
70• डॉ• अवध नारायण त्रिपाठी - नयी कविता में वैयक्तिक चेतना - पृ•
71• राजकुमार शर्मा - आलोचना अंक - 36, पृ•174
72• गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ•108
73• विजयकुमारी - गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता परिप्रेक्ष्य में - पृ
74• गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ•109
75• प्रसाद-कामायनी - पृ•114
76• गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ•29

77. डॉ॰ शम्भुनाथ चतुर्वेदी - आधुनिक कविता की यात्रा, पृ॰94

78. गिरिजाकुमार माथुर -मंजीर - पृ॰21

79. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ॰8

80. वही - पृ॰23

81. वही - पृ॰19-20

82. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ॰35

83. वही - पृ॰128

84. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ॰109

85. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ॰60

86. अवधनारायण त्रिपाठी - नयी कविता में वैयक्तिक चेतना - पृ॰98

87. नयी कविता अंक 5-6 गिरिजाकुमार माथुर - पृ॰52

88. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ॰80

89. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले - पृ॰41

90. वही - पृ॰44

91. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर - पृ॰77

92. (सं॰) अज्ञेय - तारसप्तक (दूसरा सं॰) माथुर का वक्तव्य - पृ॰129

93. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ॰55

94. डॉ॰ शान्तिस्वरूप गुप्त - आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ॰119

95. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ॰54

96. सं॰अज्ञेय - तारसप्तक - माथुर का वक्तव्य - पृ॰125

97. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ॰110

98. सुरेशचन्द्र निर्मल - आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि - पृ॰236

चौथा अध्याय

नयी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

चौथा अध्याय

नयी कविता और गिरिजाकुमार माथुर

प्रयोगवादी कविता की सहज परिणति है नयी कविता । वह प्रगतिवाद की सामाजिकता, प्रयोगवाद की वैयक्तिकता तथा शिल्प सजगता पर संतुलित एवं समवेत दृष्टि डालते हुए अपनी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से छनकर निकल आयी है । नवीनता इसका मूलमंत्र है । पूर्ववर्ती काव्यप्रवृत्तियों की सत्-असत् पर सतर्क चिन्तन करके एक युगानुकूल मानसिकता को प्रस्तुत करने में उसकी सार्थकता है । उसमें आधुनिक जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियाँ उभर उठी हैं । 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था नयी कविता सूक्ष्म के प्रति अतिसूक्ष्म का विद्रोह है'[1]।

प्रगति के प्रवाह को अवरुद्ध करनेवाली अंध परंपराओं का मूल्यांकन करते हुए नयी कविता नए मूल्यों की स्थापना में सक्रिय रही है । फलत: परंपरा के प्रति संदेह और प्रश्न भरी मानसिकता बरतना नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी । प्रयोगवाद ने व्यक्ति को प्रमुखता दी तो

नयी कविता ने व्यष्टि और समष्टि को, बदली हुई परिस्थिति में व्यष्टि और समष्टि की समस्याओं को अपने विस्तृत कलेवर में समेट लिया है। प्रयोगवाद और नयी कविता दोनों का उद्देश्य नए काव्य सत्य का अन्वेषण रहा है। एक ने व्यक्ति को लिया तो दूसरे ने उसके साथ समष्टि को मिलाकर एक विस्तृत भावभूमि तैयार की। इस दृष्टि से देखें तो नयी कविता प्रयोगवादी कविता की अगली कड़ी है जो बदली हुई परिस्थिति के प्रति सतर्क चिन्तन का परिणाम है। "नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता के आगे की स्थिति है दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है पर ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे का विकास है[2]।" दोनों के साम्य-वैषम्य की ओर संकेत करते हुए गंगाप्रसाद विमल ने यों कहा "प्रयोगवादी काव्यधारा और नयी कविता में प्रमुख अंतर प्रयोग और स्थापन का अंतर है[3]।" वस्तुतः प्रयोगवादी कविता का सहज विकास है नयी कविता।

प्रत्येक युग की कविता में अपनी पूर्ववर्ती काव्यधारा से भिन्न कुछ न कुछ नवीनता अवश्य लक्षित होती है। "नयी कविता का "नयी" विशेषण एक नवोन्मेष का बोधक है। नयी कविता नये युग की नयी संवेदना से उत्पन्न कविता है। धर्मवीर भारती के शब्दों में "नयी कविता आज की कविता की विशिष्ट वस्तु तथा शिल्पगत रचना का नाम है[4]।" उसने संक्रान्तिकालीन जीवन की विभिन्न समस्याओं को नए शिल्प के ज़रिये नयी अर्थवत्ता प्रदान की। उसकी आधारशिला परिवर्तित विचारधारा है। जीवन की गहराई की ओर पैठने और समग्रता के साथ उसे अनुभूत करने की नयी मानसिकता उसके पीछे क्रिया रत है। "नयी कविता प्रगतिवादी यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद के स्वप्न-भंग के बाद की कविता है, जिसमें व्यक्त भावनाएं कुहासे के बीच पनपनेवाले तन्द्रालस से युक्त न होकर दिन की तेज़ रोशनी के बीच विषमताओं से घिरे जागृत मनुष्य की भावनाएं हैं[5]।"

नयी कविता के विकास के इतिहास में अज्ञेय का "दूसरा सप्तक" (1951) एक महत्वपूर्ण पड़ाव है । किन्तु उसके प्रकाशन के समय उसकी उचित ख्याति नहीं हुई । सन् 1953 में अज्ञेय ने सबसे पहले इस समन्वयात्मक नयी काव्य प्रवृत्ति को "नयी कविता" का नाम देने का प्रस्ताव किया ।[6] लेकिन इसका प्रचार रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा फिर लक्ष्मीकांत वर्मा के सहयोग में "नए पत्ते" के ज़रिये हुआ । बाद में इस अनुभूति का अधिकारिक तथा प्रामाणिक रूप डॉ॰ जगदीश गुप्त द्वारा तथा बाद में विजयदेवनारायण साही के सहयोग में संपादित "नयी कविता" में दृष्टिगत होता है । "प्रयाग के नये लेखकों की सहकारी संस्था साहित्य सहयोग के तत्वावधान में "नयी कविता" के प्रकाशन से इस काव्य आन्दोलन को आत्मविश्वास, सहजता तथा दृढ़ता प्राप्त हुई ।[7]" "नयी कविता" नामक पत्रिका ने नए कवियों की रचनाओं को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ नयी काव्यप्रवृत्तियों की गहन आलोचना भी की । अत: यह पत्रिका नयी कविता के विकास में एक और सोपान है । सन् 1959 में अज्ञेय के "तीसरा सप्तक" के प्रकाशन से नयी कविता की स्थापना हुई । उसके सात कवि हैं - प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना । ये प्रयोगवादी कवि की अपेक्षा परिपक्व एवं मंजे हुए हैं । प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध जैसे कवि नयी कविता के अन्तर्गत भी आते हैं । इस सिलसिले में कल्पना, लहर, ज्ञानोदय जैसी मासिक पत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण है ।

नयी कविता किसी सीमित प्रवृत्तियों की तरफदारी नहीं करती । वह सागर समान सबको स्वीकार कर लेती है । उसमें आधुनिक जीवन के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष साकार उठे हैं । अत: उसका कलेवर विस्तृत है उसकी प्रवृत्तियाँ असंख्य हैं । कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न लिखित हैं ।

(1) आधुनिक भावबोध	(6) बदलता सौन्दर्यबोध
(2) बौद्धिकता	(7) व्यंग्यात्मकता
(3) व्यक्ति बनाम समाज	(8) क्षण की महत्ता
(4) यथार्थबोध	(9) कथ्य का विस्तार
(5) आशा-निराशा, आस्था-अनास्था	(10) लघु मानव की प्रतिष्ठा

(11) काव्य-शिल्प

1. <u>आधुनिक भावबोध</u>

नयी कविता की एक बहुत बड़ी खूबी है आधुनिक भावबोध। उसे मुक्तिबोध ने नयी कविता की आत्मा कहा। "नयी कविता की आत्मा है आधुनिक भावबोध।[8]" यह वास्तव में आधुनिक युग की अनिवार्यता है।

द्वितीय महायुद्ध की भीषण नरहत्या से देश में अराजकता, विशृंखलता, अनास्था एवं मूल्य संक्रान्ति उत्पन्न हुई। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से अवगत बुद्धिजीवियों ने साहित्य में भी हलचल मचा दी। इलियट ने युद्धोपरांत यूरोप की दारुण स्थिति "वेस्ट लैण्ड" में चित्रित की। भारत विश्वयुद्ध का प्रत्यक्ष दर्शी नहीं था। फिर भी यहाँ के बुद्धिजीवियों ने मानव राशि की उस दयनीय स्थिति को संवेदना के स्तर पर स्वीकार करते हुए स्वाधीनोत्तर विभक्त भारत की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है। इस सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका नाट्य काव्य "अंधायुग" स्वाधीनोत्तर भारत की ह्यूमन क्राइसिस का एक मिथकीय परिवेश प्रस्तुत करता है। यहीं से हिन्दी कविता में एक नयी संवेदना की शुरूआत होती है जिसे हम "आधुनिकता" कह सकते हैं।

आधुनिकता असलियत में एक जीवनबोध है जो आधुनिक युग के बदले हुए परिवेश की उपज है। जीवन की वास्तविकता को उसकी समग्रता के साथ देखने की क्षमता उसमें निहित है। उसके पीछे बौद्धिक चिन्तन की प्रधानता है। मध्यकालीन मान्यताओं को नकारते हुए समकालीन वास्तविकता को उसके समग्र रूप में देखने परखने की प्रक्रिया का नाम आधुनिकता है। वह समस्त रूढ़ियों के सामने प्रश्न चिह्न डालती है किसी भी परिस्थिति को यों ही अपनाने की भावुकता आधुनिक भावबोध नहीं है। वह एक जीवन बोध है जिसमें प्रश्न चिह्न की निहितता है।[9]" मतलब यही है कि वह किसी एक मूल्य धारणा या सिद्धान्त को यों ही स्वीकारने से पूर्व उसे जांचने परखालने पर बल देती है। यह भी नहीं उसमें मानवीय सम्बन्धों की गहराई की ओर जाने और उसे सही ढंग से पहचानने की सूक्ष्म दृष्टि की क्षमता है। "यह मानसिकता मानव स्वभाव की जटिलता और उसके कारण बनते बिगड़ते सम्बन्धों और संवेदनाओं से जुड़ी है।[10]" अलावा इसके यह समाज की हर गतिविधि पर सतर्क रहने की सचेतन मानसिकता भी है। "आधुनिकता तो सामाजिक-सम्बन्धों तथा सामाजिक-परिवर्तन की विचार विधि है।[11]" आधुनिकता में जड़ता केलिए कोई स्थान नहीं। उसमें गतिशील प्रवृत्तियों का संगुफन हुआ है। यानें आधुनिकता एक गतिशील मानसिकता है "आधुनिकता एक जड़ स्थिति न होकर विकास की स्थिति है उसकी प्रकृति सदैव गत्यात्मक रहती है। नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने आपका संस्कार करना ही आधुनिकता है।[12]"

प्रत्येक युग की रचना अपने रचना काल में आधुनिक होती है। किन्तु जिस मानसिकता की चर्चा हम कर रहे हैं उसकी वास्तविक शुरुआत प्रयोगवाद से होती है। "आधुनिक भावबोध की काव्यधारा को प्रवाहित हुए अब चौथाई सदी बीत चुकी है, "तारसप्तक" जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति था। लेकिन प्रयोगवाद में यह चेतना शिल्प वैचित्र्य के मोहपाश में पड़ी हुई थी। नयी कविता में आकर इस चेतना ने एक अवबोध का रूप धारण किया।[13]" निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है "आधुनिक संवेदना का संवहन तार्किक और ठोस आधार पर स्वतंत्रता के बाद की रचनाएं करती है।[14]"

नयी कविता आधुनिक भावबोध की कविता है । "नयी कविता आधुनिकता की देन है यह एक प्रक्रिया है ।"[15] उसमें आधुनिक भावबोध के विभिन्न आयामों का पर्दाफाश हुआ है । नए कवि ने परिवर्तित परिस्थिति के नये यथार्थ को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है । वह स्वयं उसके भोक्ता है । आधुनिक मनुज विघटित मूल्यों के बीच अपने आप सिमटा हुआ है । वह बेहद संत्रस्त है । कुंठाग्रस्त भी । फिर भी वह जीने केलिए अभिशप्त है । साहित्यकार ही इंसान की इस विडम्बना से भली भांति परिचित हो जाता है । यह भी नहीं वे उसकी अभिव्यक्ति केलिए विवश हो जाते हैं । धर्मवीर भारती का दृश्य काव्य " अंधायुग " में आधुनिक युग के अंधकार का पर्दाफाश हुआ है । पौराणिक कथा पर आधारित यह काव्य समसामयिक सन्दर्भ में संगत ही है जो आधुनिक भावबोध की एक प्रमुख विशेषता है ।

"पता नहीं
प्रभु हैं या नहीं
किन्तु, उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं पूर्वनिर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता-मिटाता है ।"[16]

मुक्तिबोध की "अंधेरे में" कविता आधुनिकता के और एक आयाम को उजागर करती है । अस्तित्वहीनता के बोध से संत्रस्त आज का व्यक्ति अपनी अस्मिता की तलाश में संलग्न हो जाता है । कवि ने उस कविता में मानव की उस स्थिति को स्पष्टतः उभारा है ।

"वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिमाओं की
xx xx xx xx
खोजता हूँ पठार, पहार, समुन्दर
जहाँ मिल सका मुझे
मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म संभवा ।"[17]

यहाँ कवि की अस्मिता की खोज असलियत में आधुनिक मानव की महत्वपूर्ण समस्या है । "अँधेरे में कविता की ये अंतिम पंक्तियाँ उस अस्मिता या आइडेंटिटी की खोज की ओर संकेत करती है जो आधुनिक मानव की सबसे ज्वलन्त समस्या है ।"[18] उनकी इस खोज में किसी आध्यात्मिकता का पुट नहीं ।

2. बौद्धिकता

बौद्धिकता आधुनिक युग की महत्वपूर्ण खासियत बन गई है । सृजनात्मक साहित्य कदापि उससे निस्संग नहीं रह सकते । सौन्दर्यबोध चाहे वह कला के क्षेत्र में हो या काव्य के अन्ततः संवेदना के धरातल पर क्रियाशील बौद्धिक प्रक्रिया ही सिद्ध होती है ।"[19]

आज की संक्रमण कालीन परिस्थिति में मध्यवर्गीय शिक्षित कवि से रचित कविता का बौद्धिक होना स्वाभाविक है । उसमें हृदय से अधिक बुद्धि पर बल दिया गया है । पर नई कविता में बौद्धिकता और भावुकता का अद्भुत सम्मिश्रण है । अतएव नई कविता में प्रयोगवादी कविता की जैसी बौद्धिक नीरसता नहीं । "आज का मानव जिस परिवेश में प्रतिष्ठित है उसकी समस्याएँ प्रमुख रूप से बौद्धिक है अलावा इसके नये कवि की दृष्टि भी पर नयी कविता की बौद्धिकता तर्कशास्त्रीय अथवा दर्शन के ऊहापोह से आच्छादित नहीं है । उसका मूल लक्ष्य है मानवीय चेतना को विकसित करने केलिए प्रजातन्त्र के आधारों को अधिकाधिक मजबूत करना । इस परिप्रेक्ष्य के अनुरूप नयी कविता में एक तटस्थ तथा संतुलित बौद्धिकता मिलती जो आधुनिक व्यक्तित्व का सहज गुण है ।"[20] प्रयोगवादी कविता की मूल चेतना बौद्धिक थी । पर नई कविता में उस को विकास एवं परिष्कार हुआ है । अंतर केवल इतना है कि प्रयोगवादी बौद्धिकता व्यक्ति सीमित रहा तो नयी कविता में व्यक्ति तथा समाज की ओर समग्र दृष्टि डाली है ।

3. व्यक्ति बनाम समाज

प्रयोगवादी कविता में समाज की अपेक्षा वैयक्तिक अनुभूति का मार्मिक वर्णन हुआ है । लेकिन नयी कविता में व्यक्ति और समाज का संतुलन स्थापित हुआ है याने नयी कविता निर्वैयक्तिकता को प्रश्रय देनेवाली कविता है । यहाँ धर्मवीर भारती का कथन सार्थक निकलता है । "एक धरातल ऐसा भी होता है, जहाँ "निजी" और "व्यापक" का बाह्य अंतर मिट जाता है । वे भिन्न नहीं रहते कदियस भिन्न न भिन्न ।"[21] इसी को यह निर्वैयक्तिकता नयी कविता की मात्र मूलम उपलब्धि नहीं ।

प्रगतिशील कवि निराला की "सरोज स्मृति" में उसका बीज वर्षों पहले ही अंकुरित हुआ था । प्रगतिवाद की सामाजिकता और प्रयोगवाद की वैयक्तिकता दोनों का समन्वयकर समकालीन यथार्थ को उसकी पूरी सच्चाई के साथ संप्रेषित करने का प्रयत्न नयी कविता में हुआ । अज्ञेय की कविताओं में व्यक्ति के समाजीकरण का अहसास अवश्य हुआ है ।

"मैं सेतु हूँ
किन्तु शून्य से शून्य तक का सतरंगी सेतु नहीं
वह सेतु
जो मानव-मानव का हाथ मिलने से बनता है ।"[22]

लक्ष्मीकांत वर्मा की "हस्ताक्षर" शीर्षक कविता में वैयक्तिकता तथा सामाजिकता का एकीकरण हुआ है ।

"मैं आज भी जिन्दा हूँ
उस हस्ताक्षर की भाँति
जो मज़ाक-मज़ाक में
यों ही किसी वट वृक्ष के नीचे
पिकनीक, तफरीह में लिख दिया गया था
एक तेज़ धारवाले फौलाद की नोक
अब भी मेरी छाती में गड़ी है
और उस वट-वृक्ष का घायल सीना
उस दाग की रक्षा हर मौसम में करता है
xx xx xx
मगर / मैं हूँ : फौलाद की थाती लिए / जीता हूँ -
मैं आज भी जिन्दा हूँ !"[23]

यहाँ "मैं" समष्टि की इकाई है । नयी कविता ने व्यक्ति और समाज के फासले को दूर कर दिया । दूसरे शब्दों में नयी कविता का व्यक्तिगत सत्य एक ओर कवि का सत्य है, दूसरी ओर समाज का । अतः अनुभूति की प्रामाणिकता उसकी प्रमुख विशेषता बन गई । नयी कविता की सफलता इसमें है कि उसने व्यक्ति और समाज की समस्याओं को अभिन्न माना तथा प्रामाणिक अनुभूति को मार्मिक ढंग से संप्रेषित किया ।

नयी कविता में रोमांटिक चेतना का एक नया स्वर दर्शित है । छायावादी कविता वायवीय तथा आदर्श रोमांटिक भावबोध की कविता थी । प्रगतिवाद में रूमानियत सर्वथा उपेक्षित थी । प्रयोगवाद में दुबारा यथार्थ रोमांटिकता का समावेश हुआ किन्तु सांकेतिकता के आवरण में आबद्ध थी । नयी कविता प्रेम और सौन्दर्य को बिना किसी आवरण के संतुलित रूप में देखती थी । "नयी कविता ने कहीं न कहीं पूर्ववर्ती रोमांटिकता के साथ चुपचाप समझौता कर लिया था ।[24]" नया कवि केदारनाथ सिंह की "अनागत" में रूमानियत को एक नई दृष्टि से आँका गया है जिसमें प्रतीक्षा, उत्सुकता और परिवर्तन की ललक वर्तमान है ।

फूल जैसे अँधेरे में
दूर से ही चीखता हो,
इसी तरह वह दरपनों में कौंध जाता
हाथ उसके
हाथों में आकर बिछल जाते
स्पर्श उसका
धमनियों को रौंद जाता है ।[25]

4. यथार्थबोध

नयी कविता जीवन-यथार्थ की संपूर्णता की कविता है। "उसने अपनी उदार बाँहें फैलाकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की यथार्थोन्मुखी चेतना को उन्मुक्त हृदय से अपने में समाहित कर लिया।"[26] नए कवि ने जीवन को संपूर्णता के साथ स्वीकार किया। प्रयोगवादी कविता में जिस यथार्थ बोध का चित्रण हुआ है उसी का कुछ संशोधन के साथ नयी कविता ने अपना लिया। "नई कविता में कवियों ने अपने को उस संकीर्ण परिधि से बाहर निकालते हुए व्यापक धरातल पर स्थित किया जिसमें कट्टर प्रयोगवादियों ने अपने को आबद्ध कर लिया था।"[27] नए कवियों ने हर स्थितियों और वस्तुओं को उसकी सबलताओं एवं कुरूपताओं सहित स्वीकार की है। अत: उसमें सुन्दर-असुन्दर, शिव-अशिव, कुत्सित-वर्जित आदि पर वे समान दृष्टि रखती है। "यथार्थ के समस्त सौन्दर्य, भले ही वह दिखने में कुरूप, विद्रूप या भड़कीला हो उसका चित्रण उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।"[28] इसलिए उसमें सुन्दरता और कुरूपता का मणिकांचन संयोग हुआ है। नयी कविता टूटे हुए पहिये को दूर फेंकने के बजाय उसको भी रचना-विषय बनाती है। धर्मवीर भारती की "टूटा पहिया" कविता इसकेलिए प्रमाण है।

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने / सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय लें।"[29]

यहाँ आधुनिक मानव की विडम्बना, आशावादिता तथा नूतन शिल्प-प्रणाली का आलोडन विलोडन हुआ है । स्पष्ट है कि नयी कविता में जीवन की समस्त आकृतियों तथा विकृतियों का प्रतिबिम्बन हुआ है ।

5. आशा-निराशा, आस्था-अनास्था

प्रयोगवादी कविता में निराशा, अनास्था और अस्वीकृति का बेलौस वर्णन हुआ है जबकि नयी कविता में आशा-निराशा, आस्था-अनास्था, असंतोष और उल्लास का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है । "द्वितीय महायुद्ध और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में जिस रिक्तता, विघटन और विसंगति के स्वर उठे, वे ही स्वर नयी कविता में निराशा, आत्ममंथन विद्रोह व्यंग्य विद्रूप, आस्थाऔर अनास्था के संघर्ष के रूप में हुए ।"[30] किन्तु नया कवि ज्योतिर्मयी भविष्य के प्रति आस्थावान है । विजयदेव नारायण साही की घोषणा है कि "मेरी कविता का आधार आस्था है ।"[31] उसकी आस्था एक नये स्तर की है ।" नये मानव की खोज के साथ नयी कविता ने आस्था का अनुसंधान भी आरम्भ कर दिया । यह प्रयोगवाद की आत्मकेन्द्रित अन्वेषण वृत्ति से भिन्न अनुभव और चिन्तन का एक नया धरातल था ।"[32] वर्तमान समाज की विसंगति से बेहद आक्रान्त होते हुए भी वे आस्थावादी हैं । वे कल उगने की आकांक्षा रखते हैं । केदारनाथ सिंह ने "निराकार की पुकार" में इस स्थिति को भली-भांति उकेरा है ।

"कल उगूँगा मैं
आज तो कुछ भी नहीं हूँ

एक नन्हा बीज मैं अक्षत नक्षत्र का

समूचा विश्व होना चाहता हूँ
कल उगूँगा मैं ।"[33]

मानवेतर शक्तियों की अस्वीकृति, मानव की गरिमा, परंपरागत जड मूल्यों पर अनास्था, और नए मूल्यों पर विश्वास का स्वर मुक्तिबोध की "एक अन्य शून्य के प्रति" में गूँजित है ।

"फिर भी, पराक्राय दिक्काल सम्राट
तुम कुछ नहीं हो, फिर भी सब कुछ ! !
xx xx xx
मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड के धब्बे हैं दाग हैं ।
और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है,
अग्नि विवेक की !
xx xx xx
मैं वह कमल तोड लाया हूँ
मुझे तेरी बिलकुल ज़रूरत नहीं है ।"[34]

नए कवि ने इसलिए अनास्थाके बजाय आस्था को अपनाया कि अनास्था का वरण मानवता केलिए विनाशक है । उनकी इस आस्थावादी मानसिकता में मानवता की प्रगति की ओर अत्यन्त लगाव है ।

6• बदलता सौन्दर्यबोध

नए कवि के सौन्दर्य सम्बन्धी अवबोध में एक बहुत बडा परिवर्तन आ गया है । अत: नयी कविता में प्रकृति सौन्दर्य को भी नए सिरे से आँकने का उपक्रम है । युगीन परिस्थिति से आक्रान्त कवि ने परंपरागत प्रकृतिपरक मानसिकता पर अपनी सन्देह भरी दृष्टि डालते हुए

सामाजिक वास्तविकताओं को भी प्रस्तुत किया है । इस दृष्टि से नयी कविता के प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण बिल्कुल नया है । उसने अपनी बदली हुई मानसिकता के अनुसार प्रकृति के अंग प्रत्यंग का वर्णन बिल्कुल यथार्थ के खुरदरे माहौल से उपमानों को स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किया है । धर्मवीर भारती केलिए प्रकृति सुन्दरी नारी नहीं उनकेलिए वह सफर में थकी लड़की है जो उनके पास आ बैठती है । धर्मवीर भारती के शब्दों में

"शाम -
एक सफर में थकी हुई लड़की सी
बाई और मेरे पास बैठ गई ।"[35.]

कवि अजितकुमार केलिए चाँदनी रुपये सी है जिसमें चमक है किन्तु खनक गायब है ।

"चाँदनी चन्दन सदृश
हम क्यों लिखें ?

हम लिखेंगे
चाँदनी उस रुपये सी है
कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है ।"[36.]

नए कवि ने प्रकृति को नए रूप में प्रस्तुत करने के साथ ही साथ प्रकृति और समाज की दूरी को मिटा दिया ।

7. व्यंग्यात्मकता

नयी कविता की एक और उभरती प्रवृत्ति है गहरे और तीखे व्यंग्य की । यह प्रवृत्ति द्विवेदीयुगीन कविता से लेकर अब भी जारी है । किन्तु नयी कविता में जितनी व्यंग्यात्मकता है उतनी हिन्दी साहित्य के किसी भी युग में नहीं पायी जाती है । अपनी वचन विदग्धता के ज़रिये समाज में व्याप्त विकृतियों का प्रखरता एवं गहराई के साथ नए कवि ने अनावरण किया । उनका विद्रोह मानव-प्रतिष्ठा की स्थापना केलिए है, असामाजिक तत्वों के विनाश केलिए है । "नयी कविता मूलतः मानववादी है, क्योंकि मानव जीवन को सार्थकता न प्रदान करनेवाले तत्वों पर व्यंग्य प्रहार करना अपना कर्तव्य समझती है[37]।"

आज की युवा पीढी कुंठाग्रस्त है । समाज में प्रचलित भ्रष्टाचारों पर बेहद संत्रस्त है । उसने अपने संत्रास को भोगते हुए व्यंग्य के ज़रिये अपने आक्रोश की उन्मुक्त अभिव्यक्ति की है । नेताओं की धन-लिप्सा, कथनी और करनी में अंतर, सरकारी धन का अपव्यय, बेरोज़गारी, महंगाई छात्र-असंतोष, विश्वविद्यालयों में फैली गुटबन्दी व्यापारियों के अनैतिक कार्य, मूर्ति-चोरी, वगैरह पर नए कवियों ने तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है । प्रसिद्ध नया कवि भवानीप्रसाद मिश्र की प्रख्यात कविता "गीत फरोश" में साहित्य की सस्ती प्रवृत्ति की ओर तीखा व्यंग्यकिया गया है ।

जी हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूँ
जी माल देखिए, दाम बताऊँगा

बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैं ने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैं ने
यह गीत सख्त सरदर्द भुलायेगा,
यह गीत पिया को पास बुलायेगा ।
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
जी, लोगों ने बेच दिये ईमान,
जी आपन हो सुनकर ज्यादा है गम
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ, ।[38]

यहाँ व्यंग्य जीवन की ओर एक सृजनात्मक मानसिकता बरतने में सहायक सिद्ध हुआ । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का लोकतंत्रीय शासन प्रणाली पर किया गया व्यंग्य अनूठा है । भारत ने लोकतंत्रीय शासन प्रणाली को अपना लिया । पर वह दिखावा मात्र रह गई । अतः कवि व्यंग्य करता है कि जब जूता काटने लगता है तो व्यक्ति उसे लाठी पर लटका कर कंधे पर टिका लेता है और जूता दिखावा मात्र रह जाता है । भारत में लोकतंत्र भी इसी प्रकार का दिखावा मात्र रह जाता है । आजकल राजनीति जनता की भलाई नहीं करती बल्कि उन्हें पीड़ित करती है ।

"लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए ।[39]

स्पष्ट है कि नये कवि ने जीवन की विकृतियों और अनीतियों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करने केलिए जिस व्यंग्य को अस्त्र बनाया है वह नयी कविता की नयी मानसिकता की उपज है ।

8. क्षण की महत्ता

नया कवि क्षण की महत्ता को माननेवाला है । अतः उसकी कविता में हर एक क्षण की अनुभूति सुरक्षित मिलती है "आज का कवि अपने एक एक क्षण को महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि उसकी चेतना का प्रवाह जीवन के प्रत्येक क्षण में उसी तरह अनुस्यूत होकर आगे बढ़ता है, जिस तरह ऋजु सदानीरा तटिनी तट को एक एक सिकताकण को चूमती आगे बढ़ती है ।[40]" अपने हृदय में बिजली की तरह कौंध जानेवाले क्षण को कवि महत्वपूर्ण समझता है । "सामान्य एवं अकिंचन क्षणों का उनकी संपूर्ण संगति में अंकन आधुनिक भावबोध की स्थिति है ।[41]"

9. कथ्य का विस्तार

कविता केलिए सारा संसार वर्ण्य विषय है । उसकेलिए कोई निश्चित वर्ण्य विषय नहीं होता । नयी कविता इसकेलिए प्रत्यक्ष साक्षी है । क्यों कि उसने सामान्य असामान्य का भेद किए बिना सब कुछ को अपने काव्य कलेवर में समेट लिया । "जहाँ तक नयी कविता के वर्ण्य विषय का सवाल है उसमें उषा देवता से लेकर गधे तक नग्न यौन भावना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक अवचेतन से लेकर स्थूल के उत्तेजक चित्रण तक इतना व्यापक विषय" विस्तार शायद पहले किसी वाद की कविता का न हुआ ।[42]"

10. लघुमानव की प्रतिष्ठा

नये कवि ने खास मानव के बजाय लघु मानव को कविता में प्रतिष्ठा की । "लघु मानव का अर्थ वह सामान्य मनुष्य है जो अपनी सारी संवेदना, सुख प्यार और मानवीय आँच को लिए उपेक्षित था । लघु मनुष्यत्व भी मानव को अनेक उपेक्षित जीवन सन्दर्भों और संवेदनाओं को विश्वास के साथ ग्रहण करने की प्रेरणा देकर समाज जीवन की परिधि को विस्तृत और सघन बनाता है । यहाँ लघु मानव या उससे सम्बद्ध जीवन सन्दर्भ जीवन की वास्तविकताओं को अपने भीतर समेटे हुए है ।"[43] अतः उसकी पीड़ाओं और समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए नया कवि मानव की भलाई चाहता है । मानवीय स्वातन्त्र्य को कलुषित करनेवाले खण्डित सत्यों के अभिशप्त वलय को तोड़कर नई कविता संपूर्ण मनुष्य का साक्षात् करना चाहती है मानवीय स्वातन्त्र्य उसका प्रेय है ।"[44] उसी प्रकार "नयी कविता आज की मानवीय विशिष्टता से उद्भूत उस लघु मानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है जो एक ओर आज की समस्त विषमता और विषमता को तो भोग ही रहा है साथ ही उन समस्त रिक्तताओं के बीच अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है । वह विशाल मानव-प्रवाह में बहने के साथ साथ अस्तित्व के यथार्थ को भी स्थापित करना चाहता है उसके दायित्व का निर्वाह भी चाहता है ।"[45]

11. काव्य-शिल्प

नयी कविता की एक प्रमुख विशेषता है कथ्य एवं शिल्प का समन्वय । आधुनिक जीवन की जटिल संवेदनाएँ एवं उलझी हुई अनुभूतियों को प्रस्तुत करने के सिलसिले में पुराना काव्य-शिल्प अपर्याप्त सिद्ध हुआ । नए युग सत्य के उपयुक्त साक्षात्कार केलिए परम्परागत अभिव्यंजना के माध्यम को

बहिष्कार करते हुए नए कवियों ने एक नए काव्य-शिल्प की तलाश की। इस अन्वेषण प्रक्रिया के दौरान उन्होंने भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय किया। उसमें पूर्ववर्ती काव्यधाराओं का संगुम्फन नहीं "प्रयोगवाद में अभिव्यक्ति को लेकर जो अतिरिक्त सजगता वर्तमान थी वह नयी कविता में आकर सहज स्वाभाविक बन गयी।"[46] अर्थात् नयी कविता ने काव्योपादान के किसी खास पक्ष को अधिक महत्व दिये बिना सभी उपादानों को समान महत्व दिया जिससे काव्य कलेवर का अतिशय विस्तार हुआ। आधुनिक भावबोध, बौद्धिकता तथा भोगे हुए जीवन की सम्यक अभिव्यंजना केलिए नयी कविता में नयी अभिव्यक्ति भंगिमा से संयुक्त बिम्ब, प्रतीक, भाषा, शब्द-लय और छन्द का उद्घाटन हुआ है जिससे कविता में एक नव चैतन्य आ जाता है।

नयी कविता के प्रमुख शिल्पगत उपादान ये हैं -

{1} भाषा
{2} शब्द-लय
{3} बिम्ब
{4} प्रतीक
{5} छन्द

1. <u>भाषा</u>

प्रेषणीयता का सर्वप्रमुख माध्यम है भाषा। नयी संवेदना के संप्रेषण केलिए नयी कविता में काव्य भाषा का जो नया प्रयोग हुआ वह वास्तव में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। "नयी कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से सम्बन्ध रखता है।"[47] नए कवियों ने प्रचलित वर्जनाओं को एकदम अस्वीकारते हुए भाषा की विभिन्न सम्भावनाओं तथा अछूती दिशाओं का पर्दाफाश किया। उनकी भाषा आम जनता की बोलचाल की भाषा थी इसलिए नयी कविता की स्वीकृति और ख्याति बढ़ गयी।

"सामान्य जन जीवन के स्तर की भाषा जीवन के व्यापक रूप को चित्रित करने केलिए नयी कविता अत्यन्त सशक्त माध्यम सिद्ध हुई ।"[48] विजयदेव नारायण साही की "ज्वार की गाँठ" कविता में बोलचाल की भाषा को पकड़ने का उपक्रम है ।

"इस व्यर्थ जीने को
बड़ा सा अर्थ देता है
जीने केलिए
सामर्थ्य देता है ।"[49]

अजितकुमार की "अकेले कंठ की पुकार"[50] की भाषा बिलकुल नयी कविता की है जो सामान्यकिन्तु सुन्दर और महत्वपूर्ण है ।

2. शब्द और लय

कवि और पाठक को बाँधनेवाला सेतु शब्द है । शब्द वास्तव में पूर्ण नहीं है । "शब्द अपने आप में संपूर्ण या आत्यन्तिक नहीं है ।"[51] शब्द प्रयोग केलिए विशेष दक्षता होनी चाहिए । कुशल तथा समर्थ प्रयोक्ता के हाथों में शब्दों का संस्कार होता है तथा अर्थ के नये नये आयाम खुल जाते हैं।फलत: पुराने शब्दों में भी नए अर्थ को भरने की शक्ति आ जाती है । "प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपयोक्ता उसे नया संस्कार देता है । इसीके द्वारा पुराना शब्द नया होता है ।"[52] शब्द प्रतीकात्मक स्तर पर अर्थ की नयी सम्भावनाएं तथा उपलब्धियाँ खोल देता है । इसलिए नए कवि ने शब्द और अर्थ की अपनी विरासत को यों ही स्वीकार किए बिना शब्द लय और अर्थ लय पर ध्यान दिया है । "नयी कविता का मूलाधार लय है और शब्द की ध्वन्यात्मकता है ।"[53] फलत: नयी कविता में शब्द लय और अर्थ लय की नयी अवधारणा हुई है ।

"दुःख सबको माँजता है
और स्वयं सबको
मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है
कि सबको मुक्त रखें ।"[54]

यहाँ अज्ञेय ने शब्द-मय और अर्थमय पर सजगता बरतते हुए आगत युग की नयी सम्भावनाओं को विकसित करने की ललक भरी आस्था प्रकट की है । उनकी वेदना के मूल में मानवीय अस्तित्व की पीड़ा वर्तमान है । नया कवि नेमिचन्द्र जैन ने कविता को संगीत से संपन्न किया जबकि मुक्तिबोध ने उसका निषेध । मुक्तिबोध की "अँधेरे में" "फेन्टसी" का सुन्दर प्रयोग हुआ है । "फेन्टेसी" एक स्वप्न शैली है । इसके ज़रिये मुक्तिबोध ने कविता में नयात्मकता का पूर्णतः परिचय दिया है ।

1. सब सोए हुए हैं
   लेकिन, मैं जाग रहा देख रहा
   रोमांचकारी वह जादुई करामत !!"[55]

2. अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
   उठाने ही होंगे
   तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब ।
   पहुँचाना होगा ।"[56]

3. <u>प्रतीक</u>

अभिव्यक्ति की स्पष्टता के लिए प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है । अव्यक्त तथा उलझी हुई संवेदनाओं को स्पष्ट तथा सुलझा हुआ रूप

देने केलिए प्रतीक अनिवार्य है । अतः नए कवियों ने अपने अंतर्विरोधों एवं उलझी हुई संवेदनाओं को गतिशील तथा भावात्मक बनाने केलिए प्रतीकों का सर्वथा नूतन एवं वैयक्तिक प्रयोग किया है। यो नयी कविता के प्रतीकों की प्रमुख विशेषता है । अतः नए भावबोध के गतिशील संचरण केलिए कवि ने उपयुक्त प्रतीकों का संयोजन किया है । "रथ का टूटा पहिया"[57] संत्रस्त व्यक्ति की मनःस्थिति का, "धृतराष्ट्र"[58] अदूरदर्शी शासक वर्ग का, "ब्रह्मराक्षस"[59] अनस्तित्व की व्यथा भोगनेवाले आधुनिक बुद्धिजीवियों का, "कुकुरमुत्ता"[60] छल और प्रवंचना का, "बलराम"[61] मर्यादा, दायित्व, निर्भय तथा मुक्त आचरण का प्रतीक हैं । नयी कविता की बहुत सारी कविताओं का शीर्षक प्रतीकात्मक है ।

4. बिम्ब

नए कवियों ने प्रतीक के समान बिम्ब को भी अपनी अभिव्यक्ति को सार्थक और मूर्त बनाने केलिए स्वीकार किया है । नयी कविता की सौन्दर्य-छवियाँ बिम्बों के ज़रिये उभरती है । केदारनाथ सिंह जैसे सशक्त कवि के मत में एक कवि की श्रेष्ठता उसके बिम्ब प्रयोग की कुशलता पर निर्भर रहती है । "एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बों के आधार पर ही की जा सकती है । उसकी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सबसे अधिक उसके बिम्बों में ही व्यक्त होती है[62]।" अन्य नये कवियों ने भी अभिव्यक्ति के इस रूप को उठाया है । नयी कविता में बिम्बों की प्रचुरता है । नया कवि शमशेर की कविता में बिम्ब विधान की नई दिशाएं खुल जाती हैं ।

"एक नीला आइना
बेठोस-सी यह चांदनी
और अन्दर चल रहा हूं मैं
उसीके महातल के मौन में

मौन में इतिहास का
कन किरन जीवित एक बस ।
और अन्दर चल रहा हूँ
उसी के महातम के मौन में ।[63]"

यहाँ कवि ने वस्तु का आत्मगत बिम्ब और आत्म का वस्तुगत बिम्ब दोनों को पकड़ने का प्रयास किया है । अज्ञेय की "सोन-मछली" में बिम्ब की नयी परिकल्पना हुई है ।

"हम निहारते रूप
काँच के पीछे
हाँफ रही है मछली ।
रूप तृषा की
और काँच के पीछे
है जिजीविषा ।[64]"

यहाँ "जिजीविषा" शब्द से मछली की गति में जो मानवीय अनुभूति है वह बिम्बित होता है । मछली के थिरकन में भी अस्वातन्त्र्य की *जिजीविषा की* झलक मिल जाती है । यहाँ अनुभूति के साथ बिम्ब का सम्बन्ध भी स्पष्ट है ।

नयी कविता का बिम्ब एक ओर बाह्य यथार्थ से संपृक्त है तो दूसरी ओर कवि के अन्तर्जगत से । उसमें यंत्र संस्कृति के साथ संपूर्ण समकालीन यथार्थ का प्रतीकात्मक चित्र प्रतिबिम्बित है । भावबोध के परिवर्तन से नयी कविता का बिम्ब विधान पुष्ट और संपन्न हुआ है ।

5. छन्द

नए कवियों ने छन्द के छन्, छन्द को त्यागकर शब्दों की ध्वन्यात्मकता तथा आन्तरिक अर्थों का समन्वय करते हुए मुक्त छन्द की नयी अवधारणा की । उनका विचार है कि अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार का बाह्य बंधन उसकी सूक्ष्मता को नष्ट करेगा मुक्तिबोध मुक्त छन्द के प्रयोग के कुशल कारीगर थे । उनका "ब्रह्मराक्षस" इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

"मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य
उसकी वेदना का स्रोत
संगत पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँच सकूँ ।"[65]

जाहिर है कि नई कविता प्रयोगवाद का सहज विकास है । उसमें मानव अस्तित्व के प्रति सजग भरी आस्था प्रकट हुई है । उसकी काव्यदृष्टि सूक्ष्म एवं बहुआयामी है । सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के हेतु उसके कलेवर में व्यापकता आ गई । नयी कविता व्यष्टि और समष्टि, परम्परा तथा आधुनिकता, कथ्य एवं शिल्प के बीच संतुलन एवं समन्वय पर प्रश्रय देनेवाली है । उसमें जीवन की सहज स्वीकृति है । सच्चा साहित्य वह है जिसमें तद्युगीन जीवन की झलक हो । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में नयी कविता का स्थान बेजोड़ है । उस नयी काव्यधारा के प्रवर्तक तथा प्रतिष्ठापक के रूप में माथुर का स्थान विचारणीय है ।

<u>नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में गिरिजाकुमार माथुर</u>

प्रयोगवाद के सहज विकास में स्थापित नयी कविता अपनी समन्वयात्मक दृष्टि के ज़रिये आधुनिक मानव के अनुभूत सत्य का उद्घाटन करनेवाली कविता है । इस काव्य धारा के प्रमुख हस्ताक्षरों में मशहूर हैं माथुर । "आज जिसे हम नई कविता मानते हैं उसके रूप और मुहावरे के विकास में माथुर का अनन्य योग रहा है ।"[65] वे ऐसे कवियों में से हैं जिन्होंने अपनी प्रौढ़ से प्रौढ़तर संवेदनाओं को वाणीबद्ध करते हुए नयी कविता को एक ताकत व्यक्तित्व प्रदान किया है । पहले वे प्रयोगशील कविता का प्रवर्तक रहे तो बाद में नयी कविता का प्रतिष्ठापक । "माथुर प्रयोगवाद की परिधि पारकर नयी कविता के लब्धप्रतिष्ठ कवि दृष्टिगोचर होते हैं ।"[67]

माथुर की काव्य-संवेदना स्थिर नहीं । वह निरंतर विकासमान दिखाई पड़ती है । अतः वे अपने प्रयोगवादी संस्कार से भी काफी आगे बढ़ गए । "नयी कविता के क्षेत्र में प्रारंभिक प्रयोगों के बाद माथुर ने अपनी दिशा प्राप्त कर ली है ।"[68] सार्थक अभिव्यक्ति केलिए वे सदैव भटकते रहे । पचास के आसपास की माथुर की कविता इस भटकाव का परिणाम है ।

द्वितीय महायुद्धोपरांत की विघटित स्थितियों एवं मनोवृत्तियों का रूपांकन के सिलसिले में व्यक्ति और समाज का समन्वय, कथ्य एवं शिल्प का संतुलन तथा आशा-निराशा, आस्था-अनास्था, अस्वीकृति स्वीकृति आदि के सम्मिश्रण पर माथुर की नज़रिया जम जाती है । इस समन्वयात्मकता को पकड़ते हुए वे उत्तरोत्तर यथार्थवादी बन जाते हैं । इन सबके ऊपर कमर कसकर बैठती है उनका नव रोमांटिक भावबोध । असलियत में उनकी कविता

आधुनिकता, निर्वैयक्तिकता और बौद्धिकता की त्रिवेणी है जो समग्र नयी कविता की प्रमुख विशेषताएं हैं। यानी नयी कविता की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ उनकी कविता में दिखाई पड़ती हैं।

1. आधुनिक भावबोध
2. बौद्धिकता
3. व्यक्ति बनाम समाज
4. बदलता सौन्दर्य बोध
5. आशा, निराशा, आस्था अनास्था
6. व्यंग्यात्मकता
7. यथार्थ बोध
8. लघुमानव की प्रतिष्ठा
9. क्षण बोध
10. विषय विस्तार
11. कथ्य और शिल्प का समन्वय

1. आधुनिक भावबोध

माथुर आधुनिक भावबोध के कवि हैं। आधुनिक मानव चुनाव न कर पाने की विभ्रान्ति का शिकार है। जीवन की प्रतिकूलताओं के शिकार बनकर भविष्य के प्रति शंकाकुल मानसिकता बरतनेवाले आधुनिक मानव की विडम्बना को माथुर ने सृजनात्मक स्तर पर अनुभव किया है। उनकी कविताएं इसलिए साक्षी हैं।

"असिद्ध की व्यथा" में आधुनिक मानव की चुनाव की असमर्थता व्यक्त करते हुए माथुर ने समकालीन यथार्थ का एक विराट् रूप प्रस्तुत किया है।

"एक ओर तर्क
एक ओर संस्कार
: : :

किसको छोड़ूँ
किसको स्वीकार करूँ ।"[69]

यह दुविधाग्रस्त मनःस्थिति मात्र माथुर तक सीमित नहीं है । मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता जैसे नये कवियों केलिए इससे गुज़रना पड़ा है ।

अकेलापन आधुनिक आदमी की नियति बन गया है । वह भीड़ में अपने को अकेला पाता है । भरपूरे परिवार में, भीड़-भाड़ में वह अपने को निपट अकेला पा रहा है । भीड़ और अकेलापन से बचने की व्याकुलता माथुर की "दो पाटों की दुनिया" में चित्रित हुई है ।

"चारों तरफ शोर है
चारों तरफ भरापूरा है
चारों तरफ मुर्दनी है
भीड़ें और कूड़ा है
हर सुविधा एक ठप्पेदार -
अजनबी उगाती है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है
हम क्या करें
भीड़ और अकेलापन के क्रम से कैसे छूटें ।"[70]

भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चोरबाज़ारी, महँगाई, अभाव, अनैतिकता, आदर्शहीनता, बेकारी जैसी असामाजिक समस्याओं से घिरे आधुनिक मनुष्य बेहद संत्रस्त है । वह अपने को अकेला ही नहीं

अस्तित्वहीन तथा अभिशप्त पाता है । वह इन विपरीत वातावरण से अपने को मुक्त करना चाहता है । याने अपने अस्तित्व की तलाश करता है ।[71] माथुर की "समानान्तर सत्य में भी इस की सही अभिव्यक्ति हुई है ।

उन की "ढंकती हुई नील" कविता अस्तित्व की तलाश की छटपटाहट का और एक दृष्टान्त है ।

"सहसा मैं ने चौंक कर
देखा
अपने को उस भिलम में
परदे की छाती से फूल कर उभरती
एक कोहरे-सी भीड में
एक दूसरे में मिले असंख्य चेहरों में
उठ कर झूलता
एक अतिरिक्त चेहरा ।"[72]

अनैतिकता तथा आदर्शहीनता के इस युग में सत्य का क्या अस्तित्व है ? सत्य की विजय होती है जैसा विश्वास अब बिलकुल पुराना है । आज का सत्य विजय पर निर्भर रहता है । "इतिहास का सत्य" में सत्य के प्रति कवि ने अपना अविश्वास भरा स्वर यों स्पष्ट किया है ।

"होती विजय सत्य की
यह पुरानी परिभाषा है
जो विजयी हो जाये
आज वही सत्य है ।"[72]

वैज्ञानिक तथा तकनीकी सभ्यता के बढ़ते प्रभुत्व में मानवीय संस्कृति का ह्रास भी हो गया । मनुष्य ईश्वर तथा उसके अस्तित्व पर भी

सन्देह करता है। इस स्थिति को माथुर ने "पहिये" कविता में काव्य विषय बनाया है।

चल पड़े गाँव से नयी मशीनों के
बन यंत्र क्रान्ति के अग्रदूत
" " "
ईश्वर पर पहली विजय
चिरंतन मिट्टी की।"[74]

आज के मानव का स्तर रेज़गारी के समान है। उसका कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं। हर आदमी अपने काम में व्यस्त अपनी समस्याओं में लीन है। माथुर की "अर्ध आधुनिकों की बातचीत" में बेइमान दुनिया में भटकनेवाले तथा परम्परा और मूल्यों से विघटित मानव का चित्रण हुआ है।

- जिन्दगी है भार हुई
  दुनिया है बहुत चोर
- दम्भी, पाखण्डी, बहुरूपिये
  हैं बड़े लोग"
- बात ये है
  सारा ज़माना ही है बेइमान"
  आदमी असल में है
  बेसिकली हैवान"
- "क्या करें
  विकृत हो गये हैं सभी मुस्कान
  सिर्फ खनता है
  रेज़गारी सा इंसान।"[75]

आधुनिक मानव के दिल और दिमाग भी लोहे और इस्पात का बन गए हैं।जीवन के हर क्षेत्र में दिखावट ही दृष्टिगोचर होती है। माथुर ने आधुनिक भावबोध के इस आयाम की अभिव्यक्ति की है

"लोहे,सिमेंट,कांच, कोलतार
बनते हैं तार जिंस मध्यवर्ग के पुतले।[76]"
:: :: ::
लोहे के दिल दिमाग,
हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बांधे।

संक्षेप में माथुर की कविता बदली हुई परिस्थिति का तथा उसमें जर्जरित आधुनिक मनुष्य की पीडाओं का दस्तावेज है।

2· व्यक्ति बनाम समाज

अनेकों की पीडाओं को अपना बना लेने की क्षमता एक साहित्यकार केलिए अनिवार्य है। तब ही उसका साहित्य वैचारिक सीमाओं को लांघकर जन साधारण के विस्तृत अनुभव क्षेत्र से मिल जाता है।परिणामत: साहित्यकार की अनुभूति मात्र उसका न रहकर बहुतों की बन जाती है। समाज के प्रति दायित्व का बोध जिसमें है उसका साहित्य अनायास ही जन साधारण का बन जाता है। साहित्यकार के दायित्वबोध से भली भाँति परिचित माथुर ने अपनी कविता के ज़रिये उसका पूर्णत: निर्वाह किया है।

माथुर की कविताओं में व्यष्टि और समष्टि का समन्वय हुआ है जो नई कविता की प्रमुख विशेषता है। सामाजिक कल्याण में जिस

प्रकार व्यक्ति का अहं विसर्जित हो जाता है उसकी ओर संकेत माथुर की "कोणार्क पर तीसरा पहर" में किया गया है ।

"मैं अंकित हो गया हूं सम्पूर्ण
हर मूर्तित स्थिति में
घटित हुआ हूं मैं
अब अपना कुछ नहीं है शेष
और अब मैं नहीं हूं
सिर्फ स्थितियां हैं उदासीन
जो अब मेरी नहीं है ।[77]"

यहाँ जो "मैं" है वह समष्टि की इकाई है । तात्पर्य यह है कि वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए भी माथुर सामाजिक चेतना से असंपृक्त नहीं रहे ।

सामाजिक जीवन की विषम परिस्थितियों से टकरानेवाले कवि का व्यक्ति मन उससे बाहर निकलने के प्रयत्न में है । पर अपने इस प्रयत्न में वह विफल हो जाता है । माथुर के शब्दों में -

"इस दुनिया में
जहाँ अब दो तीन विमुख दुनिया है
मै बीच में ध्रुवान्तों के टकराता हूं
परिधियों के बाहर
विभक्त सत्य सा
पछाड़ खाता हूं -[78]

माथुर की दृष्टि में व्यक्ति की सत्ता एक एक्स्ट्रा से अधिक नहीं । कोहरे सी भीड में पल भर जिसकी सूरत दिखाई पडती है बाद में वह विलुप्त हो जाता है ।[79]"

"सत्य का अपराध एक स्वप्न" में कवि की वैयक्तिकता सामाजिकता से टकराती है । सामाजिक जीवन में उसे सब कहीं अवांछित परिस्थितियों का ही सामना करना पड़ता है । कवि का आस्थावादी मन कहीं कहीं आकर अनिश्चितता का सामना करता है । फिर भी इन सबको झेलते हुए आगे बढ़ने में कवि कटिबद्ध खड़ा हुआ है । यही आस्थावादी स्वर माथुर की कविता का मूलमंत्र है ।

"मैं ने देखा -
मैं एक बहुत ऊँचे, सूखे पहाड़ पर
चढ़ने को
विवश किया गया हूँ
और चोटी की अन्तिम
चट्टान की नोंक तक पहुँच गया हूँ
आगे जिसके
पहाड़ दो टूक फट गया है
और हज़ारों फुट गहरा है एक दर्रा
मुझे लीलने को मुँह बाये है
पीछे पैरों से अनगढ़ बना रास्ता
सहसा लोप हो गया है
मेरे हर यत्न की
परिणतियाँ वाला
- वह रास्ता मेरा है ।"[80]

जिन्होंने अपने जीवन में दुःख, दर्द, अभावों को सहन किया है उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए माथुर ने यों कहा -

"इस माटी को तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान
दुःख दर्द अभाव भोग कर भी जो झुक नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वह तान ।"[8]

माथुर ने जिस समकालीन यथार्थ को संप्रेषित किया उसमें व्यष्टि और समष्टि के समन्वय की भावभूमि लक्षित होती है ।

3· बौद्धिकता

माथुर की कविताओं में बौद्धिकता की झलक भी है जो नयी कविता की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इस बौद्धिकता के कारण अन्य नव कवियों में दुरूहता आ गई है । पर माथुर की कविता में अतिशय बौद्धिकता से उद्भूत दुरूहता अपेक्षाकृत कम है । समानान्तर सत्य में माथुर समानान्तर से चलनेवाले आदमी की खोज में भटकते हैं ।

"निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में
चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गई
उगकर एक बिन्दु पर
तीन अजनबी साथ चलने लगे
अलग दिशाओं में
और यह न ज्ञात हुआ
इनमें कौन मेरा है ।"

माथुर की "अशब्दों का नाता" में बौद्धिकता से उद्भूत दुरूहता द्रष्टव्य है ।

गहरी समाधियाँ पड़ी हैं
अस्तित्वों पर
शब्दों के बाँध
अशब्दों का नाता है
जितना जो अंकुर है
सत्य के समीप वही
यह ओस से ओस तक की परिभाषा है ।[83]

माथुर की कविता में बौद्धिकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है ।

4. <u>बदलता सौन्दर्यबोध</u>

माथुर के सौन्दर्य सम्बन्धी अवबोध में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है । यह परिवर्तन वास्तव में नयी कविता के अनुकूल है । प्रकृति तथा नारी सौन्दर्य सम्बन्धी परिकल्पना में इस परिवर्तन की झलक मिल जाती है । माथुर के चित्रण में प्रकृति को एक नए सिरे से आँकने का उपक्रम है । उनकेलिए चाँदनी न अज्ञेय के समान "प्रवंचना है"[84] न अजितकुमार के समान "रुपये सी है"[85]। उनकेलिए चाँदनी एक ऐसी आधुनिक नारी है जो स्लीवलेस ब्लाउज़ पहन कर मुँह में इलायची चबाकर मन्द-मन्द चलती है ।

"स्लीवलेस ब्लाउज पहनी
छरहरी चाँदनी
पेड़ों की चमकदार डालियाँ तले

बेफिक्र मस्ती में
हल्के कदम रख चलती
मुंह में मंद मंद गुनगुनाती जाती।[86]"

यहाँ कवि ने प्रकृति का एक सर्वथा नूतन रूप प्रस्तुत किया है। माथुर की प्रकृति उनकी नयी रोमांटिक भावना केलिए पर्याप्त प्रमाण है।

छायावादी रोमांटिक चेतना का परिमार्जित रूप माथुर की कविताओं में उपलब्ध है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में छायावादी सौन्दर्य बोध का सीधा एहसास मिलता है तो बाद की रचनाओं में उसका नया संस्कार प्राप्त होता है। यह भी नहीं माथुर मूलतः रंग, रस, रोमांस के कवि हैं।

छायावाद के अंतिम युग में रचित माथुर की रोमेंटिक कविताएं काल्पनिक सौन्दर्य के आँचल में छिपाई हुई थी और प्रगति युग में यह सामाजिकता से संयुक्त रही थी। प्रयोग युग में आकर उन्होंने "रेडियम घडी", तथा "धूपी का टुकडा" के ज़रिये संकेतिकता का रूप धारण किया। नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में रचित उनकी कविताओं में यथार्थ रोमांटिक चेतना पूर्णतः खुल गयी। दूसरे शब्दों में कहे तो माथुर की कविताओं में रोमेंटिज़्म का उदय विघटन और स्थापन का आभास मिलता है। परिणामतः माथुर की सौन्दर्य चेतना का निरंतर विस्तार होता रहा साथ ही साथ रंग तथा सुना चिकना भी। इसलिए रामविलास शर्मा ने यों कहा "उज़्बुकन" से लेकर "जो बंध नहीं सका" तक तीस वर्षों की दीर्घ अवधि में गिरिजाकुमार माथुर ने जो राग साधा है वह देहरसवाला राग है।[87]

प्रिया की उपस्थिति से जीवन में उल्लास का संचार होता है। उसके आने से तन और मन प्रेममय हो जाते हैं। आसपास का वातावरण और भी मोहक और रोमानी हो जाता है। प्रिय मिलन के मधुर क्षण की कोमल अनुभूति की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

'तुम्हारे आते ही
मेरे कमरे का रंग गोरा हो जाता है
हर आइने का चेहरा
प्यारा हो जाता है ।'[88]

प्रिया के रूप व सौन्दर्य की मादकता ने कवि के तन व मन पर काले जादू का सा प्रभाव डाल रखा है । देखिये

'तुम मेरे रंगहीन जन्म के अकेलापन में
एक बाहरी फूल की तरह लग गई हो
मेरे शब्दों की खुशबू
तुम्हरी बाहों की लिपटती गन्ध है
उसके चटकीले रंगों पर
तुम्हारे होंठों की छाप है
मेरी वाणी की उग्रता में
तुम्हारी नयी इच्छाओं का ताप है
तुम मेरे भी वक्त के पहले खालीपन में
गहरे भूले स्वाद की तरह समा गयी हो
तुम मेरे शरीर पर काले जादू की
तरह छा गयी हो ।'[89]

यहाँ प्रिया के प्रति कवि की विशेष अनुरक्ति द्रष्टव्य है ।

स्पष्ट है कि माथुर की सौन्दर्य चेतना का आधार लौकिक जीवन का यथार्थ है । अलौकिक सत्ता के प्रति काल्पनिक प्रेम उनमें नहीं है । प्रिया के प्रेम और सौन्दर्य से सम्बद्ध जो अनुभूति उनके मन में उत्पन्न होती है उसका जैसे का तैसा वर्णन माथुर की खूबी है ।

5· आशा-निराशा, आस्था-अनास्था

माथुर भारतीय संस्कृति के उपासक हैं। वर्तमान की कटुता और संघर्ष के सामने वे अपने सिर को झुकाते नहीं। कर्म पथ पर अग्रसर होकर वे एक स्वस्थ भविष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। नए कवियों की आस्थावादी मानसिकता को स्वयं माथुर ने व्यक्त किया है। "नयी कविता की नज़र अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्षों से आगे भविष्य पर टिकी है। जीवन की संघर्षमय कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्कंप है, क्यों कि उसे विश्वास है कि आज चाहे कोई भी स्थिति हो मानवता का भविष्य कल्याणमय हो और वह हर अमंगल शक्ति पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसलिए नयी कविता पलायन, पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती"[90]। अतः वर्तमान की सारी विसंगतियों को स्वीकारते हुए उनमें संगति ढूंढ पाने की कोशिश उन्होंने की है। उनकी कविताएं उनकी आस्थावादी मानसिकता की प्रतिछवियां हैं।

माथुर का अटूट विश्वास है कि आज का आम आदमी भी कल का नेता, विश्वनिर्माता, महान कलाकार या वैभव संपन्न व्यक्ति बन जाएगा।

"हम भी हो सकते थे
नेता, विश्वनिर्माता
देश के विधाता
महापुरुष, कलाकार
भद्रलोक
धन, यश श्रीमान
अधिकारों के दाता
वैभव विभूति के अधिष्ठाता[91]।"

जिस आदमी को केवुमान कठपुतली समझा जाता है उसमें भी कुछ करने की अदम्य अभिलाषा है । क्योंकि उसके मन में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान अब भी है । "निर्णय का क्षण" में माथुर ने इसके सम्बन्ध में यों कहा -

भीड़ वह नहीं है
जिस तुम हिकारत से
कहते रहे भावीड़
:: : ::
दुत्कारते रहे बार बार
तुमने जिसे समझा है
बेजुबान कठपुतली
वह हाड मांस की
सबसे बड़ी ताकत है ।"[92]

जीवन संघर्षमय है । पग पग पर व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है । इसलिए कवि ने बच्चे को चेतावनी देते हुए कहा कि तुम दुनिया के बारे में अनभिज्ञ हो । इसलिए जो कुछ करना चाहता है अब कर लो बड़े होने पर तुम्हें हंसने बोलने और रोने का मौका नहीं मिलेगा । "नया बच्चा" में माथुर ने बच्चों को भविष्य के प्रति सजग बनाया है ।

ओ नन्हें बच्चे
: : :
अभी तुझे दुनिया का कुछ नहीं मालूम
कुछ कुम-छैम
बोल, तुतला ले हंस रो ले

मर्जी जो कर डाला
क्योंकि बड़ा होने पर
हंस न सकेगा तू
बोल न सकेगा तू
रो भी न सकेगा तू ।[93]"

"हवा देश" में उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि शोकपूर्ण समाज में आशारूपी सुनहरी किरण का पदार्पण अवश्य होगा ।

"नई उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरमिडों पर ।[94]"

निःसन्देह माथुर नई उषा की प्रतीक्षा करनेवाला नया कवि है । उनकी कविताओं में आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, असंतोष-उल्लास, अस्वीकृति-स्वीकृति जैसी विपरीत स्थितियों का समन्वय हुआ है । इस दृष्टि से उनकी कविता जीवन की संपूर्णता की कविता है । उनकी इस समन्वयात्मक मानसिकता के पीछे उनकी आस्थावादी दृष्टि भी वर्तमान है ।

6. व्यंग्यात्मकता

आधुनिक सन्दर्भ में व्यंग्य सम्बन्धी अवबोध में भी काफी परिवर्तन आ गया है । जीवन की विसंगति की ओर परिहास/सरूपी बाण आधुनिक भावबोध का परिणाम है । इस परिहास या व्यंग्य-बाण के पीछे जीवन की विसंगति के प्रताड़नों से अर्जित पीड़ा की शक्ति है । हृदय को भी छेदनेवाली तीखी नोक है । व्यंग्य-कवि न होने पर भी माथुर राजनीति की

असंगतियों पर चोट करते हैं । "इतिहास का सिंहासन" कविता में राजनीतिक हरकतों पर अपना आक्रोश यों उन्होंने प्रकट किया है ।

"- चौथा चुपचाप पीछे से आकर
सिंहासन ही उठा ले जाता है
हाल पर बाहर से ताला जड़ देता है
-बन्द हुए दर्शक मारे जाते हैं ।[95]"

डॉ॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी का कथन यहाँ चरितार्थ होता है कि "तटस्थ द्रष्टा ही ऐसा राजनीतिक व्यंग्य लिख सकेगा जिसका साधारणीकरण अति सरलता से हो सकेगा ।[96]"

7· यथार्थ बोध

माथुर मध्यवर्ग के कवि हैं । अत: मध्यवर्गीय जीवन के संघर्षशील यथार्थ को उन्होंने अपना काव्य विषय बनाया है । आज के जीवन में व्याप्त कुंठा, संत्रास, निराशा आदि का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में परखने का प्रयास उन्होंने किया है । "नया बच्चा" में उन्होंने बच्चे को चेतावनी देते हुए कहा है तुम मन खोलकर हंसो, रो, बोलो क्योंकि बड़े होने पर ऐसा न कर सकेगा ।

"अभी तुझे दुनिया का कुछ नहीं मालुम
खुल खुल खेल
बोल, तुतला ले, हंस रो ले
मर्जी जो कर डाल
क्योंकि बड़ा होने पर
हंस न सकेगा तू

बोल न सकेगा तू
रो भी न सकेगा तू ।[97]

आज मानव जीवन को कवि ने क्रानिक मरीज के रूप में चित्रित किया है जिसमें ऊब, घुटन, बेचैनी के सिवा और कुछ नहीं है । उसका विश्वास भी नष्ट हो गया है ।

"जीवन अपाहिज है
x x x x x
आशंका, आकुलता, चिन्ता, अनास्था
x x x x
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वास हीन ।[98]

४.लघुमानव की प्रतिष्ठा

माथुर की कविताओं में लघुमानव की प्रतिष्ठा हुई है जो नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं में से है । उन्होंने लघु मानव की प्रतिष्ठा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में की । "अर्ध आधुनिकों की बातचीत" में बेइमान दुनिया में भटकनेवाले तथा परम्परा से और मूल्यों से विघटित मानव का चित्रण हुआ है । आज मानव की स्थिति रोज़गारी के समान हो गया है । व्यक्ति का कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं । हर आदमी अपने काम में व्यस्त अपनी समस्याओं में लीन है ।

सारा ज़माना ही है बेइमान
x x x x x

विकृत हो गये हैं सभी मूल्यवान
सिर्फ झूलता है
रेजगारी-सा इन्सान ।"[99]

आधुनिक मानव मन से, मस्तिष्क से, भावना से, चेतना से बौना है । उस के बौनेपन को माथुर ने "बौनों की दुनिया" में यों उभारा है ।

"हम सब बौने हैं
मन से, मस्तिष्क से
भावना से, चेतना से
क्योंकि हम जन हैं
साधारण हैं
हम नहीं हैं विशिष्ट
: : :
हमको हमेशा ही
घायल ही रहना
सिपाही भी रहना है
दैत्यों के काम सिवा
बौने ही रहना है ।"[100]

असलियत में वे वैसे नहीं । वे बौने बनाए गए हैं ।

समसामयिक सन्दर्भ में आश्रयहीन होकर सहारा ढूंढनेवाले लघुमानव की पुकार माथुर ने यों व्यक्त की है ।

"मुझे निकाल लो

ओ जीवन देवता
खण्ड खण्ड होने के पहले उबार लो ।[101]

पर सच्चाई यह है कि अब कोई देवता उसको उबारने केलिए न आयेगा । उस अभिशाप से उसकी मुक्ति का मार्ग उसे स्वयं खोजना ही चाहिए ।

आदमी की लघुता के साथ ही साथ माथुर ने उसके महत्व को भी स्वीकार किया है । उनका विश्वास है कि "गलित गर्हित के साथ आदमी को अंगीकार कर गले लगाना बडा साहस भरा काम है । उसे कोई विषपायी शिव ही कर सकता है ।[102] "दो पाटों की दुनिया" में कवि ने मानव को उसकी सबलताओं एवं दुर्बलताओं सहित चित्रण करते हुए आदमी के महत्व को स्वीकार किया है । उसमें उन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि हर देवतापन मनुष्य को क्रियाशून्य बनाता है ।

हर आदमी में देवता है
और देवता बडा बोदा है
हर आदमी में जन्तु है
जो पिशाच से न थोडा है
हर देवतापन
हमको नपुंसक बनाता है ।[103]

९. क्षण की महत्ता

माथुर की कविता में क्षणानुभूति की सहज स्वीकृति है । उनका विचार है कि लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षण को भोगना ही है चाहे वह सुख से सम्बन्धित हो या दु:ख से सम्बन्धित ।वे जीवन के किसी भी क्षण को गंवाना नहीं चाहता क्योंकि एक एक क्षणमिलकर ही संपूर्ण जीवन बनता है ।

यह मैं
मेरा व्यक्तित्व बोध
क्षण-जीवन का उपभोग परम[104]

जीवन के सुखात्मक क्षणों को कवि खोना नहीं चाहता वरन् उन्हें बांध कर रखना चाहता है। क्योंकि वह लघु होकर भी अमोल है।

चाँद भरी रातों पर
स्वर्णों की गाठों में
बांधो ये क्षण अमोल ।[105]

किसी के समर्पित किए गए क्षण-अर्थवान क्षण-व्यर्थ न होकर अविस्मरणीय इतिहास का निर्माण करता है।

"अपना कुछ नहीं है
क्यों इस पर पछताए मन
अर्पण का हर क्षण
इतिहास बना जाता है ।[106]

माथुर की क्षणवादी विचारधारा में भोगवादी प्रवृत्तियों की प्रधानता न होकर मानव जीवन की गरिमामय प्रतिष्ठा की गयी है।

10. विषय विस्तार

माथुर का विषय चयन उतना ही व्यापक है जितना नयी कविता का। उन्होंने अपनी संवेदनात्मक शक्ति के ज़रिये जीवन की तुच्छ से

तुच्छतर घटनाओं एवं अनदेखे तथा अछूते पहलुओं को अनावरण किया है । परिणामत: उनके काव्य-कलेवर का विस्तार ही हुआ है । उदा:

बुझी हुई बस्तियों की सड़कें हैं
झुकती झांकती
दिगम्भ्र पेट में समाती सी
मन में है चांद कहीं
शामिल है
टूटा है
या डूबा मेघों में
क्या फिर से निकलेगा ।"[107]

यहाँ वर्तमान से असंतोष एवं भविष्य के प्रति आस्था 'एक टुकड़ा चांद' के माध्यम से उन्होंने व्यक्त की है । यह उनकी पैनी दृष्टि तथा व्यापक जीवनानुभव का परिचायक है ।

काव्य शिल्प

नए कवियों में सर्वाधिक शिल्प सजग कवि हैं माथुर । उन्होंने महसूस किया कि आधुनिक भावबोध बौद्धिकता, निर्वैयक्तिकता तथा मनुष्यानियता से सम्बन्धित संवेदनाओं को प्रौढ़ तथा प्रभावात्मक ढंग से संप्रेषित करने केलिए प्रचलित काव्य शिल्प अपर्याप्त है । फलत: युगीन यथार्थ के सम्यक् संवहन केलिए उनकी कविता में नव्य काव्य शिल्प की तलाश शुरू हुआ । चिरनवीनता उनके शिल्पगत खूबी रही है । माथुर का काव्य शिल्प ही वास्तव में नयी कविता का काव्य शिल्प प्रस्तुत करता है । उसमें कथ्य एवं शिल्प का मणिकांचन संयोग हुआ है ।

युग जीवन की तमाम संगतियों एवं विसंगतियों, स्पन्दनों सन्दर्भों एवं संवेदनाओं को चित्रित करने केलिए माथुर ने काव्य-शिल्प के सभी उपादानों का परिष्कार एवं परिमार्जन किया । बाह्य यथार्थ की आत्मानुभूति का स्पष्ट एवं सूक्ष्म चित्र उपस्थित करने में बिम्ब का योगदान महत्वपूर्ण है । माथुर ने अपनी अभिव्यक्ति के सिलसिले में जिन बिम्बों को प्रस्तुत किया है वे अपने आप नए हैं और नए नए अर्थ सन्दर्भों को उद्घाटित करनेवाले हैं । "बिम्बों के क्षेत्र में माथुर अन्य नये कवियों की तुलना में विशिष्ट और सर्वोपरि ठहरते हैं । उनके बिम्बों में जो बंधाव है,जो गति प्रवाह और औचित्य है वह न तो भारती के बिम्बों में है और न अज्ञेय के बिम्बों में ही है ।"[108] माथुर की निम्नलिखित पंक्तियों में स्त्रियों का एक बिलकुल नया बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।

"मैदा के रंग सी
चटकती सुन्दर औरतें
ठंडी रोशनीवाली बेटरियों सी ।"[109]

माथुर ने अपनी अनुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति केलिए ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा प्राकृतिक प्रतीकों को ढूंढ निकाला है । ऐसे प्रयोगों में उल्लेखनीय है राम, कृष्ण, असुर संस्कृति युधिष्ठिर कर्ण कौरव "इतिहास एक आदिम न्याय" में माथुर ने युधिष्ठिर तथा कर्ण के कुण्डल कवच को प्रतीकवत् स्वीकारा है ।

"यह जय पराजय का नियम
है दाय आदिम न्याय का
इतिहास है मेला
जयी के मन रचे अध्याय का

विस्मृत हुआ
अन्याय होता कर्ण का कुण्डल कवच
इतिहास केवल काम कुंवर
युधिष्ठिर का आज तक ।"[110]

यहाँ माथुर ने पौराणिक प्रतीक को ऐतिहासिक संस्पर्श से बिलकुल नये सन्दर्भ में रखा है । उन्होंने राम, रावण, सौमित्र रेखा जैसे शब्दों को प्रसंगानुकूल प्रतीकार्थ प्रदान किये हैं ।

"कल्पों के बाद
छल के मरीचि ओट
अविचल सौमित्ररेख सहसा ही हुई भंग
कल्पों की कुछ पछी
पक्ति पर उठा भंग ।"[111]

यहाँ सौमित्र रेखा" पौराणिक प्रतीक है । स्पष्ट है कि माथुर की प्रतीक योजनाआधुनिक जीवन के विविध आयामों की सही पहचान केलिए सक्षम निकलती है ।

माथुर की काव्य भाषा नयी कविता के स्तर की है । भाषा को माँज कर परिमार्जित करने की माथुर की दक्षता सराहनीय है । युगीन संवेदनाओं एवं संभावनाओं को यथावत् समेटने में उनकी काव्य भाषा सक्षम है । इसकेलिए उन्होंने एक ओर पुराने शब्दों का संस्कार कर दिया व उनमें नया अर्थ भर दिया है । दूसरी ओर नए शब्दों का निर्माण करके काव्य भाषा का विस्तार किया है जिससे उनकी काव्य भाषा में एक ताजगी एवं ऊर्जा आ गयी । संगीतात्मकता माथुर की काव्य-भाषा की एक विशेषता है लालित्य तथा लयात्मकता नए कवियों में माथुर में अधिक है । उदा :

"एक आग है जो धधक रही है
एक लपट है जो रुक नहीं पाता
एक शब्द है जो घुमड़ रहा है
एक गन्ध है जो बंध नहीं पाती ।"[1]

भाव सम्प्रेषण के साथ ही साथ अर्थ और लय पर इतना सजग रहनेवाला कवि शायद माथुर ही रहा है ।

छन्द के क्षेत्र में भी माथुर ने नूतनता उपस्थित की है । छन्द के प्रति उनका जो लगाव है वह बिलकुल नया है । उन्होंने परम्परागत छन्द सम्बन्धी परिकल्पना को बिलकुल अनावश्यक तथा कविता के स्वच्छन्द प्रवाह केलिए बाधक मानकर उसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किया । आधुनिक मानव के समग्र परिदृश्य को ध्वनित करने केलिए मुक्त छन्द ही पर्याप्त है । माथुर की कविता के लय और लालित्य का मुख्य कारण मुक्त छन्द है ।

माथुर ने मुक्त छन्द में लय का कैसा निर्वाह किया वह आगे की पंक्तियों से स्पष्ट है ।

"यह पौधा
अपने ही पत्तों में लिपटा
धूप हवा लेता अपने में मग्न है
यह बेल पसारती है - सहज है
सुख के धरातल पर
** ** **
और मैं मुझे नींद कितनी प्यारी है
आत्मदान कितना प्यारा है
परितोष कितना प्यारा है ।"[2]

माथुर के सम्बन्ध में अज्ञेय ने कहा है "अब जिसे नयी कविता कहा जाने लगा है उसके रूप और मुहावरे के विकास में गिरिजाकुमार माथुर का निश्चित योग रहा है"[114]।

उपर्युक्त अध्ययन से यह निर्विकल्प रूप से कहा जा सकता है कि माथुर की कविता एक ऐसे समन्वयात्मक दृष्टिकोण को प्रश्रय देती है जिसमें भावपक्ष एवं कलापक्ष, व्यष्टि और समष्टि, परंपरा और आधुनिकता का संतुलित समावेश हो जाता है । अपनी मूल काव्य प्रवृत्ति रस, गीयात्मिक रोमांटिक सौन्दर्य चेतना को परिष्कृत एवं प्रेरित करते हुए भी युग की तमाम संगतियाँ उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हुई हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नयी कविता के प्रतिष्ठापकों में माथुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उनके सम्बन्ध में डॉ॰ नगेन्द्र के उस कथन से सहमत हो सकते हैं "गिरिजाकुमार माथुर नए कवियों में अग्रणी हैं इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। नई कविता में जो स्थायी काव्य तत्व है उसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं इसमें भी सन्देह नहीं किया जा सकता ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से उनका स्थान अज्ञेय के समकक्ष है । कालान्तर में प्रचार का कोलाहल शान्त होने पर नई कविता का इतिहास वस्तुपरक दृष्टि से लिखा जाएगा तो उसके निर्माताओं में गिरिजाकुमार माथुर का नाम अन्यतम होगा"[115]।

संदर्भ

1॰ रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद - पृ॰50

2॰ रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - पृ॰152

3॰ गंगाप्रसाद विमल - आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में - पृ॰197

4॰ धर्मवीर भारती - साहित्य नया और पुराना - पृ॰29

5॰ जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं - पृ॰193

6॰ अज्ञेय - आज का भारतीय साहित्य - पृ॰403

7. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ.41

8. मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ.40

9. इन्द्रनाथ मदान - आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - पृ.145

10. डॉ. नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - पृ.19

11. रमेश कुंतल मेघ - आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - पृ.314

12. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ.13

13. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं - पृ.1

14. गंगाप्रसाद विमल - आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में - पृ.193

15. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - कविता और कविता - पृ.45

16. धर्मवीर भारती - अंधायुग - पृ.26

17. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है - पृ.263-310

18. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान - पृ.211

19. जगदीश गुप्त - कवितान्तर - पृ.22

20. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ.81-82

21. धर्मवीर भारती - अंधायुग - भूमिका - पृ.2

22. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए ये - पृ.21

23. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन में उद्धृत लक्ष्मीकांत वर्मा की कविता - पृ.52

24. नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान - पृ.36

25. केदारनाथ सिंह - अभी बिल्कुल अभी - पृ.16-17

26. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं - पृ.42

27. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.111

28. डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल - नयी कविता की नाट्यानुभूति - पृ.32

29. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष - पृ.93

30. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.112

31. सं.अज्ञेय - तीसरा सप्तक - विजयदेवनारायण साही - पृ.175
32. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृ.311
33. केदारनाथ सिंह - अभी बिलकुल अभी, पृ.31-32
34. मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.126-129
35. राकेश गुप्त - नया सप्तक, पृ.182
36. अजितकुमार - अकेले कंठ की पुकार, पृ.37
37. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृ.48
38. भवानी प्रसाद मिश्र - गीत फरोश, पृ.166
39. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - गर्म हवाएं, पृ.15
40. कुमार विमल - नयी कविता नयी आलोचना और कला, पृ.7
41. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ.227
42. सं.अज्ञेय - तीसरा सप्तक - मदन वात्स्यायन का वक्तव्य, पृ.69
43. प्रकाश दीक्षित - हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ.101
44. वही - पृ.86
45. लक्ष्मीकांत शर्मा - साहित्य कोश, पृ.366
46. सं. अज्ञेय - तीसरा सप्तक, पृ.11
47. अज्ञेय - तीसरा सप्तक, पृ.7
48. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ.46
49. अज्ञेय - तीसरा सप्तक - विजयदेवनारायण साही, पृ.191
50. अजितकुमार - अकेले कंठ की पुकार, पृ.37
51. अज्ञेय - तीसरा सप्तक, पृ.8
52. वही - पृ.7
53. ओम प्रकाश अवस्थी - नयी कविता रचना प्रक्रिया, पृ.230
54. अज्ञेय
55. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ.263
56. वही - पृ.306
57. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष, पृ.93

58· धर्मवीर भारती - अंधायुग, पृ·22
59· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ·8
60· कुँवरनारायण - चक्रव्यूह, पृ·127
61· धर्मवीर भारती - अंधायुग,
62· सं· अज्ञेय - तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह, पृ·144
63· शमशेर -कुछ कविताएं, पृ·13
64· अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय,
65· मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ·15
66· अज्ञेय - आज का भारतीय साहित्य, पृ·413
67· जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृ·44
68· रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन, पृ·57
69· गिरिजाकुमार माथुर - जो बन्ध नहीं सका, पृ·99
70· गिरिजाकुमार माथुर - जो बन्ध नहीं सका, पृ· 3
71· वही - पृ·41
72· वही - पृ·47
73· वही - पृ·18
74· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·36
75· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·30
76· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·71-72
77· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·87
78· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·27
79, वही - पृ·47
80· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·5-6
81· गिरिजाकुमार माथुर - शिला पंख चमकीले, पृ·80
82· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·41
83· वही - पृ·44
84· सं· अज्ञेय - तारसप्तक, पृ·286
85· अजितकुमार-अकेले कंठ की पुकार, पृ·37
86· गिरिजाकुमार माथुर - जो बँध नहीं सका, पृ·44

87. रामविलास शर्मा - नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ.64
88. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ.5
89. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ.26
90. नयी कविता - गिरिजाकुमार का लेख - अंक.1, पृ.76
91. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.49
92. गिरिजाकुमार माथुर - निर्णय का क्षण नामक कविता
93. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.21-22
94. वही - पृ.60
95. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.11
96. डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी - आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य - पृ.32
97. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.22
98. गिरिजाकुमार माथुर - ~~जो बंध नहीं सका~~, शिलापंख चमकीले, पृ.22-23
99. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.30
100. वही - पृ.9-10
101. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.32
102. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं, पृ.135
103. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.4
104. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.41
105. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.62
106. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.44
107. गिरिजाकुमार माथुर
108. हरिचरण वर्मा - नये प्रतिनिधि कवि, पृ.320
109. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ.69
110. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.14
111. वही - पृ.35
112. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.102
113. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ.29
114. सं. अज्ञेय - आज का भारतीय साहित्य, पृ.339
115. डॉ. नगेन्द्र - आस्था के चरण, पृ.438

पाँचवाँ अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य-संवेदना

पाँचवाँ अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य संवेदना

संवेदना वह चेतन क्षमता है जिसके कारण व्यक्ति अपने परिस्थितिजन्य सुख-दुःख के साथ वैयक्तिक स्तर पर प्रतिक्रिया करते हुए निजी अनुभूति को संप्रेषित करता है। यह शब्द अंग्रेजी के "सेन्सिबिलिटी" शब्द का पर्यायवाची है। इसका शाब्दिक अर्थ है अनुभूति, सहानुभूति। लेकिन "संवेदना" शब्द साधारण अर्थ से भिन्न, गहरे तथा विशाल अर्थ में साहित्य-जगत में प्रयुक्त किया जाता है। कवि या साहित्यकार अपने अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने की अदम्य स्थिति में कृतसंकल्प हो जाता है। उसकी अभिव्यक्ति में अनुभूत सत्य के साथ उसकी प्रतिक्रिया तथा व्यक्तित्व की छापपड़ जाती है। "काव्य रचना के सन्दर्भ में कवि अपने परिवेश से तथा वैयक्तिक अनुभवों से प्रतिक्रियान्वित होता है। इस प्रतिक्रिया की तह में कवि की संवेदनात्मक मानसिकता निहित है। संवेदना के सम्बन्ध में कतिपय साहित्यकारों और प्रबुद्ध विचारकों के मतों पर प्रकाश डालना असंगत नहीं होगा।

अज्ञेय की नज़र में "संवेदना वह यन्त्र है जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ सम्बन्ध जोड़ती है। वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी। क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीवयष्टि अपने से इतर जगत् को पहचानती है वहाँ अपने को अलग भी करती है[1]।" डॉ॰ देवीप्रसाद गुप्त ने संवेदना पर विचार करते हुए यों लिखा है, "संवेदना का अभिप्राय अभाव की स्थिति या वेदना की निवृत्ति से न लेकर साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा से लेना चाहिए जो उसे सृजन की प्रेरणा निर्माण की शक्ति, रचना विधान की क्षमता और लोक जीवन के प्रति आस्था प्रदान करती है[2]। स्पष्ट है, संवेदना मम और ममेतर से यानी व्यष्टि तथा समष्टि से सम्बद्ध चेतना है।

प्रत्येक व्यक्ति सीमित अर्थ में संवेदनशील होता है। "कोई मानव घटनाओं के प्रति संवेदनशील नहीं, ऐसा कहना अयुक्तिपूर्ण है[3]।" लेकिन अपने अनुभवों को संप्रेषित करने की क्षमता हर किसी में नहीं। अनुभव हर किसी को होता है लेकिन संप्रेषण कलाकार की निजी खूबी है। यहाँ साधारण व्यक्ति से साहित्यकार अपना पृथक अस्तित्व रखता है। और संप्रेषण उसका अपना सवाल है। मुक्तिबोध की राय में "जगत जीवन के संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना में समाई हुई मार्मिक आलोचना दृष्टि के बिना कवि कर्म अधूरा है[4]।" प्रतिभासम्पन्न कवि जीवन्त संवेदनशील मानसिकता तथा सृजनात्मक शक्ति के ज़रिये अनुभूत तथ्यों को पर्याप्त गहराई देता है। अतः गहन जीवन-आलोचना कवि केलिए अनिवार्य है।

हर एक साहित्यकार अपनी संवेदना के संप्रेषण में संलग्न दिखाई पड़ता है। निजी संवेदना को दूसरों तक पहुँचाने की लालसा ही उसका सृजनात्मक उद्देश्य है। संवेदनात्मक अनुभव ही कलात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं। यदि उनमें इसका अभाव है तो सृजन उसकेलिए असंभव बन जाता है।

"संवेदना" साहित्यिक रचना का अनिवार्य तत्त्व है। प्रत्येक प्रकार की साहित्यिक रचना के लिए इसका महत्त्व सापेक्ष्य है। किन्तु काव्य रचना के सन्दर्भ में इसका महत्त्व सर्वाधिक है। प्राचीन आचार्यों ने काव्य के विधायक उपकरणों में भाव तत्त्व को विशेष स्थान दिया था। आधुनिक युग की रचना प्रक्रिया में भावतत्त्व अपेक्षाकृत गौण और बुद्धितत्त्व प्रधान हो गया है। आज की कविता में "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्" जैसी मान्यताएं सन्देहास्पद हो गई हैं। भावतत्त्व और रसात्मकता का स्थान बौद्धिक चेतना और अनुभूति ने ले लिया है। रचनात्मक उपकरणों के आनुपातिक परिवर्तनों के बावजूद संवेदना अब भी काव्य का अनिवार्य गुण बनी रहती है। संक्षेप में कविता-चाहे प्राचीन हो या नवीन वह संवेदनशील मन की प्रतिक्रिया है और संवेदना ही कविता का चिरन्तन विधायक तत्त्व है।

पारिवेशिक परिवर्तन के साथ ही साथ संवेदना भी बदलती रहती है। जैसा जीवन दर्शन बदलता है वैसा संवेदना भी बदलती जाती है। इसका अटूट सम्बन्ध जैविक परिस्थिति से न होकर सांस्कृतिक परिस्थिति से होता है। "पीढ़ी-दर-पीढ़ी में हर एक संवेदना बदलती जाती है"[5]। इसके अतिरिक्त कवि की संवेदना उसके मानसिक स्थिति से भी जुड़ी हुई है। आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास ही इस परिवर्तित होती संवेदनात्मक मानसिकता का साक्षी है। छायावादी कवियों ने काव्य के क्षेत्र में सबसे पहले व्यक्तिपरक संवेदना की प्राण-प्रतिष्ठा की। प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक जीवन के बाह्यपक्ष का पर्दाफाश किया। प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति के आन्तरिक पहलुएं चित्रित हुए। नयी कविता ने व्यक्ति और समाज के, बाह्य और आन्तरिक अनछुए आयामों को खोल रखा।

आज की बदली हुई परिस्थिति कवि को अधिक संवेदित करती रहती है। उसके मन का संघर्ष, विवशता और निर्मुक्तता आदि इसी नयी परिस्थिति की उपज है। विषम सामाजिक परिस्थिति में आज की संवेदना उलझी हुई है। उलझी हुई संवेदना के दो कारण हैं - आन्तरिक

संघर्ष और बाह्य संघर्ष । आन्तरिक संघर्ष के फलस्वरूप "आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित और कुंठित हैं । इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसा काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष भी बैठा है जो व्यक्ति और व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति समूह का, वर्गों और श्रेणियों का संघर्ष है[6] ।" अज्ञेय ने जिस उलझी हुई संवेदना की चर्चा की उस पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने आज की संवेदना के सम्बन्ध में कहा है, "वर्तमान संवेदनशील अनुभूतियाँ आज वर्ग रचना में मात्र आन्तरिक प्रस्फुटन से विकसित नहीं होती उनका एक बाह्यांतर भी है । यह स्वर आज के उस सत्य से सम्बद्ध है जिसमें समस्त मानव की संवेदना हमारी संवेदना से सम्बद्ध होकर व्यक्त होती है[7] ।" इन प्रबुद्ध विचारकों के मतों से स्पष्ट है कि जीवन की समग्रता की संवेदना काव्यात्मक संवेदना है । किसी कवि की काव्य-संवेदना के रचना विश्लेषण के द्वारा उसकी महत्ता, जीवन दृष्टि और मौलिकताकी जानकारी हम प्राप्त कर सकते हैं ।

गिरिजाकुमार माथुर मूलत: संवेदनशील कवि हैं । उन्होंने प्रकृति तथा जीवन से सम्बन्धित समूची संगतियों और विसंगतियों को अपने काव्य का विषय बनाया है । मानव जीवन और जगत् के क्रिया-कलापों और आदमी से सम्बन्धित घटनाक्रम को काव्य वस्तु बनाने के कारण उनकी संवेदना विशेषीकृत हुई है । यद्यपि काव्य संवेदना को विभाजित करना असंगत है फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से माथुर की काव्य संवेदना निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित है ।

1. व्यक्तिपरक संवेदना
2. समाजपरक संवेदना
3. राजनीतिपरक संवेदना
4. संस्कृति और इतिहासपरक संवेदना
5. प्रकृतिपरक संवेदना

1. व्यक्तिपरक संवेदना

कवि के भोगे हुए यथार्थ में कुछ ऐसे खास क्षण होते हैं जहाँ वह अन्य सम्बन्धों से अपने को मुक्त महसूस करता है । उसका वास्तविक चरित्र इन अमूल्य क्षणों में ताज़ा और सच्चा निकलता है । ऐसे क्षणों में व्यक्ति (कवि) अपने अनुभूत सत्य के प्रति वैयक्तिक प्रतिक्रिया प्रकट करता है जिसमें कवि की निजी मानसिकता प्रबल होती है । इस खास क्षण को निरूपित करते हुए आलोचक तथा कवि मुक्तिबोध ने कहा "हमारी आत्मा का जो अनुभव होता है, उसे हम लिखते हैं । किन्तु, हमारी आत्मा में बहुतेरे अनुभव संचित हैं वह सब साहित्य में क्यों नहीं आता ? इसके उत्तर में कहा जाता है कि गहन अनुभूति के क्षण थोड़े होते हैं वे सौन्दर्यानुभूति के क्षण होते हैं, जब हममें एस्थेटिक इमोशन जाग उठता है, तब हम कविता लिखते हैं ।"[8]

रचना की सार्थकता तभी संभव है जब अनुभूति वैयक्तिकता से निकलकर निर्वैयक्तिक हो । अज्ञेय की दृष्टि में "कविता तभी होती है जब साधारण पहले निजी होता है और फिर, व्यक्ति में से छनकर साधारण होता है ।"[9] राम स्वरूप चतुर्वेदी का निम्नोक्त कथन इस पर पर्याप्त प्रकाश डालता है । रचनाकार "व्यक्तिगत अनुभूति को सार्वजनीन बना सके, उत्तरोत्तर बढ़ती स्वचेतना के युग में निर्वैयक्तिकता तथा तटस्थता की स्थिति को प्राप्त किए बिना कला सर्जन प्रायः असम्भव हो जाता ।"[10] निर्वैयक्तिकता को काव्य की श्रेष्ठता के लिए अनिवार्य मानते हुए अज्ञेय ने और कहा, "कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है । यह भी कहना ठीक होगा कि वह सत्य व्यक्ति बद्ध नहीं है, व्यापक है, और जितना ही व्यापक है, उतना काव्योत्कर्षकारी है ।"[11]

व्यक्तिपरक संवेदना छायावादी तथा गीतिकाव्य प्रवृत्ति की प्रमुख खासियत रही है । छायावादी कवि इतना अन्तर्मुखी हो गया कि वह

वास्तविक जीवन से असम्पृक्त होकर कल्पना के पंखों में उड़ान भरता था। वह अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति में सीमित था। उसकी निजी अनुभूति आध्यात्मिक गुत्थियों में उलझी हुई थी। प्रयोगवादी कवि की निजी अनुभूति अपनी सीमित दायरे से एकदम निकलकर एक व्यापक सन्दर्भ से जुड़ती है। उसका व्यक्ति वह इकाई है जो समष्टि से कदापि निरपेक्ष नहीं। उसका व्यक्ति काल्पनिक नहीं यथार्थ एवं बौद्धिक है। छायावादी तथा प्रयोगवादी वैयक्तिकता को आलोचक इन्द्रनाथ मदान यों जाहिर करते हैं "जहाँ छायावादी कवि की जीवन दृष्टि व्यक्तिमूलक भावना से प्रभावित है, वहाँ प्रयोगवादी कविता की जीवन दृष्टि व्यक्तिमूलक धारणा से प्रेरित है। जहाँ छायावाद का आधार यथार्थमूलक है वहाँ प्रयोगवाद की मूल चेतना बौद्धिक है।[12]" माथुर ने छायावादी वैयक्तिकता को बौद्धिक स्तर पर स्वीकार किया। उनकी कविता में अतिशय भावुकता तथा तीक्ष्ण बौद्धिकता नहीं। दोनों का समन्वित रूप ही उपलब्ध है।

माथुर की कविताएं आत्माभिव्यक्ति के नमूने हैं। अतः उनके काव्य में अपनी भोगी हुई सच्चाई की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। रंग, रस, रोमांस के कवि होने के नाते कवि की बहुतेरी कविताओं में विशेषकर प्रारम्भिक रचनाओं में गहरे आत्म-संवेदन तथा आत्मनिष्ठ अनुभूतियों का संप्रेषण हुआ है। इस दृष्टि से मंजीर और नाश और निर्माण' की कविताएं विशेष उल्लेखनीय हैं। "मंजीर के गीतों में उन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भाव कल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है। इन गीतों में छायावाद की रंगीनी तो है, किन्तु इनकी भाववस्तु वायवी नहीं। इन गीतों में छायावाद की आभा को इस नये कवि ने रूप प्रदान किया है।[13]" "नाश और निर्माण" की कविताओं में इस प्रवृत्ति का सहज विकास हुआ है। इनमें कवि ने जीवन की मधुर भावना को वैज्ञानिक उपलब्धियों के आभूषणों से अलंकृत कर पूरी गहराई के साथ बिम्बित कि अन्य संग्रहों की कविताओं में भी इसकी झलक मिल जाती है।

माथुर ने प्रेम को, जो जीवन की कोमल वृत्ति है, काव्य विषयों में स्थान दिया है । प्रेम जैसे पहले होता था वैसे ही आज भी वर्तमान है । लेकिन इसको देखने परखने की दृष्टि में बदलाव आ गया है । इस की ओर संकेत करते हुए अज्ञेय ने यों कहा है, "सभ्यता के विकास के साथ ही साथ हमारी अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता गया है । हमारे मूल राग-विराग नहीं बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा है, यह साधारणतया स्वीकार किया जाता है । राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ बदल गयी है ।"[14] माथुर ने छायावादी अलौकिक प्रेम के स्थान पर लौकिक प्रेम की प्राण-प्रतिष्ठा की । प्रणय सम्बन्धी कविताओं में श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग-का विवेचन हुआ है । प्रेम संयोग के पुलकित क्षणों की स्मृति का अवलम्बन ग्रहण करते हुए रंग रस रोमांचकारी परिवेश की व्यंजना करने में गिरिजाकुमार माथुर अपने ढंग के अनूठे कवि हैं ।[15] संयोग सम्बन्धी कविताओं में संयोग की अपेक्षा संयोग स्मृति का ही चित्रण अधिक हुआ है ।

"अभी तो झूम रही है रात" में माथुर ने युवावस्था में बड़ी-बड़ी काजल आँखों से युक्त आँखों की ओर आकृष्ट होने और किसी अनजान अपरिचित की स्मृति में रात के बीतने का चित्रण अंकित किया है ।

"बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्राण
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिन्ह ।"[16]

यहाँ कवि का प्रौढ़ सौन्दर्यबोध द्रष्टव्य है ।

एक सूनी सी संध्या में अपने मैले कपड़े देखते वक्त कवि को सिलवट के कुर्ते से लिपटा हुआ रेशमी चूड़ी का टुकड़ा मिल गया। उसके सम्मुख सारी कलाइयाँ नाच उठी जिसके साथ मिलन रात में उसने रंग भरी केली की थी। लज्जा विवश प्रियतमा का चित्र उसके मन में उभरने लगा। सुनहली सेज पर कसे हुए बन्धन में एक चूड़ी का टुकड़ा टूट कर गिरि थी। इस परिप्रेक्ष्य को माथुर ने "चूड़ी का टुकड़ा" का काव्य विषय बनाया है।

"दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगीं तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें
सेज सुनहली,
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना,
निकल गईं सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा
यही छोटा सा टुकड़ा।"[17]

नर-नारी के पारस्परिक मिलन के चित्रण केलिए रात के बारह बजे के रेडियम घड़ी की दो सुइयों के अटेस मिलन के बिम्बांकन के ज़रिये कवि ने "रेडियम की छाया" में नूतनता उपस्थित की। उनकी कविता में बिहारीकी नग्नता या अश्लीलता नहीं। "यह श्रृंगार न तो भूखे तन और मन का आहार है न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना विहार है। कवि ने जीवन की मधुर भावना को हल्के हाथों से किन्तु पूरी गहराई के साथ बिम्बित करने का प्रयास किया है।"[18]

लजाती, शरमाती आती हुई नायिका का चित्र कवि ने सच्चाई के साथ यों खींचा है।

"जब तुम पहली बार मिली थी
पीले रंग की चूनर पहिने

देख रही थी चोरी चोरी
मेरे मीठे प्यार के
मेरे पास अचानक आकर
छीन लिया था उन्हें तुम्हारे मेहन्दी रंग
हुए हाथों से
और लाल होकर क्वारी लज्जा से तुमने
मुख पर अंचल खींच लिया था
जल्दी से निज चाह छिपाने ।"[19]

"रेडियो कवि सम्मेलन" में रेडियो द्वारा कवि की आवाज़ सुनने केलिए आतुर नायिका का वर्णन हुआ है ।

"एक मौन सा उजला कमरा
लहर भरा बादामी रंग का नया रेडियो
नई याद से भरे हृदय के टुकड़े जैसे
और चित्र-सी आँखें बन्द किए तुम,
मेहन्दी रंजित गोरे हाथ टिकाए मुख पर
खोई सी सुनने को आतुर
मेरे लहर बने गीतों को
डूब डूब स्वर के उतार में ।"[20]

संयोग शृंगार की अभिव्यंजना में माथुर ने देह की महत्ता को स्वीकारा है । देह को महत्त्व इसलिए दी है कि संसार का अस्तित्व ही इस पर आधारित है । देह के द्वारा ही प्रिय से अमुक मिलन संभव है । माथुर की "देह की आवाज" में प्रणय की स्थूल एवं मांसल अभिव्यक्ति हुई है । उसमें मन शरीर से पूछता है कि "चिकने मांसल तमका" नोकीली रंगीनी नज़र का

चन्द्रानन का "हाड़ चाम" का इतना महत्व क्यों है ? शरीर के प्रति क्यों इतना आकर्षण है ? इस का उत्तर देह यों देती है -

"हे देह भोगसिक्त सृष्टि मधुमती के वर
लालिम वरणों में छिपी प्रकृति की केसर
के ये नील श्याम मानव जगती है मनहर
तन रचना में मानव तन सब से सुन्दर ।"[21]

नारी-सौन्दर्य के चित्रण में माथुर का दृष्टिकोण बिलकुल भोगवादी है । उसमें छायावादी पूज्य और आदर्शपरक मानसिकता का नितांत अभाव है । स्त्री-पुरुष मिलन के चित्रण में माथुर कुछ मिलन की वेला का और एक चित्र देखिए -

"देह कुसुमित मृणाल जैसे गेहूं की बाल
जैसे उचकोहे बोरों से
रोमिल रसाल
झिलमिली चन्द्रमाट
कसमस से उर प्रियाल ।"[22]

दूसरा

"धरती सिहरी
ज्यों उरजों छुई न वेली
नखत खिले चाँदनी नई मुस्काई
फिर चन्द्रमिलन, चुंबन की वेला आई ।"[23]

मिलन की रंगीन शाम को विभिन्न आभूषणों से अलंकृत नारी के रूप में यों चित्रित किया है ।

इस रंगीन सांझ में तुमने
पहिने रेशम वस्त्र सजीले
केसर की तुम कुसुम कली सी
आई सिमटी सी लिपटी सी
भरी गोल गोरी कलाइयों में पहिनी थी
नयन डोर सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ ।[24]

मिलन की वेला में उसकी प्रिया ने अपनी ऊंगली पर पल्ला नहीं लपेटा वरन् कवि का मन लिपट गया । वह प्रिय के सभी प्रश्नों का उत्तर "मौन" से देती है ।

"बोलते में
मुस्कराहट की कली
रह गई गड़कर
नहीं निकली अभी अनी
वेन से
पल्ला जो ऊंगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा नहीं
बहुत पूछा
बहुत पूछा
पर नहीं उत्तर मिला
हे लजीले मौन
बातें अनगिनी ।[25]

माथुर ने मिलन की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ वियोगजन्य व्यथा की तीव्रता को भी शब्दबद्ध किया है । विरह व्यथा से उत्पन्न पीड़ा कविता को तीव्र बनाती है । इसलिए पंत ने यों कहा " वियोगी होगा

पहिला कवि, आहसे उपजा होगा गान ।" [26] माथुर की प्रारम्भिक कविताओं में इसी विरहजन्य पीड़ा का स्वर अधिक मुखरित हुआ है ।

"दो क्षण तो मिल पाये हम" में मिलनोपरांत की विदाई की वेला में जो विषाद की रेखाएं उमड़ आती हैं उसको कवि ने यों अभिव्यक्त किया है ।

"दो क्षण तो मिल पाये हम
और विदा की वेला आई
इतनी जल्दी तुम्हें बताओ
कैसे दूं मैं आज विदाई ।" [27]

"कौन थकान हारे जीवन की" में वियोग व्यथा तथा उदासी को प्रकृति के सहारे उकेरा गया है ।

"कौन थकान हारे जीवन की
बीत गया संगीत प्यार का
रूठ गई कविता भी मन की
xx x xx
रात हुई पंछी घर आए
पथ के सारे स्वर सकुचाये
म्लान दिया बत्ति की वेला
थके प्रवासी की आंखों में
आंसू आ आकर कुम्हलाए ।" [28]

यहाँ कवि की विरह जन्य निराशा व्यंजित हुई । कवि को वियोग की वेला में संयोग शृंगार की याद हमेशा सताती है । इसकी मांसल अभिव्यक्ति माथुर ने यत्रतत्र की है ।

"याद आए मिलन से
मसली सुहागिन सेज पर के सुमन से
फिर याद आए मत पवन
फिर बिछुडन के अश्रु सूत्र नयन से[29] ।"

"प्यार बडा निष्ठुर था" में प्रेम की असफलता के दुःख की व्यंजना हुई । कवि का मृदुल हृदय विरहाग्नि में भस्म हो रहा है ।

"प्यार बडा निष्ठुर था
कोटि दीप जलते थे मन में
रस बरसानेवाले आकर
विष ही छोड गये जीवन में[30] ।"

इस प्रणयजन्य निराशा के कारण कवि मन दुबारा अरमानों को सजाकर प्रेम करने से डरता है ।

"अब वह दिन ही नहीं रहा
जो फिर से कुछ अरमान बनाऊँ
अब हिम्मत ही रही नहीं
जो एक नया पाषाण बनाऊँ[31] ।"

कवि की प्रिया दूर रहने पर भी मन से उसके पास ही है । उसका मुस्कुराता हुआ चेहरा कवि के मन को आज भी व्यथित कर रहा है ।

उसकी भोली भाली सूरत मछली आँखें, रक्तिम अधर तथा ग्राम बालिका का अवलम्बन कवि की विरही आँखों में सदैव बना रहता है । "न्यूयार्क की एक शाम" के नायक को सुदूर के अपने सुन्दर देश का घर स्मरण आता है ।

"दुनियाँ एक मिट गई , टूटे
गया खिलौना ज्यों मिट्टी का
आँसू की सी बूंद बन गया
मोती का संसार, सलोनी
:: : ::
सभी पराया सभी अपरिचित
रंग हजारों पर मन सूना
नव-सपनों में याद आ रहे
वे कच्चे घर द्वार, सलोनी ।"[32]

कवि का विरही मन प्रणय की असफलता पर आँसू बहाए निष्क्रिय रहना नहीं चाहता । अपनी व्यथा को भूलकर प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना चाहता है ।

"जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन ।"[33]

इस निराशा में भी भविष्य के मिलन के प्रति आस्था रखता है ।

"फिर मिलन होगा वियोगिनी
नयन मुस्मिल जायेंगे सब

सुमन सुख खिल जायेंगी तक
शशि किरण की बाह में फिर उर मगन होगा वियोगिनी ।"[34]

"प्रौढ रोमांस" का विरही निष्क्रिय नहीं । विरहाग्नि को भोगते हुए भी वह कर्मनिरत है । उसके मन में निराशा तो है किन्तु वह जीवन की सृजनात्मकता की ओर अग्रसर होना चाहता है । उसके सम्मुख घर की, समाज की समस्याएं हैं । ऐसी स्थिति में उन्हें सुधि की पीडा सताती ही नहीं ।

हम को भी है ज्ञान विरह का
:: :: ::
पर वह तुमसे भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
हैं संघर्षों में जुझे जूझे
हम डटकर जीवन में युद्ध कर रहे प्रतिपल
आज हमारे सम्मुख और समस्याएं हैं
प्रथम दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के
आज हमको सुधि की पीडा नहीं सताती ।"[35]

विरहजन्य अश्रु और निराशा के स्थान पर कर्मठता और सक्रियता जीवन के प्रति सृजनात्मक मानसिकता का प्रमाण है । कर्मठता पर ज़ोर माथुर ने बार बार किया है ।

"किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से जुझकर संघर्ष किया है ।[36]"

माथुर ने छायावादी निष्क्रिय नायकों का समर्थन किए बिना प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ जूझकर संघर्ष करने वाले आधुनिक कर्मठ नायकों का चित्रण किया जो पूर्णतः युगानुकूल है । बदली हुई युगीन परिस्थिति के अनुसार आशा-निराशा सम्बन्धी मानसिकता में भी परिवर्तन आ गया है । आज का नायक या नायिका विरहाग्नि में अपने को खोने के लिए तैयार नहीं । वे भविष्य के प्रति आस्थावान है । कर्मनिरत भी । इसका मतलब यह नहीं कि माथुर व्यक्तिवादी है । माथुर ने व्यक्ति की समस्याओं को महसूस किया और उसका चित्रण भी । पर सामाजिक परिवेश से अलग करके माथुर ने अपने पात्रों को कभी भी नहीं स्वीकारा है ।

समाजपरक संवेदना

कवि मूलतः सामाजिक प्राणी है । सामाजिक सन्दर्भ में ही उसका विकास होता है । अतः उससे अलग होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं । समाज के अणु अणु से वह परिचित है । हर प्रतिक्रिया से, हर परिवर्तन से वह अभिभूत हो जाता है । साधारण आदमी से भिन्न भावुक तथा संवेदनशील हृदय साहित्यकार को संवेदना के संप्रेषण के लिए विवश करता रहता है । अतः उसकी अभिव्यक्ति में समाज प्रमुख है । पर वह केवल समाज की समस्याओं के उद्घाटन के लिए सृजनारत नहीं होता । सृजन उसकी अन्तरात्मा की पुकार है । उसकी समाजिक समस्याओं का उल्लेख इसलिए होता है कि वह सचेत सामाजिक प्राणी है । उसका कार्य प्रचारक साहित्यकारों से एकदम भिन्न होता है ।

"आज के वैविध्यमय उलझन भरे रंग बिरंगे जीवन को यदि देखना है तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उठकर बाहर जाना ही होगा[37]।" समष्टि के प्रति विशेष लगाव के कारण प्रतिभा को व्यक्तित्व के निम्न स्तर से बचना चाहिए।

साहित्य में समष्टि की समस्याओं को चिरंतन माननेवाले रघुवंश यों कहते हैं, "साहित्यकार साहित्य सर्जन के क्षेत्र में व्यक्तिगत कुछ नहीं है साहित्य उपलब्धि के रूप में प्रेषणीय है। इसलिए उसके साथ समष्टि का प्रश्न चिरंतन है[38]।" एक प्रतिभा अपने विशाल अनुभव क्षेत्र से उत्तेजित होकर कविता में सामाजिक संगतियों और विसंगतियों के प्रति पक्षधरता विहीन वैयक्तिक प्रतिक्रिया ही प्रकट करती है। उसमें उसका सामाजिक अवबोध निस्सन्देह वर्तमान रहेगा। कविता समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की रचना प्रक्रिया है।उसकी सामाजिकता असंदिग्ध है।

सामाजिक समस्याओं से सजग कवि संस्कृति संपन्न और सचेत कलाकार है। ऐसे कवियों की कविता सभ्य और कालजयी रहेगी। नेमीचन्द्रजैन ने इसी बात का समर्थन किया है। "जिस दिन व्यक्ति-कवि सचेष्ट भाव से इस युग के पुराने संस्कारगत आन्तरिक विरोध को सुलझाकर अपनी चेतना को पूर्ण रूप से सामाजिक बना सकेगा, उस दिन कविता फिर अपने प्रस्तुत रूप में निखर उठेगी, बल्कि बहुत दिनों बाद फिर उसी दिन सच्ची कविता सभ्य हो सकेगी[39]।"

प्रगतिवाद में सामाजिक जीवन का चित्रण बहुतायत से हुआ है। पर प्रगतिवादी साहित्य का प्रमुख स्वर सिद्धान्त प्रचार का था। इसमें बाह्य यथार्थ का मोटा चित्रण होता ही रहा पर सृजनात्मक व्यक्तित्व की अस्मिता को वांछित सम्मान नहीं मिला था। अपवाद के रूप में कवि

निराला अवश्य है । उन्होंने अपने को किसी सिद्धान्त प्रचार का माध्यम नहीं बनाया । इसलिए उनकी कविताएं अधिक लोकप्रिय बन पाई हैं । प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिकता पर अधिक जोर दिये जाने पर भी सामाजिक संवेदना की तटस्थ तथा स्वतंत्र अभिव्यक्ति हुई है । अज्ञेय और व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिकता के विरोधी नहीं । उन्होंने समाज का ऐसा चित्रण प्रस्तुत किया है जो वास्तविक है, वर्तमान है । इस मानसिकता का विकसित रूप है नई कविता । आज समाज की ओर किसी पूर्वाग्रह से कवि देखता नहीं । उसकी अनुभूति मात्र उसी तक सीमित नहीं रहती । वह बहुतों की अनुभूति है जिसमें वह स्वयं सहभागी और सहभोगी है । चाहे अज्ञेय हो धर्मवीर भारती हो, जगदीश गुप्त हो चाहे कोई भी आधुनिक कवि हो उनका अनुभव-क्षेत्र विशाल है । माथुर इन कवियों के समकक्ष है, जिन्होंने वर्तमान समाज की तटस्थ संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की है । "हिन्दी कविता में नवीन सामाजिक चेतना का समावेश करने में गिरिजाकुमार माथुर का योगदान कम नहीं किन्तु उन्होंने इसे व्यापक नैतिक धरातल पर ही ग्रहण किया है रूढ़ सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं ।"[40]

माथुर आधुनिक सामाजिक जीवन के हरेक पहलू से परिचित हैं वे उसके प्रति पूर्णतः ईमानदार हैं । उनकी कविताओं में समाज की संगतियों और विसंगतियों की चाहे वह नगर की हो, गाँव की हो, निम्न मध्य वर्ग की हो, उच्च वर्ग की हो - संवेदनात्मक प्रतिक्रिया अवश्य हुई है ।

आज की विषम सामाजिक परिस्थिति में यन्त्रवत् जीवन बिताने वाले मध्यवर्ग के प्रतिनिधि बने क्लार्क का चित्रण मशीन का पुर्जा में हुआ है । आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता के शिकंजे में उसकी जिन्दगी संवेदनहीन बन गई है । क्लर्क मशीन का पुर्जा है । क्योंकि न जीना उसकेलिए जीने से बेहतर है ।

G3468

पर उसे ढोते रहने की अभिशप्त स्थिति में वह अपने को अस्तित्वहीन पाता है ।

"कुहरा भरा भोर जाड़ों का,
शीत हवा में ठंडे नाते बजे हैं
ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है
पर यह मजबूरी से कंपता हुआ आया है
× ×   × ×   × ×
रफ्फू किया उसका स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है
उसका जीवन जीवनहीन मशीन बन गया है[41] ।"

आर्थिक पराधीनता के कारण उसके मन में आदर्श, भाव, प्यार नहीं । वह जिन मूल्यों का उपासक था वे सब उसके सामने खण्डित होकर गिर पड़े । फलत: व्यक्ति व्यक्ति के बीच का सम्बन्ध टूटने लगा । उसकी जिन्दगी पथ के कुचले फूल की भाँति अर्थहीन बन गयी ।

"उसके मन में अब कुछ भाव विचार नहीं
प्यार मिट चुका
और सभी आदर्शों का बलिदान हुआ है,
अंधी कर दी गई आत्मा की भी आँखें[42] ।"
उसका भी तो फूल राह में कुचल गया है ।"

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ निम्न वर्ग के लिए सुख सुविधाओं के प्रति अब कोई मोह नहीं । क्योंकि उसका जीवन इतना अभावग्रस्त हो गया है कि दूध, घी आदि स्वास्थ्य वर्धक वस्तुओं के स्थान पर

चीनी, नमक दाल आदि आवश्यक वस्तुएं भी स्वप्नवत् हो गयीं ।

दूध घी का यहाँ पे चर्चा क्या
अब न चीनी, न गुड़, न दाल - नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात ।[43]

आर्थिक वैषम्य के कारण निम्न मध्यवर्ग की सारी आशाएं मिट्टी में मिल गयीं । बाह्य और आन्तरिक तनाव से पीड़ित मध्यवर्ग का जीवन "कामिक मरीज" की तरह हो गया है । कठिन परिश्रम करने पर भी आगे बढ़ नहीं सकता ।

ऊब, घबराहट
बेचैनी, बोरियत
: : :
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन ।[44]

यांत्रिक सभ्यता ने मध्यवर्गीय व्यक्ति को संवेदनहीन बना दिया । उसका जीवन घड़ी की सुइयों में उलझा हुआ है । वह कृत्रिमता के मुखौटे को चढ़ाकर चलता फिरता है ।

लोहे के दिल दिमाग, हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बांधते
:: : ::
चलते हैं तार खिंचे मध्यवर्ग के पुतले
रोल्ड गोल्ड का कल्चर, चमकते मुलम्मे से ।[45]

कवि ने बहुतेरी कविताओं में अमीर और गरीबों के संघर्ष को दिखाकर उनकी ओर पाठक वर्ग की सहानुभूति को बढ़ाने का प्रयास किया है। एक ओर उन्होंने आर्थिक संपन्नता से अभियुक्त उच्चवर्ग के ऐश्वर्य पूर्ण जीवन का सूक्ष्म चित्रण किया है तो दूसरी ओर अभावग्रस्त मानव के करुण क्रन्दन की कहानी सुनायी है। एक ओर बड़ी बड़ी इमारतों के एयर कण्डीशन कमरे में आराम से सोनेवाले उच्चवर्ग है तो दूसरी ओर फुटपाथों पर सोनेवाले हज़ारों गरीब लोग हैं जो सर्दी में ठिठुर कर मरते हैं। माथुर का कवि-हृदय इस पर असंतुष्ट होकर दोनों पक्षों का तटस्थ चित्रण करता है।

उस खिड़की के रेशमी पर्दों में से आती
ड्रेस-सूट की गंध साड़ियों की मृदुलसरसर
वायलिन पोटों की हल्की मीठी टनकारें
xx xx xx
और मेज पर का वह दैनिक
जिसकी सुर्खी लो भी उठकर
अविराम दुहराती जाती है
कलकत्ते के फुटपाथों पर
दो सौ भूखे और मर गए।[46]

आज का वर्ग संघर्ष आर्थिक विषमता की उपज है। समाज में एक ओर वैभव संपन्न है तो दूसरी ओर कुछ सिक्कों के लिए दिन भर कठिन परिश्रम करनेवाले अभावग्रस्तों का विशाल समूह है। उनके पास न आदर्श है न नाम है, न पैसा है, न घर है न वस्त्र। अमीरी और गरीबी की चक्की में आज का मानव बुरी तरह पिस रहा है। समाज में कोई स्थान नहीं आश्रय देने के लिए न कोई रास्ता है। वे त्रिशंकु के समान अस्तित्व की व्यथा भोगते हुए न इधर के और न उधर के रह जाते हैं।

दो दुनियाँ के विषम शून्य में बँधकर
बना त्रिशंकु आज का जीवन
× ×   × ×   × ×
इसका मंजिल है दिन भर का संघर्ष
और चाँदी के टुकड़े
या शरीर आत्मा की बिक्री ।"[47]

सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हुए माथुर ने स्पष्ट किया है कि आज का जीवन विसंगतियों और विद्रूपताओं से ग्रस्त है । उसके भीतर आज का मानव अपने को अस्तित्वहीन और नामहीन महसूस करता है । विसंगति के थपेडों से आहत कवि निष्क्रिय बनने केलिए तैयार नहीं । वह विद्रोही बनने का आह्वान देता है । अत्याचारों और अनीतियों के सम्मुख सिर झुकाने के बजाय माथुर रक्त का बदला रक्त से लेने तथा अपमान को क्रान्ति से दूर करने के पक्ष में है । उनका विद्रोही स्वर निम्नलिखित पंक्तियों में गुंजित है ।

"अणियों के नोक से
अपमान निज पूरा करेंगे
रक्त लेकर रक्त के बदले
हृदय अपना भरेंगे ।"[48]

माथुर का विद्रोह वर्ग संघर्ष के चालू मुहावरे से हटकर जिजीविषा का विद्रोह है जिसमें विघटित अस्मिता की आहत चेतना सक्रिय रहती है । उनके विद्रोह में फ्रांसीसी दार्शनिक साहित्यकार आल्बेर कामू का स्वर ध्वनित है । उन्होंने स्पष्ट ही कहा, "मैं विद्रोह करता हूँ इसलिए हमारा अस्तित्व है"[49]

वे भी विसंगति में विघटित अस्मिता की तलाश में संघर्षरत हैं । वैसा स्वर माथुर की कविताओं में भी मुखरित है ।

आज के अणु युग में मानव का मन पत्थर के समान हो गया है ।

"यह रक्त-प्यास, यह रक्त-प्यास !
दीवाने ! तुम तो मानव हो
तुम में भी दिल है, स्पन्दन है
तुम आशाओं से अभिन्न हो ।"[50]

माथुर की दृष्टि में समाज में व्याप्त अत्याचारों और अनीतियों का कारण पूंजीवादी व्यवस्था है । उसने मध्यवर्गीय जीवन को अभावग्रस्त तथा अभिशप्त बना दिया सामान्य जनता के पसीनों की कमाई पर पूंजीपतियों का अधिकार चलता है । उनका शोषण समाज को निष्क्रिय बनाकर धीरे धीरे राष्ट्र का कैंसर बन जाता है ।

"शोषण से त्रस्त है समाज
कमज़ोर हमारा घर है ।"[51]

जीवन की विषम परिस्थिति को संघर्ष द्वारा अपने अनुकूल बनाने के पक्ष में हैं माथुर । इस संघर्ष को माथुर ने "अनुक्रम" के रूप में चित्रित किया है ।

"ज्वालामुखी के द्वीप-सा
संघर्ष का यह लोक है
खिलती हुई धरती यहाँ

> हिलती हुई आहार है
>
> x x x x x
>
> संघर्ष का अनुभव यहाँ आँका गया ।"[52]

माथुर ने मानवीय विकृति को आर्थिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा है । समाज के अभाव और दरिद्रता का कारण उत्पादन की कमी है । अत: उन्होंने विध्वंस के स्थान पर नवनिर्माण को महत्वपूर्ण समझा उनकी राय में वही मनुष्य अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है जो प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता हुआ जीवन के दु:खों को झेलता हुआ अपने लक्ष्य पर पहुँचता है । जिसने कटुता से जूझकर संघर्ष किया है । वही जीवन का वास्तविक सुख दु:ख प्राप्त कर सकता है । यहाँ कवि का उद्देश्य वर्ग संघर्ष नहीं पर लोगों को क्रियाशील बनाकर धरती को अधिकाधिक उर्वर बनाना है ।

> "फिर से धरती को अशोक बनाओ
> फसलों की पकी गंध बनकर तुम छाओ
> निर्माण नवयुग के पतझर से लेकर
> तुम नवयुग का रंगोत्सव नया रचाओ ।"[53]

"सब्ज़ा देश" में कवि वर्तमान विभीषिकाओं के स्थान पर सुनहरी किरण के आगमन की प्रतीक्षा में हैं ।

> "नई उषा आ रही
> शोकमय एक समूची आदि कोम पर
> नई उषा आ रही
> सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर ।"[54]

"पहिये" कवितामें माथुर ने एक ऐसे समाज के निर्माण की आशा प्रकट की है जिसमें सुख और उल्लास का वातावरण छाया हो ।

'अविरल चलता विकास का क्रम
वह चरम लिए आता है मनुज समाज
जब दुःख की सत्ता मर जायेगी
पीते वाली फूलों सी[55]।'

जाहिर है कि माथुर की कविताओं में समाजपरक संवेदना की सशक्त एवं सहज स्वीकृति है। उनकी कविताएं समाज के प्रत्येक पहलू को पकड़ने में सक्षम है। 'उनकी दृष्टि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सीमाओं को पार कर अन्तर्राष्ट्रीय भूमि पर पहुंचती है। उन्होंने संपूर्ण मानवता को एक असमञ्जस अविभाज्य इकाई के रूप में देखा है[56]।' उसकी किसी भी अंग की कोई विकृति या दुःख दर्द उनकी सहानुभूति का विषय है। उन्होंने समस्त विश्व को अखण्ड रूप में देखा है और विश्व जीवन की समस्याओं की ओर दृष्टिपात किया है।

3. <u>राजनीतिपरक संवेदना</u>

स्वातंत्र्य साहित्य में राजनीतिपरक संवेदना की अभिव्यक्ति से तात्पर्य ऐसी रचनाओं से है जो राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं विकास केलिए जन मानस में उत्साह और प्रेरणा का संचार करती हैं। आम जनता की उन्नति और एकता का स्वर साहित्य में राजनीति का स्वर होना चाहिए। देश के प्रति अनुराग महान और वीर पुरुषों के प्रति आदर आज़ादी की सुरक्षा केलिए सतत जागरूकता हर सजग सचेत नागरिक की विशेषता है। साहित्यकार एक ऐसा नागरिक है जिसके रग रग में देश के प्रति अनुराग और श्रद्धा का भाव निहित है। उसका राजनीतिपरक दृष्टिकोण सीमित नहीं होना चाहिए। सिद्धान्तों के बल पर निर्मित संकुचित राजनीति के वश में पड़कर साहित्य को

सिद्धान्त प्रचार का माध्यम बनाना साहित्यकार का रास्ता नहीं । उसके सृजन में देश की वर्तमान स्थिति के प्रति अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया अंकित रहती है ।

बीसवीं शताब्दी की नियति और शक्तियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं इस युग का समूचा साहित्य राजनीति से टकराने केलिए बाध्य है । अपने समय के साथ को सही रूप में अभिव्यक्त करने केलिए सबेत साहित्यिक को राजनीति के साथ दुर्निवार संघर्ष करना पड़ा है । समसामयिक राजनीतिक चेतना के विभिन्न पक्ष आधुनिक साहित्य के मूल में देखसकते हैं । हिन्दी कविता में भारतेन्दु युग से लेकर राजनीतिपरक संवेदना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति पाने लगी ।

भारतेन्दु ने सबसे पहले देश की दुर्दशा को साहित्य का विषय बनाया । पराधीनता की कटुवाहट से जनमानस को अवगत कराने तथा उसके विरुद्ध लड़ने केलिए जनता को एकता की डोरी में बांधने का प्रयास उन्होंने किया है । द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों ने अपने युग में व्याप्त राष्ट्रीय भावनाओं को अधिक मुखरित किया है । परवर्ती काव्य में भी इसका स्वर गूंजित है । "जिस राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा को छायावादोत्तर युग की उपलब्धि माना गया है उस विषय की श्रेष्ठ कविताएं तथाकथित राष्ट्रीय कवियों ने नहीं बल्कि नये कवियों ने लिखी हैं ।"[57] नये कवियों ने राजनीति को फैशन के रूप में नहीं स्वीकारा है । प्रगतिवादी साहित्य में जिस सिद्धांत प्रचार को प्रमुखता दी जाती थी वैसी मानसिकता परवर्ती कविताओं में नहीं ।

आधुनिक कवि देश की तथा समाज की दुर्दशा पर असंतुष्ट है । वे आज की राजनीति से घृणा करते हैं । आधुनिक कवि की अपनी राजनीति-परक मानसिकता है जो वर्तमान राजनीति से बिलकुल भिन्न है । वे वर्तमान समाज से अपने को अलग महसूस करते हैं । वे खुल्लम-खुल्ला कहते हैं कि इस

परक दल की आड़ को स्वीकारने में तैयार नहीं । स्वातंत्र्योत्तर भारत के सजग कवि किसी दल में फँसे बिना आम जनता की भलाई चाहते हैं । माथुर का नाम इसी सन्दर्भ में सार्थक है ।

माथुर की काव्य संवेदना में राजनीतिपरक संवेदना का अपना अलग अस्तित्व है । उनकी कतिपय कविताओं में अपने देश की स्थिति तथा उसके नवनिर्माण के प्रति संवेदनात्मक प्रतिक्रिया अनुगुंजित हुई है । तत्सम्बन्धी कविताओं में उनकी सतत जागरूकता और राष्ट्रीयता मिल जाती है । उनमें संकीर्ण राष्ट्रीयता के स्थान पर विश्वबंधुत्व और मानवतावाद का स्वर अधिक है । उनकी राष्ट्रीयता कहीं मातृभूमि के चित्रण में, कहीं देश के नेताओं से दी गयी जागृति के संदेश में, कहीं धरती के प्रति आस्था-प्रेरित अनुराग के अंकन में, कहीं राष्ट्र की आत्मा बने महापुरुष के चित्रण में, कहीं एशिया के जागरण गीत में, कहीं देश के नवयुवकों को उपलब्ध आज़ादी की सुरक्षा केलिए निरंतर चेतावनी देने में स्पष्ट होती है ।

छायावादी कवियों में पंत ने विश्व व्यापी समस्याओं का अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत किया है । उनके बाद नए कवियों में माथुर ही उनके समकक्ष खड़े हो जाते हैं । "एशिया का जागरण" में विदेशी शासन की जंजीरों से बंधे हुए समस्त एशियावासियों में फिर से मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न करने और उनमें नवस्फूर्ति जागृत करने की अदम्य इच्छा व्यंजित है ।

"मेरी छाती पर रखा हुआ
साम्राज्यवाद का रक्त कलश
मेरी धरती पर फैला है
मन्वन्तर बनकर मृत्यु दिवस

तेरी जंजीरों में बंधकर
कंकाल हुई मेरी काया ।[58]

एशिया के समस्त देश नवीन जीवन की मशाल लेकर आगे बढ़े हैं ।

"ये परम पुरातन महादेश
आये मशाल लेकर नवीन
जब, चीन, मलय नव हिन्द चीन
ब्रह्मा, भारत दृढ़ फिलिस्तीन ।[59]

वर्षों से शोषित हुए तथा त्रस्त एशिया वासियों में पुनः आशा का संचार हुआ और उनमें मुक्ति की कामना बलवती हो गयी । मिट्टी का प्रत्येक कण नव स्फूर्ति से संचालित होकर आगे बढ़ा ।

मुड़ गये समय के चपल चरण
आया क्रान्ति बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कण सुलग उठा
जल उठी एशिया की मशाल ।[60]

"नई भारती" में माथुर ने पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्रों के बीच की द्वेष भावना केलिए समाधान प्रस्तुत किया है ।

"चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर में है बांध डाला ।[61]

माथुर की 'पन्द्रह अगस्त' राजनीतिपरक संवेदना से संपृक्त कविता है । इसमें कवि ने स्वतंत्रता प्राप्ति के आनन्द-पर्व का वर्णन न कर जनता के दायित्व-बोध पर बल दिया है ।

"विषम शृंखलाएं टूटी हैं
खुलीं समस्त दिशाएं
** * **
दीप्तिमान रहना
प्रहरुए, सावधान रहना
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है ।[62]"

सुप्रसिद्ध आलोचक नामवरसिंह ने इस कविता को राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त की "स्वत्व वन्दना" और प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत की अगस्त 15,1947 शीर्षक कविताओं से श्रेष्ठ माना है।[63] इसमें जो संवेदनात्मक प्रतिक्रिया हुई है वह वास्तव में यथार्थबोध से जुड़ी हुई है । नवनिर्माण तथा भविष्य के प्रति आस्थावान कवि की सावधानी इसमें स्पष्ट होती है ।

माथुर ने विदेशी शासन के अत्याचार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करनेवालों को प्रेरित किया है । "धर्म का चिराग:" जनमानस में राष्ट्रीय चेतना जगाने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने दृढ रहने की शक्ति प्रदान करने में सक्षम है ।

"चमका शमशीर उठी जनता
बजता परबत का नक्कारा

नदियाँ कितनी बन उतर चढ़ीं
हो गया लाल ध्रुव का तारा
धरती के यह वन-फूल उठे बनकर मशाल
हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल।"[64]

माथुर ने उन महान व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है जिन्होंने भारत की उन्नति में अपना जीवन कुरबान किया है। माथुर की "सायंकाल"और"चरित्र केसर" नामक कविताएं गांधीजी से सम्बन्धित है। पहली कविता उनके निधन पर रचित है और दूसरी कविता "गांधी दिवस" पर प्रणीत है।

वर्षों से मानवता पापों की जंजीरों में कसी हुई थी। रक्तपिपासु मानव के अत्याचारों से बुद्ध, ईसा आदि महापुरुष भी नहीं बच पाए। किन्तु गांधीजी ने अपने हृदय परिवर्तन सिद्धान्त द्वारा धरती के माथे पर लगी लकीर को पोंछ दिया। उन्होंने अहिंसा का पाठ पढ़ाया और संयोग की भावना को प्रोत्साहन दिया।

"मानवता पर कसी युगों से
पापों की जंजीर
ईसा, बुद्ध बड़े महावीर
थी जिंदी रक्त लकीर
तुमने धरती के माथे से
पोंछी रक्त लकीर।"[65]

माथुर गांधीजी के विचारों से अवश्य प्रभावित है। उन्होंने पशुता के स्थान पर मानवता की प्रतिष्ठा की। घृणा और विद्वेष के स्थान पर उन्होंने ऐसे श्रेष्ठ भावों के बीज बोये जिनसे इन्सान स्वयं ईश्वर बन सकता है, एक श्रेष्ठ मानव बन सकता है।

माथुर ने आज के मानव के दुहरे व्यक्तित्व को दूर करके संशय, भय आदि का उन्मूलन करने की अभिलाषा प्रकट की है । मानवीय मूल्यों में आस्था बढ़ाना उनका लक्ष्य है । अतः कवि उसमें नया ताप नयी तपन भरने की कोशिश में है ।

"दुहरे व्यक्तित्वों के
चेहरे का बरमलास
:: : ::
इन्सानी मूल्यों के ठाम सोम-सार नए
जीवन को फिर विराट गीत का अलाप दो
अग्नि दो, तपन दो, नया ताप दो[66]।"

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि देश की समसामयिक परिस्थितियों को जानने पहचानने तथा उस पर मनन-चिन्तन करने की माथुर की क्षमता अद्वितीय है । समान विषयों पर लिखी गयी उनकी कविताओं में भी उनकी राजनीतिक सजगता, नवीनता तथा अभिव्यक्ति कुशलता के विभिन्न आयाम खुल जाते हैं ।

4. सांस्कृतिक और इतिहासपरक संवेदनाएं

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चरित्रों और प्रसंगों को आधुनिक सन्दर्भ में परखना आधुनिक कविता की प्रमुख विशेषता है । सांस्कृतिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों को नए अर्थ प्रदान करके युगानुकूल बनाने का प्रयत्न माथुर ने किया है । उन्होंने भारतीय संस्कृति को तथा कबीर, बुद्ध, राम जैसे युग पुरुषों को काव्य-विषय बनाया है ।

आज के प्रजातांत्रिक युग में धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की भावना पर बल देते हुए माथुर ने कबीर का समर्थन किया है । कबीर ने अपने पदों, साखियों द्वारा हिन्दु-मुस्लिम सभ्यताओं के भिन्न छोरों को मिलाने और भावात्मक एकता स्थापित करने का अथक परिश्रम किया है । माथुर ने कबीर के उन श्रेष्ठ आदर्शों को "कबीर" शीर्षक ~~निहित किया है/x~~ कविता में चित्रित किया है ।

"उलटते हैं एक क्षण में तख्त-ताउसी कतारों,
किन्तु गीतों साखियों के कारवाँ ये,
चल रहे हैं युगान्तर से
दूर की दो सभ्यताओं के भिन्न छोर छाते
ओ महागायक तुम्हारे बंधि स्वर में
मिल गए थे, रागमय हो
एक सुन्दर बिन्दु की सीमा-किनारे,
दूर के मधुर-संकर ।"[67]

"बुद्ध" शीर्षक कविता में माथुर ने युद्ध के प्रति अपनी नकारात्मक मानसिकता प्रकट करते हुए प्रेम और सत्य का समर्थन किया है । आधुनिक मानव को संघर्ष, क्रान्ति, पारस्परिक द्वेष तथा तनाव से छुटकारा पाने केलिए प्रेम और अहिंसा के माध्यम से शांति की स्थापना ही एक मात्र उपाय है । इस सन्दर्भ में माथुर बुद्ध और उनके आदर्शों पर बल देते हैं । तलवार की शक्ति से नहीं प्रेम के बल से जनमानस पर विजय पाने की अदम्य अभिलाषा माथुर की कविता की मूल चेतना है ।

"नहीं रहे वे महाबली अब,
वे कनिष्क से, शिलादित्य से नम हज़ारों
किन्तु तक्षशिला साँची सारनाथ के मंदिर
और ज्योतिः स्तम्भ धर्म के बोल रहे हैं

जिसे तोड़ने को, कुसठों की तलवारें
वहाँ विजय, जय हुई प्यार की एक बूंद से।[68]"

आधुनिक युग के वैज्ञानिक चमत्कारों को अन्तरीक्ष विजय की नयी सम्भावनाओं को और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने केलिए कवि ने "पृथ्वीकल्प" के रूप में अत्यन्त साहसिक कार्य किया।[69]

"धरती की सुन्दरतम / सृष्टि इनसान है
मानव की पराजा ही / युद्ध लिप्सा शैतान है
इस ही शैतान पर / जीत इनसान की
पृथ्वी कथा है
इतिहास की कहानी।[70]"

माथुर ने अपनी कतिपय कविताओं में इतिहास का पुन: मूल्यांकन किया है। इनमें इतिहास सत्य के साथ ही साथ आधुनिक युगबोध भी उजागर होता है। "इतिहास का हंस" क्रूरता, बर्बरता से भरे इस आततायी युग को प्रगतिशील संस्कृति का सार्थवाह कहा है। जय पराजय के नियमों को कवि ने इतिहास के आदिम न्याय के रूप में स्वीकारा है। इतिहास ने हमेशा विजयी को शिव तथा पराजित को अशिव दिखाया है। "इतिहास:एक आदिम न्याय" में इतिहास पर सन्देह प्रकट करते हुए माथुर ने कहा जो मिट गया क्या वह असत्य था और जो वर्तमान है चाहे चाहे क्रूर हो चाहे आततायी हो क्या वह सत्य ही रहेगा ? जय पराजय क्षणिक उपलब्धि है। इसे मानदण्ड मानना उचित नहीं।

जो मिट गया क्या वह असत् था
अशेष ही क्या सत्य है

क्या सही वह जो जीतता
जो हार जाता अशिव है
यह जय पराजय का नियम है
हाय आदिम न्याय का ।"[71]

आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों ने एक ओर मानव को सुख संपन्न बनाया और दूसरी ओर उसके विनाश की तैयारी भी कर ली । आज व्यक्ति दूसरे के खून के लिए प्यासा है । प्राचीन आदर्श विलुप्त हो गया । ऐसे तिमिराच्छन्न काल में वैज्ञानिक यंत्रों के लौह पाश में जकड़े आधुनिक मानव को उस सत्य की ओर ध्यान दिया गया है कि दानवता से मानवता सदैव विजयी रही है ।

"तब मुझे इस यंत्र काल में
आज कोटि युग की दूरी से यादें आतीं
शंभु चाप से अविच्छिन्न इतिहास पुराने
और वज्र विद्युत से पूरित अग्नि नयन से ।"[72]

"वैशाली" तथा "धरादीप" में माथुर ने परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को नवीन अर्थ प्रदान करके युग जीवन के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है ।

"संस्कृति की ज्योति जली
युग युग में इस प्रकार
सामाजिक यत्नों से
अंधकार गया हार
x x x
जब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझाई

राम, कृष्ण, गौतम औ,
गांधी बन उठ आई ।[73]"

"सार्थकाम" में पशुता के ऊपर मानवता की विजय की घोषणा की गयी है ।

थकी ज्योति का तिमिर ग्रसित
संघर्ष हुआ गतिवान
इतिहासों के अंधकार से
उठ आया इन्सान
हार गई आस्था पर आकर
पशुता की चट्टान
कष्टों से थकित मानवता
उठी बनी हिमवान ।"

आज इन्सान अपने अधिकार और दायित्वों के प्रति जागरूक है । दिन प्रतिदिन वह अधिक जागरूक होता जा रहा है । आज इन्सान अपने को ईश्वर समझता है ।

तू बोये जो भी भाव बीज
वे सदियों तक उगते जाएं
दु:ख के दानव ग्रह बुझे सकल
सामाजिक ज्वाला राख बने
इंसान बने खुद ही ईश्वर
मानवता उजला पाख बने ।[75]

"इतिहास एक कथा" में इतिहास को अन्धा, बहरा गूंगा लंगड़ा, कथा कहा है ।

नकली खिलौना हाथ
तर्क वाद सब अनाथ
शिशु के बहलावे से
मनगढ़ विश्वास पास
बचकना हर प्रयास
इतिहास कथा है[76] ।

आज की दुनिया में सत्य का कोई अस्तित्व नहीं । "सत्य की विजय होती है" वाली उक्ति पुरानी पड़ गयी है । आज सत्य वही है जिसकी विजय होती है इतिहास विकृत सत्य में इसकी सही अभिव्यक्ति हुई है -

होती विजय सत्य की
यही पुरानी परिभाषा है
जो विजयी हो जाय
आज वही सत्य है[77] ।

"अनश्वर सत्य का अपराध एक स्वप्न में एक स्वप्न चित्रित करते हुए माथुर ने लिखा कि वह अंधकार से बन्द दुनिया में है । वह ऐसे दण्ड भोग रहा है जिसकेलिए वह अपराधी नहीं रहा है । यह दुनिया अंधे कूपों से भरा हुआ है । उसमें गिरने केलिए वह अभिशप्त है ।

उन अपराधों केलिए
जो मैंने नहीं किए

मैं सदियों से इस दीवार पर बैठा हूं
वह इतिहास मेरा है
पर आस पास हत्यारे कूप हैं
जिनमें मैं सिर्फ गिर सकता हूं
धुप्प अंधेरेवाली एक अंधी बन्द दुनिया है
जो मैंने न रची थी
न मांगी थी
वह दुनिया मेरी है।"[78]

इस प्रकार माथुर ने इतिहास और संस्कृति के बेम-सम्बन्धों का युगानुकूल अर्थ गर्भित चित्रण किया है। परम्परा का निषेध आधुनिकता का लक्षण नहीं पर परंपरा का पुनर्मूल्यांकन ही सही आधुनिकता है। इस दृष्टि से माथुर ने इतिहास और संस्कृति के माध्यम से नई संवेदना को संप्रेषित करने का सफल प्रयत्न किया है।

5. प्रकृतिपरक संवेदना

प्रकृति क्या है ? प्रकृति से अलग मानव हृदय जगत नहीं। वह मनुष्य का ही प्रतिरूप है। उसमें उसके परिवेश और संस्कृति का भी अस्तित्व है। "साधारण बोलचाल में प्रकृति मानव का प्रतिरूप है अर्थात् मानवेतर ही प्रकृति है - वह संपूर्ण परिवेश जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है, और संस्कार ग्रहण करता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है जो कि दृष्टिगोचर है - जिसे हम देख सुन और छू सकते हैं।"[79]

मानव प्रकृति-पुत्र है। वह प्रकृति की सर्वोच्च सृष्टि है। अतः प्रकृति के अणु अणु से उसका घनिष्ठ संबन्ध सहज और स्वाभाविक बन

जाता है । "मानव स्वयं भी प्रकृति के अंतर्संघर्ष का परिणाम है, वह प्रकृति से ही पैदा हुआ है और प्रकृति का सर्वोत्तम विकास है । इसलिए मानव का अस्तित्व में आना ही प्रकृति पराविजय है ।"[80] प्रकृति पुत्र होने के नाते वह भावुक तथा सौन्दर्य प्रेमी भी । किन्तु कवि सामान्य मानव नहीं विशेष है । वह ज्यादा भावुक और सौन्दर्यप्रेमी होता है । अत: प्रकृति के चिरंतन सौन्दर्य के अक्षय भण्डार पर मुग्ध हो जाता है । कविता का मूलाधार एवं उसकी प्रेरक शक्ति यही प्रकृति ही है । अत: साहित्य में इसका माननीय स्थान है ।

प्रत्येक युग के कवि ने अपने संस्कारों के अनुरूप प्रकृति को साक्षात्कृत किया है । आधुनिक कवि केलिए प्रकृति अपने अनुकूल मन के अभिन्न अंग है । इस दृष्टि से माथुर का नाम उल्लेखनीय है । प्रकृति उनकेलिए वस्तु तत्व है । सिर्फ रोमांटिक भावावेश के साथ वे प्रकृति का साक्षात्कार नहीं कर पाते । कवि प्रकृति परक अनुभूतियों को अपने व्यक्तित्व में समाहित कर लेता है । अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रिया के रूप में अपनी अनुभूति प्रस्फुटित हो जाती है । युगीन मांग के अनुरूप प्रकृति परक मानसिकता में भी परिवर्तित होता ही रहता है । "प्रकृति चित्रण मात्र रचना प्रक्रिया का माध्यम ही नहीं, अपितु संवेदना को परिभाषित करने का युगीन मुहावरों को पहचानने का माध्यम भी है ।"[81]

युग विशेष की प्रकृति सम्बन्धी परिकल्पना को तद्युगीन काव्य-कलाओं के माध्यम से ही जाना जा सकता है । इसलिए विभिन्न देशों और युगों के काव्य तथा कलाओं में प्रकृति के प्रतिभिन्न दृष्टिकोण बरतते दिखाई पड़ते हैं । अत: काव्य संवेदना के अध्ययन के दौरान प्रकृतिपरक संवेदना का विश्लेषण अनिवार्य है, खासकर नव स्वच्छन्दतावादी कवि माथुर के सन्दर्भ में । माथुर की कविताओं में प्रकृतिपरक संवेदना के भिन्न रूप पाये जाते हैं -

1· प्रकृति : आलम्बन रूप में

2· प्रकृति : उद्दीपन रूप में

3· प्रकृति : मानवीकरण रूप में

4· प्रकृति : पृष्ठभूमि रूप में

5· प्रकृति : उपदेशात्मक रूप में

1· प्रकृति : आलम्बन रूप में

आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण करते वक्त प्रकृति साधन न बनकर साध्य बन जाती है । कवि अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब ग्रहण पर अधिक ज़ोर देता है तथा अपनी पैनी दृष्टि द्वाराप्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों के प्रति आकृष्ट होकर प्रकृति का शब्द चित्र अंकित करते हैं । माथुर की 'ढाकवनी' शीर्षक कविता में प्रकृति का प्रकृत रूप मिलता है ।

"सनसनाती साँझ सूनी ।
वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खाड़ी पर
झांझ सा बीहड़ झनकता ।"[82]

"शाम की धूप" में माथुर ने प्रकृति का ज्यों का त्यों का वर्णन किया है ।

"कल पड़ी तेज़ हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रास्ता ।"[83]

कोयल का श्यामल स्वर, भीगी अमराई साँवली बदलियों का उठता हुआ घूंघट पट, वर्षा से भीगी अलकों तथा उनसे गिरता पानी आदि का मूर्त चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में खींचा गया है ।

कोयल सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल भर
सुरमिली आंखों को ढांक रही श्याम अलक
साँवली बदलियों का उठता सा घूंघट-पट
×× ×× ×× ××
आई बदमास आज
गीली अलकों से नीर बूंद चुआती हुई ।"[84]

"आज शरद की पूरनमासी" में शरद्पूर्णिमा का चित्रांकन हुआ है । नीले आसमान में चांद खिल रहा है, श्वेत चांदनी चारों ओर बिखरी हुई, ओसकण मोतियों की भाँति दिखाई पड़ता है । इन सबके साथ परिवेश अत्यधिक सुन्दर हो जाता है ।

आज शरद की पूरनमासी
लिए गुलाब ठण्डक कैसी
श्वेत चांदनी धुली उजार में
ओस कनी सी हंसी छिली है
मोती के इस राजद्वार में ।[85]

कवि ने पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर के अद्भुत सौन्दर्य का चित्रण यथावत् किया है ।

"यह कमल धरा का बरफीला
यह नील कटोरा चमकीला
x x x x x
केसर की लाई से पीला
लालिम चिनार के पेड़
x x x x x
है स्वर्ग एक कल्पना
सत्य है काश्मीर ।[86]"

"एक टुकड़ा चाँद" में काले चितकबरे बादलों में से निकले चाँद का अनुपम दृश्यांकन किया है -

"काले चितकबरे धूम धौरे बादलों में से
निकल रहा गीला चाँद
सावन की पूनो का
अभी अभी वर्ष का
x x x
पर डूबा मेघों में
क्या फिर से निकलेगा ।[87]"

कवि ने प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को मूर्त बनाने का सफल प्रयास किया है । प्रकृति के प्रति विशेष लगाव और उसके सौन्दर्य के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की अद्भुत शक्ति कवि के इन चित्रणों से स्पष्ट हो जाती है ।

प्रकृति : उद्दीपन रूप में

उद्दीपन रूप में प्रकृति कवि के मूल भावों का आलम्बन न होकर नायक - नायिका के हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने में सहायक होती है । आलम्बन यदि रस का आधार है तो उद्दीपन रस का उत्पादक । शृंगार रस में तीव्रता तथा स्वाभाविकता लाने केलिए उद्दीपन का विशेष महत्व है । प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से माथुर ने वियोगावस्था की अतीत स्मृतियों का चित्रण किया है । इससे शृंगाररस में तीव्रता और स्वाभाविकता आ जाती है । मेघोंवाली नीली बिजली, झींगुरों की गुंजार, धुंधला सुनापन लहरियोंदार हवा आदि प्राकृतिक उपादान मानव मन की रोमानी भावनाओं की उद्दीप्ति में सहायक सिद्ध हुए है -

'नीली बिजली मेघोंवाली
झींगुर की गुंजार
धुंधला साँवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
धन कुण्ठन सुधबन्धन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी ।'[88]

प्रकृति उद्दीपन के प्रसंग में 'नदी पहचान' विशेष उल्लेखनीय है । इसमें ऐसी रात की सौन्दर्य छवि अंकित है जिसमें चाँदनी छिटकी हुई है । चाँद का प्रतिबिम्ब नदी में पड़ने के कारण उसका जल दुधिया रंग का हो गया है । शीतल मन्द-सुगन्धित पवन वातावरण को अधिकाधिक मोहक और मदमस्त बनाता है । कवि ने ऐसे स्निग्ध सुगन्धे वातावरण को मूर्तता प्रदान की है ।

"चाँदनी रात है
वन गंध है पहाड़ों पर
चाँद को
रूप वाली झील है निहार रही
आ रही मन्द
चमेली-सनी बारीक हवा
मन बदन के
सभी परदे उठा, उतार रही
नदी दूध भाग
अछूती जगह
सलोनी रात।"[89]

'खटमिट्ठी चाँदनी' में खटमिट्ठी चाँदनी जीवन में अनेक सुख सुविधाएं लेकर आई है।

"कितना सुख पाया है
तुमसे ओ चाँदनी
x x   x   x x
भर दी है जीवन में
कितनी प्रिय स्वादमयी
सोंधी मीठी सलोनी
खटमिट्ठी चाँदनी।"[90]

'नया वसंत' में माथुर का प्रकृति-बोध रोमानी रंगों से रंजित है। वसन्त-रात का दृश्यांकन कवि के रोमांटिक भावों को अवश्य उद्दीप्त करता है।

"अब वसंत के प्रथम दिनों की
मंद चाँदनी रात खिल गई
चोरी चोरी खिले चमेली के फूलों सी
::　　　::　　　::　　　::
खुली दिशाएं रोमानी रंगों में डूबी
भीगी सुन्दर बाँहों सी झुलती है रातें
हल्का चीर हवाओं के सीने पर सिमटा
मोर पंख, जैसा यह हल्का मौसम आया ।"[91]

प्रकृति : मानवीकरण के रूप में

कवि प्रकृति में मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं का आरोप करके उसमें चेतना का संचार करता है । इससे प्रकृति के जड़ पदार्थों में भी सजीवता आ जाती है । सौन्दर्य-चेता माथुर ने अपनी कविताओं में कहीं कहीं प्रकृति का मानवीकरण किया है ।

प्रकृति मानवीकरण के प्रसंग में माथुर की कविता "आषाढ़ की रात" विशेष उल्लेखनीय है । इसमें रात के सन्नाटे को, नगर की खामोशी को सुख की गहरी नींद में लीन बालक के रूप में चित्रित किया गया है ।

"छोटा सा यह नगर सो रहा
ठण्डे गात लिए गोरे बालक सा
सुख की गहरी नींदों में ।"[92]

"रूप विभ्रमा चाँदनी" में चाँदनी एक आधुनिक नारी बन गई है । वह आधुनिक नारी की भाँति इकहरे बदन की है । स्लीवलेस ब्लाउज

पहनी हुई है। मुँह में इलायची चबाती हुई मन्द मन्द कदम रखती हुई बेफिक्र मस्ती से जा रही है।

"स्लीवलेस ब्लाउज़ पहने
छरहरी चाँदनी
पेड़ों की चमकदार जालियों तले
बेफिक्र मस्ती से
हल्के कदम रख चलती
मुँह में मन्द मन्द इलायची चबाती।"[93]

"शरद् निशारिका का देह स्वप्न" में लता को नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

हरीतिमा की किरण सी लता
लहरदार कटि
झुकी काँपती सी
हथेली नरम
बुंदकियोंदार मेंहदी लगा
पाँव में
माँस का आलता।"[94]

"चाँदनी गरबा" में चाँदनी चंचल नैनोंवाली नारी है जो उभरे रोएँ छुवा गई है।

<u>प्रकृति : पृष्ठभूमि रूप में</u>

प्रकृति कभी कभी मानवीय भावनाओं तथा कार्यकलापों की पृष्ठभूमि बन जाती है। इसमें प्रकृति आनेवाली घटना या भावविशेष केलिए

अनुकूल भूमिका अदा करती है । माथुर ने अनेक कविताओं में भाव को व्यंजित करने के पूर्व उसके परिवेश को संपूर्णता के साथ स्थापित किया है । "गिरिजाकुमार माथुर ने व्यापक पृष्ठभूमि के रूप में विस्तृत भूखण्ड का चित्रण किया है जिसमें उनकी छायावादी प्रवृत्ति स्पष्टत: दृष्टिगत होती है ।[95]"

"चन्द्रखण्डों की आत्मा" विशेष उल्लेखनीय है । इसमें कवि अपने कुंठित व्यक्तित्व बोध के संप्रेषण के लिए चन्द्रमा की मद्धिम रोशनी और फटे बादलों को पृष्ठभूमि के रूप में माथुर ने स्वीकारा है ।

"मद्धिम चन्द्रमा
फटे बादल
: : :
छिपती, दिपती मद्धिम पड़ती
धुंधली, पूरी, फिर कटी फांक
यह मैं
मेरा व्यक्तित्वबोध ।[96]"

"कुसुम के खण्डहर" में कवि ने ध्वस्त राजमहलों, पत्थर के ढेर बने मंदिरों के चित्र खींचने के पहले ही परिवेश का चित्रण किया है ।

"सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान
झाड़ी-झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में
सूखे पतझर भरे जंगल के टीलों पर
कांपकर बहती समीर हेमंत की ।[97]"

मिलन क्षण की अनुभूति को संप्रेषित करने के दौरान सूनी रात को पृष्ठभूमि बनाया गया है। इसमें सिमटा कोहरा चाँद कटोर की सिकुड़ी कोरों के माध्यम से चाँदनी पीने के परिप्रेक्ष्य में मिलन चित्रण हुआ है।

"सूनी अँधी रात
चाँद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मंद चाँदनी पीता सम्या कुहरा।"[98]

"नया वसंत" में वसंत का मौसम मोरपंखी की तरह हल्का लग रहा है। क्योंकि वसंत में दिशाएं रोमानी रंगों में डूबी हुई हैं। रात सुन्दर मंगी बाहों के और मन कोमल गुलाबी रुई के समान बन गया है।

"अब वसंत के प्रथम दिनों की
मंद चाँदनी रात खिला गई
चोरी चोरी खिले चमेली के फूलों सी
:: :: :: ::
डूबी दिशाएं रोमानी रंगों में डूबी
मंगी सुन्दर बाँहों सी झूलती है रातें
हल्का धीर हवाएं के सीने पर सिमटा
मोर पंख जैसा यह हल्का मौसम आया।"[99]

आस्थावान कवि माथुर ने कहीं कहीं भविष्य के प्रति सन्देह पूर्ण दृष्टि डाला है। ऐसे सन्दर्भ में भी कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाया है

"आज दिखता है दही सा चाँद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद ही कल
उठे उजली धूल बनकर चाँदनी भी

आत्मभूती मूर्ति सी हो आयु उज्ज्वल
इसलिए हेमन्त की
यह मन्द ठिठुरन
तन भुवन से
उष्म तुम कर दो रसीली ।[100]

"चन्द्रिमा" में कवि ने प्राकृतिक परिवेश का निरूपण किया है । प्रेयसी के गोल पूनम के चेहरे से अधिक प्रभाव चन्द्रिमा का है । क्योंकि चन्द्रमा और उसकी चाँदनी जैसी थी वैसी आज भी वर्तमान है । किन्तु प्रेयसी का गोल पूनम सा मुख बरसों पुरानी याद बन कर रह गया है ।

प्रकृति उपदेशात्मक रूप में

प्रकृति के अनेक कार्य-कलापों की व्यस्तता देखकर मनुष्य उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है । ऐसे प्रकृति-रूपों को कवि अपने उपदेश का माध्यम बनाता है । माथुर ने प्राकृतिक उपादानों के ज़रिये कहीं कहीं उपदेश कथन भी दिया है ।

आज इंसान हो गया है खेद
पर न मन हार मान सकता है
क्योंकि विषम की इस वेला में
यह थकी, अनमनी सुनहरी धूप
दिन के संघर्ष से जो तप तप कर
उससे सोने सी निखर आई है ।[101]

एक और स्थान पर माथुर ने मनुज को उपदेश देने केलिए पौधे को माध्यम बनाया है ।

"यह पौधा
अपने ही पत्तों में लिपटा
धूप हवा लेता अपने में मग्न है
यह बेल पसारती-सहज है
सुख के धरातल पर ।"[102]

माथुर की कविता में अपने देश के प्रकृति सौन्दर्य के साथ ही साथ विदेशी प्रकृति सौन्दर्य का भी अंकन हुआ है । "न्यूयार्क की एक शाम" "मैन हैटन" "न्यूयार्क में फाल", "सिम्फ्लाट की रात" जैसी कविताएं इस दृष्टि से बेजोड़ हैं । वहां के रोमानी ऋतु, क्षण, नृत्य विलास से कवि का शरीर रोमांचित हो उठा है ।

"स्याह सिंधु की इस रेखा पर
है झिलमिल की तिलस्मी
x x x x x
क्षण, विलास, मद, नृत्य केलि, रस
ऋतु रोमानी तन रोमांचित ।"[103]

यद्यपि विदेशी वातावरण से माथुर रोमांचित हो उठे हैं तथापि भारत की मिट्टी तथा शरद की चांदनी की दूरी से उनके तन और मन सूने हो गये हैं ।

"सब कुछ दूर
मिट्टी का परस भी दूर
शरद की चांदनी भी दूर
बहुत भारी बहुत भूरे
तन मन हो रहे सूने ।"[104]

स्पष्ट है कि प्रयोगवादी नयी कविता के संस्कारों से सम्पन्न माथुर के प्रकृति चित्रण में आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, पृष्ठभूमि, उपदेशात्मक आदि के रूप विद्यमान हैं। उनके प्रकृति चित्रण में न तो द्विवेदीयुगीन कविताओं की इतिवृत्तात्मकता होती है न छायावादी कविता की सी रंगीन रंगिनी होती है। उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में प्रकृति के साथ ही साथ आज के उलझे हुए यान्त्रिक जीवन का चित्रण द्रष्टव्य है। उन्होंने भारतीय प्रकृति सौन्दर्य के साथ ही साथ विदेशी प्रकृति सौन्दर्य को भी उनकी कविताओं में उतारा है। परम्पराओं को पकड़ने के साथ नवीनता की झलक उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं की प्रमुख विशेषता है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि गिरिजाकुमार माथुर की काव्य संवेदना बहुआयामी है। उसके अन्तर्गत व्यक्तिपरक, समाजपरक, राजनीतिपरक संस्कृति और इतिहासपरक, प्रकृतिपरक आदि रूप वर्तमान हैं। उनकी काव्य-संवेदना में संकोच नहीं, विस्तार है।

संदर्भ

1. अज्ञेय - हिन्दी साहित्य आधुनिक परिदृश्य - पृ.17
2. डॉ. देवीप्रसाद गुप्त - साहित्य सिद्धान्त और समालोचना - पृ.22
3. मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र - पृ.55
4. वही - पृ.14
5. sensibility alters from generation to generation in every one - F.R. Leavis - New Bearings in English poetry,p.221
6. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ.278
7. लक्ष्मीकांत वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान - पृ.48
8. मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - पृ.16
9. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.42

10. रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्याएं, पृ.151
11. सं.अज्ञेय - तारसप्तक, पृ.275
12. इन्द्रनाथ मदान - आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन, पृ.333
13. नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ.129
14. सं.अज्ञेय - दूसरा सप्तक, पृ.9
15. रवीन्द्र भ्रमर - हिन्दी के आधुनिक कवि : व्यक्तित्व और कृतित्व,पृ.240
16. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.59
17. वही - पृ.66
18. नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर, पृ.28
19. गिरिजाकुमार माथुर - नाशऔर निर्माण, पृ.62
20. वही - पृ.58
21. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.123
22. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.53
23. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.122
24. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.57
25. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.51
26. सुमित्रानंदन पंत - पल्लविनी, पृ.131
27. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ.6
28. गिरिजाकुमारमाथुर - नाश और निर्माण, पृ.12
29. गिरिजाकुमारमाथुर - नाश और निर्माण, पृ. 63
30. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ.56
31. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.7
32. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.78
33. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.118
34. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ.71
35. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.40

36· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·42
37· सं· अज्ञेय - तारसप्तक - मुक्तिबोध का वक्तव्य, पृ·36
38· रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ·39
39· सं· अज्ञेय तारसप्तक - नेमीचन्द्र जैन का वक्तव्य, पृ·52
40· नगेन्द्र तथा कैलाशवाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर, पृ·30
41· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·93
42· गिरिजाकुमार माथुर - नाशऔर निर्माण, पृ·94
43· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·47
44· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·22, 23
45· वही - पृ·71-72
46· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·116
47· वही - पृ·127
48· गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ·47
49· आलबेर कामू - दि रिबेल, पृ·22
50· गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ·85
51· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·56
52· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·67-68
53· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·105
54· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·60
55· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·37
56· आलोचना, राजकुमार शर्मा , अंक 36, पृ·174
57· नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, पृ·65
58· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·26
59· वही - पृ·24
60· वही - पृ·32

61. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.18
62. वही - पृ.55-56
63. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान, पृ.66
64. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.65
65. वही - पृ.60-61
66. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.85
67. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.107-108
68. वही - पृ.114
69. डॉ. नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ.233
70. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.134
71. गिरिजाकुमार माथुर - जो बन्ध नहीं सका, पृ.14
72. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.128
73. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.162-163
74. वही - पृ.61-62
75. वही - पृ.131
76. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.17
77. वही - पृ.18
78. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.
79. अज्ञेय - रूपाम्बरा, वक्तव्य, पृ.2
80. नामवर सिंह - छायावाद - पृ.33
81. रघुवंश - प्रकृति और काव्य - पृ.385
82. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.111
83. वही - पृ.43
84. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ.32
85. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ.49
86. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.64
87. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.79

88· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·125

89· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ·14

90· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·73

91· वही - पृ·131

92· वही - पृ· 73

93· गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ·55

94· वही - पृ·73

95· विजयकुमारी - गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में, पृ·151

96· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·41

97· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·53

98· वही, पृ·55

99· वही, पृ·131

100· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·128

101· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·47

102· गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ·29

103· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·78-79

104· वही, पृ·88

छठवाँ अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर का शिल्प

1. बिम्ब और प्रतीक

छठवाँ अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर का शिल्प

1. बिम्ब और प्रतीक

शिल्प

काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प कहे जाते हैं । शिल्प अंग्रेजी के "टेकनीक" शब्द का समानार्थी है । टेकनीक का अर्थ है ढंग, विधान, तरीका । कवि का उद्देश्य अपने अनुभूत सत्य को संप्रेषित करना याने व्यापक सत्य बनाना है । इस लक्ष्य के साक्षात्कार में शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान है । कवि के आत्मगत अमूर्त सत्य को मूर्त बनाने की क्षमता शिल्प में है । अतः अनुभूति के समान शिल्प का भी महत्व असंदिग्ध है । इसके सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने यों कहा है, "काव्य-शिल्प वस्तुतः काव्य-चिन्तन का प्रयोगात्मक पक्ष है जिसमें काव्य-सामग्री के विनियोजन एवं प्रयोग की सूक्ष्म संवेदनाओंका विशेष मूल्य होता है[1] ।"

संवेदना और शिल्प

काव्य में संवेदना और शिल्प का पारस्परिक सम्बन्ध होता है। कोई भी अमूर्त संवेदना शिल्प के द्वारा ही मूर्त रूप धारण कर लेती है और कोई भी जीवंत शिल्प सशक्त और गहरी संवेदना की पीठिका पर ही जन्म ले सकता है। शिल्प की सार्थकता तभी संभव होती है जब अमूर्त संवेदना का सफल मूर्तिकरण होता है। सभी कलाकारों के सन्दर्भ में अनुभूति और लक्ष्य मुख्य तत्व है। "कवि अपनी कविताओं में, शिल्पी अपनी मूर्तियों में, चित्रकार अपने चित्रों में अनुभूति की सार्थकता पाता है। चित्रकार की दृष्टि में निस्सन्देह एक अनुभूति होती है जिसे वह अपनी रेखाओं और विभिन्न रंगों के अनुपातिक संयोग से अभिव्यक्त करता है, अमूर्त अनुभूति को मूर्त करता है।"[2] जाहिर है कि प्रत्येक कलाकार अपने अपने माध्यमों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति के लिए क्रियारत है। दूसरे शब्दों में अपनी अमूर्त भावना को मूर्त करने के लिए सृजनारत बन जाता है।

शिल्प और व्यक्तित्व

शिल्प कवि के व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है। क्योंकि रचना में निहित सत्य और सौन्दर्य उसके आस्था से सम्बद्ध है। उसका बाह्य रूप अथवा उसका आकार प्रकार रचना के शिल्पपक्ष को उद्घाटित करता है। किसी पूर्व निश्चित रूपरेखा के अनुसार कोई भी सृजनात्मक प्रतिभा रचनाकर्म में प्रवृत्त नहीं होती। अनुभूति जब उसके मन को अभिव्यक्ति के लिए विवश करता है तब उसके मस्तिष्क में आजाने ही शिल्प भी तैयार हो जाता है। "कलाकार किसी पूर्वनिश्चित रूपरेखा के तथ्यगत आधार पर अपनी रचना भले न करे, फिर भी उसके मस्तिष्क में समस्त उपादानों द्वारा निर्मित काव्य का

एक झिलमिल ढाँचा अवश्य रहता है । शिल्पविधि के इन्द्रियजाल तथा विविध सभी उपकरणों द्वारा अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की दौड़ में यह कार्य अपने आप संपन्न होता है[3] ।"

कलाकार जानबूझकर शिल्प का गढ़न नहीं करता वास्तव में सृष्टा के कथ्य के साथ मिला हुआ रहता है । इसलिए कथ्य के समान शिल्प में भी कलाकार के व्यक्तित्व की छाप अवश्य पड़ जाती है । "शिल्प का विकास कवि के व्यक्तित्व से अटूट रूप से जुड़ा हुआ है और उस शिल्प में व्यक्तित्व की क्षमता और सीमा-भाव, सामर्थ्य और कमजोरी, ज्ञान और भ्रम सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है[4] ।" स्पष्ट है, कवि या साहित्यकार की रचना में कल्पना, स्मृति, संस्कार, सौन्दर्यप्रियता सभी का समवेत प्रयास मिलता है । यह भी नहीं इन सब में प्रत्येक साहित्यकार की व्यक्तिपरक मानसिकता अवश्य झलकती है ।

<u>शिल्प में बदलाव</u>

बदलते हुए युगीन परिवेश के साथ ही साथ काव्य संवेदना में भी परिवर्तन संभव है । काव्य-कथ्य में हुए परिवर्तन के अनुसार काव्य शिल्प में बदलाव अवश्यम्भावी है क्योंकि काव्य का शिल्प कवि की आन्तरिक सृजन प्रक्रिया का अंग ही है । आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास इसकेलिए पर्याप्त प्रमाण है ।

द्विवेदी युगीन कविता में कवि ने नैतिक तथा सुधारात्मक चेतना पर अधिक बल दिया है । अतः उसमें काव्य-शिल्प की अपेक्षा कथ्य का महत्व अधिक था। द्विवेदीयुगीन कवि की तुलना में छायावादी कवि शिल्प के प्रति अधिक सजग थे । अपने मनोजगत की कोमल-सुन्दर भावनाओं को वाणी प्रदान करने केलिए छायावादी कवियों ने अभिव्यक्ति के विभिन्न उपादानों से

शिल्प को अधिकाधिक अलंकृत किया । छायावाद की स्निग्धता, प्रतीकात्मकता, दार्शनिक दुरूहता तथा अलंकरण प्रणाली के स्थान पर प्रगतिवाद में सरल सरल अभिव्यक्ति प्रणाली पर अधिक ज़ोर दिया गया था । परिवर्तित सामाजिक एवं वैयक्तिक यथार्थ को वहन करने केलिए पुराने शिल्प-प्रसाधन सक्षम नहीं। प्रयोगवाद के प्रतिष्ठापक कवि अज्ञेय ने पुराने उपमानों की निरर्थकता यों घोषित किया है -

> ये उपमान मैले हो गये हैं
> देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
> कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा
> छूट जाता है[5] ।

प्रयोगवादी कविता में पुन: कथ्य की अपेक्षा शिल्प के प्रति अधिक आकर्षण हुआ है । अत: इसका नाम "शिल्पनिष्ठ काव्य" भी हुआ है । छायावादी शिल्प काल्पनिक भावों को संप्रेषित करने केलिए उपयुक्त थी जबकि प्रयोगवादी शिल्प यथार्थ अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में सक्षम थी । प्रयोगवाद की सहज परिणति बनी नयी कविता में कथ्य एवं शिल्प का संतुलन हुआ है । अत: इसका शिल्प पक्ष कथ्य की मांग के अनुकूल लगता है ।

ज़ाहिर है कि काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्पपक्ष हैं । जैसे कैलाश वाजपेयी ने कहा "शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है[6] ।" अमूर्त अनुभूति को विशिष्ट भंगिमा के साथ मूर्त करने में शिल्प विधि का जो महत्त्व है वह यहाँ असंदिग्ध निकलता है ।

माथुर तथा शिल्प पक्ष

संवेदनशील कवि माथुर काव्य जगत के कुशल शिल्पी हैं । वे अपनी कविताओं में कथ्य से अधिक शिल्प पर अधिक ध्यान देते रहे । उनकी शिल्प सजगता के सम्बन्ध में एक आलोचक ने यों घोषित किया "जिस प्रकार छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पंत अपनी बौद्धिक संवेदना और अभिनव टेकनीक के बल पर अपनी भूमिकाएं बदलते रहे हैं, लगभग वैसी ही स्थिति छायावादोत्तर कवियों में गिरिजाकुमार माथुर की है । पंत के समान वे कवि की अपेक्षा शिल्पी अधिक है ।[7]" यह भी नहीं तारसप्तक में माथुर ने कहा "कविता में विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि तकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है ।[8]" स्पष्ट है कि माथुर शिल्पपक्ष के विषय में अधिक सजग हैं । उनकी सही पहचान केलिए उनके शिल्प पक्ष की छान-बीन करना अनिवार्य है ।

शिल्प के मुख्य तत्व ये हैं -

1. बिम्ब विधान
2. प्रतीक विधान
3. काव्य भाषा
4. छन्द

उपर्युक्त तत्वों की कसौटी पर माथुर को कसना यहाँ अनिवार्य है इस अध्याय में बिम्ब और प्रतीक पर तथा आगे के अध्याय में भाषा और छन्द पर विचार किया जायेगा ।

बिम्ब विधान

प्रत्येक कलाकार की संवेदना विशेष ध्वनि संकेतों से विशेष राग के पंखों में उड़ान भरती हुई लयबद्ध होकर अन्ततः एक बिम्ब के रूप में परिणत होती है । उसके हरेक शब्द अपने व्यावहारिक अर्थ से परे विशेष अर्थबोध का

वहन करने में सक्षम है । यही बिम्ब है । आत्म सम्प्रेषण के सिलसिले में यह एक अनिवार्य तत्व है । "काव्य बिम्ब एक प्रकार से ऐन्द्रिक शब्द चित्र है जो कुछ अंशों तक अलंकारपूर्ण होता है जिसके सन्दर्भ में मानवीय संवेदनाएं निहित होती हैं तथा जो पाठक के मन में विशिष्ट रागात्मक भाव उद्दीप्त करता है ।[9]" इस प्रक्रिया में एक अन्वेषणशीलता तथा सृजनशीलता सदैव वर्तमान है ।

सृजनात्मक प्रक्रिया में कलाकार के सामाजिक एवं सांस्कृतिक बोध का महत्वपूर्ण स्थान है । उसके अवचेतन में स्थित आदिबिम्ब अभिव्यक्ति में सहज ही आ जाता है और यह कृति को अधिक गहराई देता है । बिम्बों के सृजन में जीवन की मूलभूत समस्याएं अभिन्न रूप में सम्बद्ध रहती हैं । मनुष्य का धर्म, ईश्वर, स्वर्ग , नरक आदि के सम्बन्ध में कुछ निश्चित धारणाएं संस्कार रूप में उसके अवचेतन में विद्यमान रहती हैं इस सन्दर्भ में शैशवकाल में हुए अनुभवों और शिक्षा का प्रभाव भी बिम्बों की सृजन क्रिया में सहायक होता है । लगभग ऐसा समस्त ज्ञान आद्यरूप-कल्पना में विद्यमान रहने के कारण परिस्थिति विशेष में उसी के अनुरूप बिम्बों की अवस्थिति मनुष्य अनुभव करता है ।

मानव मन की संवेदनाओं के शाब्दिक पुनर्निर्माण में बिम्ब का स्थान बेजोड़ है । अशोक वाजपेयी ने अपना तीसरा साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कहा, "जिस कविता में बिम्बों का चमकता संसार नहीं, कल्पना की उड़ानें नहीं उसमें भला बचता ही क्या है ?[10]" कविता में बिम्ब की महत्ता की ओर संकेत प्रभाकर माचवे ने यों किया है, "कवि के लिए आत्मजगत और बाह्यजगत का अलगाव असहनीय है । दिक्कालातीत भावरूपों की सृष्टि के ज़रिये ही वह इस अलगाव को दूर करके दोनों का तादात्म्य प्राप्त करता है । ये भावरूप ही बिम्ब हैं ।[11]"

शब्द से भी बिम्ब बन सकता है । सार्थक कविता का हर शब्द बिम्ब का रूप धारण करता है । अज्ञेय की राय में "कविता उसे मानते हैं जो निरे शब्दों के निरे अर्थ से आगे जाकर ध्वनियों और अन्तर्ध्वनियों स्तरों और अन्तस्तरों से झलकती है ।[12]" जगदीश गुप्त की दृष्टि में, "कविता में शब्द या तो स्वयं बिम्ब होता है या कवि द्वारा संग्रथित व्यापक बिम्ब विधान में उसका सुनियोजित स्थान होता है और रचना के आन्तरिक संगठन के साथ उसकी अवयवी संगति रहता है । भावना का प्रवाह मूल बिम्ब विधान के साथ गतिशील रहता है, अतएव प्रत्येक शब्द उसका समर्थ वाहक बनकर ही अपनी वास्तविक उपादेयता सिद्ध कर देता है ।[13]" इसकी शक्ति की ओर इशारा करते हुए दिनकर ने यों कहा, "बिम्ब शब्दों से बनते हैं लेकिन भूचाल के समान होते हैं जिसके धक्कों से पहाड़ अपनी जड़ से उखाड़ जाता है ।[14]"

जाहिर है कि बिम्ब का अपना अलग अस्तित्व है । सी॰डी॰ लिविस ने बिम्ब को कविता का प्राणतत्व माना है । "कविता का प्राणतत्व बिम्बविधान ही है ।[15]" लेकिन सप्तक काव्य की आलोचना करते वक्त डॉ॰ अरविन्द ने कहा "बिम्ब साहित्य का उपकरण है प्राण नहीं ।[16]" पर अधिकांश आलोचक बिम्ब की अनिवार्यता के पक्षपाती है । अज्ञेय के शब्दों में "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूं बिम्ब विधान पर । बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य का विषय वस्तु से होता है उतना ही उसके रूप से भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त ।[17]" डॉ॰ नामवरसिंह ने बिम्ब की अतिशय शक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा, "कविता में बिम्ब रचना सदैव वास्तविकता को ही मूर्त नहीं करती कभी कभी वह वास्तविकता का अमूर्तन भी करती है ।[18]"

बिम्ब और कल्पना

बिम्ब योजना में कल्पना का स्थान महत्वपूर्ण है । एक कल्पित सादृश्य विधान के द्वारा वस्तु और काव्यगत अर्थ जोड़ने के कारण इसमें कल्पना के अक्षय भण्डार की अनिवार्यता है । सृजनात्मक ढंग में कवि की

संवेदना कल्पना व्यापार से परिपुष्ट होकर बिम्ब का रूप धारण कर लेती है । यह कलाकार की सृजनात्मकता तथा उसकी सौन्दर्य चेतना का द्योतक है । अतः बिम्ब कवि की सौन्दर्य चेतना युक्त दृष्टि तथा कल्पना शक्ति से निर्मित अलंकृत चित्र है। ऐन्द्रियता इसका मूलभूत तत्व है ।

बिम्ब-विभिन्न युगों में

बदली हुई युगीन संवेदना के समानांतर काव्य के बिम्ब संयोजन में निरंतर परिवर्तन होता रहता है । आधुनिक हिन्दी कविता के प्रत्येक चरण में बिम्ब विधान की प्रक्रिया सक्रिय रही है । पाश्चात्य काव्य संस्पर्श से आधुनिक हिन्दी काव्य में इस ओर विशेष रुचि बढ़ी । नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों से संपृक्त द्विवेदीयुगीन कविता में साधन पक्ष प्रधान रही थी । अतः बिम्ब मूर्त, दृश्य और स्पृश्य प्रतीत होता है । उसके बिम्ब विधान स्थिर और एकोन्मुख है सीधा और स्पष्ट है । "प्रियप्रवास" की शुरुआत का संध्यावर्णन तद्युगीन अनलंकृत, सीधे बिम्ब विधान के लिए पर्याप्त प्रमाण है[19]।"

संगीत, वस्तुचित्रण, अलंकृत गीतिमयता के प्रति विशेष रुचि के कारण छायावादी कविता में बिम्बों की समृद्धि तथा पुष्टि हुई । उसकी अलंकृत भाषा में कल्पना का जो अतिशय चित्र प्रस्तुत है वह बिम्बों के माध्यम से हुआ है । छायावादी कवि तथा आलोचक सुमित्रानंदन पंत ने पल्लव की भूमिका में यों ही लिखा, "कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है[20]।" छायावादी काव्य में सार्थक बिम्बों की खोज का प्रयास दृष्टव्य है । उन्होंने अपनी वैयक्तिक तथा काल्पनिक अनुभूतियों को संवेदनक्षम बिम्बों के द्वारा स्थापित किया । अतः हिन्दी कविता के इतिहास में छायावादी काव्य सार्थक बिम्बों से

बनी है । अतः कलात्मक बिम्बों की सूक्ष्मता और तीव्रता की दृष्टि से पंत समूचे छायावादी कवियों में अद्वितीय हैं ।

छायावादोत्तर कवियों ने अपने वैयक्तिक विद्रोह तथा जीवन के कटु तिक्त अनुभवों के घात-प्रतिघातों, अंतर्विरोधों को प्रतिबिम्बित किया है । युगीन सांस्कृतिक संकट के कारण उनके बिम्ब सम्बन्धी अवबोध में काफी परिवर्तन आ चुका है । इस परिवर्तित परिवेश में माथुर के काव्य बिम्ब पर विस्तृत चिन्तन अनिवार्य है ।

माथुर का बिम्ब विधान

माथुर एक ऐसा कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्य-संवेदना के संप्रेषण में बिम्बों का कुशल प्रयोग किया है । उनकी रचनाओं में बिम्बों का प्रयोग बड़े पैमाने पर हुआ है जो उनकी सांस्कृतिक सजगता का परिचायक है । उनके अन्तः संस्कार में छायावाद के सूक्ष्म,कोमल, रंगीन रंगोज्वल बिम्ब बसे हुए हैं । उनकी काव्य चेतना का विकास एक ओर प्रसाद,पंत, निराला, महादेवी के काव्य वैभव से और दूसरी ओर अंग्रेजी के रोमानी कवियों की चित्रमय विभूतियों से हुआ था । कवि ने इस वैभव विलास का पूर्ण उपयोग करते हुए उसमें नवीन उपकरणों का समावेश करके अपने काव्य में ढाला है । रामदरशमिश्र ने उनकी इस खासियत पर अपना मंतव्य यों प्रकट किया "अपने अनुभव जगत् को रूप देने केलिए वे कुशल सूक्ष्म बिम्बों की रचना कर लेते हैं जिनमें ध्वनि, गन्ध, स्पर्श,रूप आदिके सूक्ष्म संश्लिष्ट बोध मूर्त हो उठते हैं । इस क्षेत्र में पंत के पश्चात् माथुर का स्थान विशिष्ट है ।"[21] बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की क्षमता माथुर को पंत जैसे कवियों की पंक्ति में स्थान दिलाती है ।

माथुर की बिम्ब योजना में सौन्दर्य-चेतन युक्त दृष्टि की झलक मिल जाती है । "उन के काव्य में न केवल दृश्य बिम्ब की सत्ता है वरन् शब्द,

गंध, ध्वनि आदि की सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति करनेवाले अनेकानेक चित्रों का सौन्दर्य भी दर्शनीय है ।[22] मौलिकता तथा नवीनता के प्रति सृजनात्मक अन्वेषण बरतने के कारण उनके काव्य बिम्बों में अतिशय गहराई और ताजगी झलकती है । संवेदनशील मन की तरल अनुभूतियाँ और रोमानियत के संस्पर्श से गढ़े हुए सरस बिम्बों के कारण उनकी कविताओं में एक प्रकार का अभिजात्य है । चित्रात्मकता, ऐन्द्रियता और संश्लिष्टता उनके बिम्बों की प्रमुख विशेषताएं हैं । उनकी कविताओं में बिम्बों का बहुआयामी रूप विद्यमान है । उनका विस्तृत विवेचन यहाँ अनिवार्य है ।

माथुर की कविता में बिम्बों के निम्नलिखित प्रकार द्रष्टव्य हैं ।

1. दृश्यबिम्ब (अ) वस्तु बिम्ब (आ) व्यापार बिम्ब
2. स्पर्शबिम्ब
3. घ्राण बिम्ब
4. श्रवणबिम्ब
5. सान्द्र बिम्ब
6. आलंकारिक बिम्ब

1. दृश्य बिम्ब

जो बिम्ब हमारी चक्षुओं के सम्मुख वस्तु विशेष का रूप, रंग मानव की विभिन्न चेष्टाओं के चित्र प्रस्तुत करते हैं, उन्हें दृश्य बिम्ब नाम से अभिहित है । वस्तु बिम्ब तथा व्यापार बिम्ब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं । माथुर ने दृश्य छवि के चित्रांकन केलिए इस प्रकार के अनेक बिम्बों की सृष्टि की है ।

"नई दिवाली" में कार्तिक मास की धाम का बिम्ब बिम्बित हुआ है । इस केलिए माथुर ने जगमगाती हुई धरती को बिम्ब के रूप में स्वीकार किया -

कार्तिक का रसदाम महीना
धरती फूली-फाली
ठण्डी मिट्टी पर खिल आई
दीपक सुमन दिवाली
गृह-लक्ष्मी सी सांझ खड़ी है
पीत किरन तन वाली
जगा दीप से दीप
चमक से भरी धरा की थाली ।"[23]

"न्यूयार्क में फाल" में कवि ने फाल के मौसम की सुन्दर छवि का अंकन यों किया है ।

"थम गई बरसात नम
आ गया है नायलॉन सा पारदीमा
यह खुला मौसम
मनोरम फाल का मौसम
हिमानी रात
ठंडी धूप का मौसम
समुद्री हवा पर उड़ता हुआ
पत्तों भरा आँचल ।"[24]

यहाँ "नायलॉन सा पारदीमा" सरल आधुनिक बिम्ब है । माथुर की कविताओं में दृश्य बिम्ब की अलंकृत परम्परा काफी विकसित है ।

उसमें एक वस्तु केलिए शृंखलाबद्ध उपमानों की योजना की गई है ।

"लुढ़क गया
एक और वर्ष दिन
पत्थर सा
रंगीन कंचों सा
स्याही सा
आँसू की बूँद ।[25]"

शाम की दृश्य छवि का चित्रांकन निम्नलिखित पंक्तियों में परिलक्षित है ।

"ये हवा धूप मिली
लहर सी आके लिपट जाती है
कभी झल्के से उड़ा देती बाल
कभी छत पर बैठी ललनाओं के
सोंधे तन-गन्ध भरे आँचल को
गोरे कन्धे से उड़ा देती है
और उड जाते सूखते कपड़े
ऊँची सीमेंट की मुँडेरों से ।[26]"

वस्तु बिम्ब

वस्तु बिम्ब वर्ण्य वस्तु का यथार्थ साक्षात्कार होता है । इसमें रूप और रंग का भी विशेष ध्यान दिया जाता है । छायाचित्रों सी स्थिरता इसकी खासियत है । पर व्यापार बिम्ब में स्थिरता नहीं एक प्रकार गत्यात्मकता है । 'वस्तु चित्रण में जहाँ छाया चित्रों की सी स्थिरता होती है

तथा वर्णन में कवि एक प्रकार से बिलकुल निरपेक्ष रहता है वहाँ यथातथ्य बिम्ब का उदाहरण माना जाएगा और जहाँ चित्र में एक प्रकार की गत्यात्मकता का आभास होता है ऐसे बिम्ब को व्यापार व्यंजक की संज्ञा दी जाएगी।[27] छत की किनारियों को छूनेवाली सुनहली धूप के चित्र में वस्तु बिम्ब का सुन्दर रूप स्पष्ट है।

'शाम की तिरछी, सलोनी सुनेली धूप
दीपित है अब भी
इमारत के चेहरे पर
दिन है, उजेला है
रोशन हैं दूर तक
धूप का गोटा लगी
छतों की किनारियाँ।'[28]

रूप और रंग पर विशेष ध्यान रखते हुए यथार्थ की सुदृढ रेखाओं द्वारा दृश्य बिम्ब उभारने में कवि माथुर सिद्धहस्त है। इसमें अलंकृति के स्थान पर यथार्थता पर अधिक बल दिया जाता है।

'निकलतीही जा रहीं घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल की
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली।'[29]

<u>व्यापार बिम्ब</u>

जिस बिम्ब में मानव जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों का चित्र प्रस्तुत होता है वह व्यापार बिम्ब नाम से अभिहित किया जाताहै।

गत्यात्मकता इसकी प्रमुख विशेषता है । "नये साल की साँझ" में ग्राम जीवन के व्यापारों की अभिव्यक्ति हुई है । इसमें संध्या की लालिमा के दृश्यांकन केलिए कृषक वधू का बिम्ब अधिक संगत लगता है ।

"लालिमा साँझ की सिमट सारी
जा रही संभलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा है मेहनत से
कच्ची मिट्टी से भरे[30] ।"

कवि ने शहरी जीवन के विविध क्रियाकलापों को काव्य विषय बनाया है । अभाव ग्रस्त क्लर्क के जीवन का बिम्ब निम्नलिखित पंक्तियों में खींचा गया है । साधारण उपकरणों के ज़रिये दैनिक जीवन के एक अमूर्त अंश को कवि ने बिम्बात्मक मूर्त रूप प्रदान किया है ।

"घंटियाँ बज रही है रिक्शों की
सीटियाँ साइकिलों की घातों
केरियर, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में है फाइलें हर दिन भूखी
जो न कभी खत्म हुई दफ्तर में[31] ।"

<u>इन्द्रिय संवेद्य बिम्ब</u>

इसके अंतर्गत वे बिम्ब आते हैं जो दृष्टि के सम्मुख रूप गंधादि प्रक्रियाओं से स्थापित होते हैं । जीवन और काव्य में इन बिम्बों का सर्वाधिक

प्रयोग होता है । इन्द्रिय संवेद्य बिम्बों में उल्लेखनीय हैं स्पर्श, श्रवण, घ्राण आदि बिम्ब ।

स्पर्श बिम्ब

स्पर्श चेतना को जागृत करनेवाला बिम्ब स्पर्श बिम्ब है । माथुर की कविताओं में स्पर्श बिम्बों की कमी नहीं । जाड़े की धूप की तपन को सेमल की गरमीली रुई कहकर पाठकों को जाड़े की धूप की स्पर्शानुभूति दिलाई गई है ।

"सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान ।"[32]

धूप की गरमी का स्पर्श बिम्ब प्रस्तुत करने की कवि की अभि-व्यक्ति क्षमता का और एक उदाहरण देखिए -

"ऊन सी यह धूप की गरमी मुलायम
है खिला पाती न जीवन फूल को ।"[33]

घ्राण बिम्ब

गन्ध चेतना को जागृत करनेवाले बिम्ब को घ्राण बिम्ब कहलाता है । इसे घ्राण संवेद्य बिम्ब भी कहा जाता है । माथुर की कविताओं में घ्राण बिम्ब प्रचुर मात्रा में है । "लैंडस्केप" में गीले खेतों से आती हुई मन्द हवाओं में हरियाली खुशबू वास्तव में घ्राण बिम्ब का जीवन्त स्वरूप प्रदान करता है ।

"ज्यों सुबह ओस भीगे खेतों से आती है
मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में ।"[34]

घ्राण बिम्ब का एक और चित्र कवि ने नीचे की पंक्तियों में उभारा है ।

"उठती भीनी गंध हवा में दूध की
बिखरा सोई कोरे कुंतल कामिनी ।[35]"

यहाँ कवि ने दूध की गंध केलिए कामिनी के कोरे कुंतलों से आने वाली गंध का बिम्ब बनाया है ।

ध्वनिबिम्ब या श्रवण बिम्ब

ध्वनियों की आवृत्ति से जो बिम्ब उभरता है उसे ध्वनि बिम्ब या श्रवण बिम्ब कह सकते हैं । उसमें निहित ध्वनियों की विशेष अनुकृति से एक व्यापक बिम्ब धीरे धीरे तरंगित होने लगता है । निर्जन स्थान में गूंजनेवाली झींगुरों की झंकार केलिए झांझ के नाद का प्रयोग माथुर ने यहाँ किया है ।

"सनसनाती सांझ सूनी
वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झांझ सा बीहड़ झनकता ।[36]"

विभिन्न स्वर ध्वनियों के माध्यम से कवि ने आंधी रात के सूनेपन का चित्रण खींचा है

"दूर दूर के छाँह भरे सुनसान पथों में
चलने की आहट आने सी जमी पड़ी थी
भूरे पेड़ों का कंपन भी ठिठुर गया था
कभी कभी बस
पतझर का सूखा पत्ता गिरकर उड़ जाता

मेरे स्वरों से नाकर करता ।"[37]

नाद सौन्दर्य के प्रति विशेष मोह रखनेवाले माथुर की कई कविताएं गेय हैं और उनमें श्रवण बिम्बों के सुन्दर उदाहरण उपलब्ध है ।

मानस बिम्ब

मानस बिम्ब में विचार या भाव की प्रधानता होती है । आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के बौद्धिक आग्रह के कारण मानस बिम्ब में कहीं कहीं क्लिष्टता या दुरूहता आ गई है । मानस बिम्ब में हृदय और बुद्धि तत्व दोनों का समावेश है । अतः उसके दो रूप होते हैं । भाव बिम्ब और विचार बिम्ब ।

(अ) भाव बिम्ब

भाव बिम्ब में किसी भावस्थिति का चित्रण किया जाता है । उसमें दृश्य पक्ष की अपेक्षा भावपक्ष की प्रधानता है । माथुर की कविताओं में भाव बिम्बों की बहुलता है ।

"ज्वार सा थका हुआ यह वन है
रुकती गिरती दबी पवन है
ठगी रात के से दीपक पर काजल
बन छा रहा अंधेरा ।"[38]

माथुर ने मानवी उद्गारों और चेष्टाओं को प्रकृति में देखने का प्रयास किया है जो छायावादी संस्कार का प्रभाव है । विरह जन्य पीडा को

कवि ने साँझ की नीरवता में जलते दीप के काजल की सीमाओं से व्यक्त किया है ।

"ढल गई शाम
अब रात साँवली सुनी सुनी उठ उठ आई ज्यों
दीपक की लौ पर काजल की जो रेखाएं ।"[39]

वैयक्तिक राग विराग को प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से चित्रित करके कवि ने अपने छायावादी संसार को अधिक मज़बूत बनाया है ।

"रेडियो कवि सम्मेलन" में रेडियो द्वारा कवि के गीतों को सुनने केलिए कातरता से प्रतीक्षा करनेवाली प्रिय का चित्रणकिया है ।

"और चित्र सी आँखें बंद किए तुम
मेहन्दी रंजित गोरे हाथ टिकाए मुख पर
खोई सी सुनने को आतुर
मेरे लहर बने गीतों को ।"[40]

यहाँ विरहजन्य पीडा को सहते हुए मिलन की अदम्य अभिलाषा में प्रिय की बाट जोहनेवाली छायावादी नायिका का बिम्ब उभर आता है ।

विचार बिम्ब

माथुर की कविताओं में कुछ ऐसे बिम्ब भी हैं जिनमें बुद्धितत्व की प्रधानता है । उन्हें विचार बिम्ब कह सकते हैं । "तुफान एक्सप्रेस की रात" से जीवन की व्याकुलता की तुलना करके कवि ने मानव जीवन के अंतहीन संघर्ष को व्यक्त किया है ।

डूबा व्यक्तित्व सभी
गोफन से फेंके हुए पत्थर सी
ज़िन्दगी की तूफानी रात ख़त्म होती नहीं[41]।"

यात्री को अपनी यात्रा के बीच मंज़िल निश्चित होने पर भी उसकी यात्रा कभी ख़त्म नहीं होती । उसे लगता है मानो वह एक वृत्त में बार बार चक्कर काट रहा हो । ज़िन्दगी भर की तलाश के बावजूद मनुष्य को अपने दु:ख, दर्द, यातना-पीड़ा से मुक्ति नहीं मिलती । वह ज़िन्दगी भर विसंगति को भोगने केलिए अभिशप्त है ।

"मंज़िल क्या पास है
xx xx
दर्द के सफ़र का
क्या अंत पास आया है
दिखता नहीं है कुछ
आँखें कहीं और हैं
टूटती नहीं है दर्द दु:ख की धुमेर यह[42]।"

सान्द्र बिम्ब या संश्लिष्ट बिम्ब

जिन बिम्ब में संगठनात्मकता, संक्षिप्तता और संश्लिष्टता जैसी विशेषताएं होती हैं उन्हें सान्द्र बिम्ब या संश्लिष्ट बिम्ब नाम से अभिहित किया जा सकता है । इसमें अनुभूति की अपेक्षा अभिव्यक्ति कुशलता का आग्रह अधिक है । निम्नलिखित पंक्तियों में संक्षिप्त और कलात्मक अभिव्यक्ति का चित्र द्रष्टव्य है ।

"आवाज़ें आती हैं
पत्थर, पत्थर से टकराती है
गलियों मकानों पर
सिर धुन मंडराती हैं
जैसे ही ढूंढ रही
प्यासी, आँच में तपती आत्मा
एक शरीर नया [43] ।"

आज के कुंठाग्रस्त मानव का चित्र कवि ने सशक्त अभिव्यक्ति कुशलता से खींचा है ।

"रात के खोये हुए उन आंगनों में
और अलसाए हुए
कम्बल, लिहाफों, बिस्तरों पर
जो उठाये जा रहे हैं
* *   *   * *
धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी ।
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर [44] ।"

अलंकृत बिम्ब

अलंकृत बिम्ब वह बिम्ब है जिसमें अलंकारों की प्रधानता रहती है । माथुर की कविताओं में ऐसे भी बिम्ब उपलब्ध हैं जो अलंकारों से अलंकृत है । उपमा की अत्याधुनिकता इस उद्धरण में द्रष्टव्य है ।

चांद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल [95] ।"

रमणीय अनुभूति और रागतत्व से भरा हुआ माथुर का बिम्ब अधिक संवेदनीय हो सकता है । रूप सौन्दर्य का चित्रण करनेवाला और एक अलंकृत बिम्ब देखिए -

"देह कुसुमित मृणाल
जैसे गेहूं की बाल
जैसे उचकौहे बौरों से
रोमिल रसाल
किरमिशी चद्रलट
कसम से उर प्रियाल ।"[46]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि माथुर का काव्य संसार बिम्ब विधान से समृद्ध तदएव प्रौढ़ है । उसमें विविधता और नूतनता है । उनकी कल्पनाशक्ति, सौन्दर्य बोध औरअभिव्यक्ति क्षमता ने बिम्बों को अधिकाधिक मूर्त और मांसल बनाया है । समसामयिक परिवेश से सार्थक बिम्बों को सृजित करने की माथुर की क्षमता अनोखी है । आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य-बिम्ब को विकसित तथा समृद्ध करने में उनका योगदान स्तुत्य है ।

प्रतीक

अंग्रेज़ी शब्द"सिम्बल" का समानार्थी हिन्दी शब्द है प्रतीक । प्रतीक वास्तव में एक प्रकार के बुद्धिव्यापार का द्योतक है । वह विशेष संकेतात्मक शब्द या चिह्न है जिसका प्रयोग किसी अन्य अर्थ को व्यंजित करने केलिए किया जाता है । इसमें गागर में सागर भरने की शक्ति है । गोपन और

प्रकाशन का तत्व इसमें निहित है । सामान्य वस्तु में भी असामान्य सौन्दर्य दिखाने और उसे छिपा रखने की उनकी शक्ति अद्वितीय है, वह अपने भीतर निहित अर्थ को तत्काल खोलता और छिपा लेता है।[47]"

प्रतीक के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने महत्वपूर्ण मन्तव्य प्रकट किये हैं । सुधीन्द्र ने प्रतीक की परिभाषा देते हुए कहा, "प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या गुण का समन्वित रूप लेकर आनेवाले प्रस्तुत का नाम है।[48]" अप्रस्तुत के सारे गुण और सन्दर्भ को प्रस्तुत तक पहुँचाने की शक्ति प्रतीक में है । प्रतीक भावना में हमारी मान्यता और संस्कृति का भी महत्वपूर्ण स्थान है । "अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करनेवाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तुविधान को प्रतीक कहते हैं जो देश, काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जागृत करता है।[49]" अज्ञेय केलिए प्रतीक अप्रस्तुत और प्रस्तुत के सहअस्तित्व पर बल देने का माध्यम है, "एक के बदले दूसरा रखकर सहअस्तित्व पर बल देते हुए एक दूसरे तक पहुँचाने का माध्यम है।[50]"

रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रतीक की सफलता केलिए कवि की शक्ति सामर्थ्य के साथ साथ पाठक की भावक शक्ति को अनिवार्य समझते हैं । "प्रतीक मानसिक गुत्थियों का परिचायक है और भावचित्र की स्थिति में गुत्थियों के साथ उसके व्यापक परिवेश को द्योतित करता है । इसकेलिए कवि की शक्ति सामर्थ्य के अतिरिक्त पाठक की भावक शक्ति भी अपेक्षित है।[51]"

प्रतीक सत्यान्वेषण का माध्यम है । सत्य की गहराई को नापने केलिए प्रतीक एक सार्थक उपकरण है । इस वास्तविकता की ओर बल देते हुए अज्ञेय यों कहते हैं, "प्रतीक द्वारा सत्य को जानता है - सत्य के अथाह सागर में वह प्रतीक रूपी कंकड़ फेंककर उसकी थाह का अनुमान करता है ।[52]

जी॰एम॰ बाधरा की राय में", चाहे अपने प्रसंग के अनुसार प्रतीक में पार्थक्य हो परन्तु उनके अर्थ सौष्ठव सदैव स्पष्ट रहते हैं । प्रतीकों के प्रयोग से किसी भाव को स्पष्ट करने केलिए अधिक विवरण की अपेक्षा नहीं रहती । प्रतीक विचारों को मूर्त रूप प्रदान करते हैं अन्यत: सम्भवत: ये विचार अव्यक्त ही रह जाते हैं।[53]" निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि प्रतीक वास्तव में अदृश्य का दृश्य बिम्ब है जिसमें अभिधार्थ से परे ? व्यंजित करने की क्षमता है ।

पारस्परिक आदान प्रदान में व्यापक और संश्लिष्ट अर्थ को संप्रेषित करने में प्रतीकों का विधान आवश्यक है । वह मानव की चिन्तन प्रणाली तथा क्रिया व्यापार का अनिवार्य अंग है । संपूर्ण दृश्य और उससे संपृक्त भाव सत्य तथा बोध के गतिशील संचरण को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है । इसका क्षेत्र साहित्य तक सीमित नहीं बल्कि आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक जैसे ज्ञान के सभी क्षेत्रों में इसका प्रवेश हुआ है ।

काव्यात्मक अभिव्यक्ति चमत्कार विधात्मक होने के कारण कविता में प्रतीक का विशेष स्थान है । "कवि अपने मन की अमूर्त सूक्ष्म अनुभूतियों को मार्मिक प्रभावोत्पादक और स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने केलिए प्रतीकों का सहारा लेता है । प्रतीक में अभिधार्थ से बढ़कर व्यंजना शक्ति और काव्य की आत्मा को उसकी पूरी गहराई के साथ संप्रेषित करने की क्षमता निहित है।[54]" काव्य में निरंतर प्रतीकों का प्रयोग होताआ रहा है । "कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य प्रतीकों की, नए प्रतीकों की सृष्टि करता है, और जब वैसा करना बन्द कर देता है तब जड़ हो जाता है या जब जड़ हो जाता है तब वैसा करना बन्द करके पुराने प्रतीकों पर निर्भर करने लगता है।[55]"

शब्द के अभिधात्मक अर्थ के ज़रिये काव्य रचना अधूरी रह जाती है । उसमें वांछित गहराई और प्रौढ़ता लाने केलिए प्रतीकों पर निर्भर रहना अनिवार्य बन जाता है । कविता में कम से कम शब्दों का प्रयोग और अधिक से

अधिक अर्थ भरने की इच्छा और प्रयास ने प्रतीक को जन्म दिया । यों भी शब्दों का अभिधात्मक स्वरूप और अर्थ उतना प्रभावोत्पादक नहीं होता जितना उनमें निहित प्रतीकात्मक अर्थ।[56] आजकल प्रतीकवादी कविता की चर्चा भी हुई है। विलियम यॉर्क ने यों कहा, "एक विशेष प्रकार की कविता जिसमें अभिधेय अर्थ के अतिरिक्त किसी व्यापक अर्थ की व्यंजना रहती है, प्रतीकवाद के अन्तर्गत आ जाता है । इसलिए प्रतीक को किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य चिह्न माना जाता है ।[57]"

उपमा और प्रतीक

उपमा और प्रतीक दोनों सादृश्य के ज़रिये संवेदना को संप्रेषित करता है । लेकिन दोनों में कुछ अंतर है । उपमा आलंकारिक सादृश्य प्रस्तुत करता है जबकि प्रतीक सांस्कृतिक,मनोवैज्ञानिक,सामाजिक परिस्थितियों से मनुष्य के अवचेतन में प्रतिष्ठित कुछ चिह्न है जिसमें बौद्धिकता की प्रधानता है वह शब्द को गहराई देता है।वस्तुतः प्रतीक उपमा से एक कदम आगे हैं । अज्ञेय की दृष्टि में, "उपमा में प्रत्यक्ष सादृश्य बोध का आधार होता है, प्रतीक में सादृश्य के प्रत्यक्ष या तर्कित आधार के अलावा एक और प्रक्रिया भी होती है एक सोपान अधिक है ।[58]"

बिम्ब और प्रतीक

प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में बिम्ब होता है । उस रूप से विकसित होकर प्रतीक बन जाता है । प्रतीक अर्थ की गहराई को व्यंजित करता है पर बिम्ब अनुभूति के विभिन्न आयामों का चित्र उपस्थित करके धीरे धीरे अर्थ को खोल देता है । "प्रतीक जहाँ किसी एक विशेष भाव को जागृत करता है वहाँ बिम्ब अनेक भावों के संश्लेष और उनके विविध स्तरों के अनुभव में

एक आगामी संक्रान्ति करता है । प्रतीक का तात्कालिक प्रभाव इस दृष्टि से तीव्र अधिक होता है जबकि बिम्ब धीरे धीरे अर्थ खोलता है ।[59]" केदारनाथ सिंह ने भी इसके अन्तर पर प्रकाश डालते हुए यों कहा, "बिम्ब विधान बहुत से विशृंखल अंगों का एक समुच्चय होता है । उसका आधार जीवन और जगत की अनेकता में है । इसके विपरीत प्रतीक किसी सूक्ष्म और गहरी "एकता" का बोधक होता है । इसलिए प्रतीकों की योजना में जाने-अनजाने एक तार्किक संगति अवश्य रहती है ।[60]"

बिम्ब नितांत वैयक्तिक स्तर पर रचा जा सकता है । पर प्रतीक में सामाजिक, सांस्कृतिक अवबोध सन्निहित है । यह सर्वविदित है कि फ्रायड ने प्रतीक का उद्गम स्रोत व्यक्ति का अवचेतन माना है पर युंग ने सामाजिक अवचेतन को । जो भी हो प्रतीक आंशिक अर्थद्योतक है पर बिम्ब एक पूरा चित्र उसके सारे परिवेश के साथ प्रस्तुत करता है ।

प्रतीक का विकास

काव्य में प्रतीकों की सत्ता रही है । युग परिवर्तन के अनुसार साहित्यिक मान्यताओं और मूल्य संबन्धी चिन्तनों में बदलाव आ जाता है । तदनुकूल युगीन साहित्य पुराने प्रतीकों का परित्याग करके नवीन प्रतीकों को अपनाता है । "प्रतीक ऐतिहासिक और जातीय चेतना का प्राणमय संवाहक होता है ।[61]" वैदिक साहित्य से लेकर अब तक का साहित्य इसका साक्षी है । कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, प्रसाद, पंत, निराला जैसे प्राचीन और अर्वाचीन कवियों ने अपने काव्य में इसका विविध प्रयोग किया है । द्विवेदीयुगीन कविता में नीरसता और इतिवृत्तात्मकता होते हुए भी प्रतीक-प्रयोग में कुछ मौलिक उद्भावनाएं हुई हैं । लेकिन छायावाद के आगमन से प्रतीक व्यापार की

दिशा में बड़ा परिवर्तन उपस्थित हुआ। प्रतीक शैली छायावाद की प्रमुख खूबी बन गई है। इस युग में भावव्यंजना एवं लक्षणा के चमत्कार से युक्त प्रौढ़ प्रतीकों का प्रयोग होने लगा। प्रकृति प्रेमी होने के कारण छायावादी काव्य में प्रकृतिपरक प्रतीकों की प्रचुरता है। पर इसकी प्रतिक्रिया में आए प्रगतिवादी काव्य में जो नवीन प्रयोग हुए वे आपने आप में अनूठे हैं। शोषकों की शोषणवृत्ति, निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति, साम्यवाद का समर्थन आदि के कारण इसमें नूतन प्रतीकों का आविर्भाव हुआ।

शिल्प के अलंकरण में अधिक सजगता बरतनेवाले प्रयोगवादी कवि ने अधुनातन प्रतीकों की रचना करके प्रयोगवादी कविता को समृद्ध किया। अभिव्यक्ति की नयी भावभूमि तलाशनेवाले कवियों को पुराने प्रतीकों की अपर्याप्तता और नए सार्थक प्रतीकों की अनिवार्यता महसूस हुई। रचना में प्रवाहमान अन्तर्धाराओं को वह प्रतीक पद्धति द्वारा ही व्यक्त करना चाहता है। मानव मन की अनुभूतियों और यथार्थ सामाजिक परिवेश को अभिव्यंजित करने केलिए प्रयोगवादी कवियों ने परम्परागत रूढ़ प्रतीकों के स्थान पर नूतन प्रतीकों की सृष्टि की। यथार्थ चित्रण के आग्रह ने नयी कविता में सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलिगत वैचित्र्य एवं नये नये अर्थों को ध्वनित करनेवाले अभिनव प्रतीकों का विधानकिया है। "सधे जमे और एक परिचित दायरे में घूमनेवाले प्रतीक उपमानों के स्थान पर वस्तु जगत के समस्त क्रिया-कलापों को उसने नयी कविता ने अपनी वर्धमान उंगलियों को छूकर उन्हें गहरा किया है। मानसिक जगत की अनेक सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं के पर्दे उठाये हैं। दैनिक जीवन की सैकड़ों छोटी छोटी घटनाओं के वातावरण और प्रतीक से काव्यशिल्प को समृद्धशाली किया है।"[62]

आधुनिक जीवन की जटिलताओं और तनावों को चित्रित करने केलिए वर्तमान प्रतीक अपर्याप्त है। अतः लोक साहित्य, धर्म इतिहास, पुराण

आदि को नए सिरे से खोजने की आवश्यकता पर केदारनाथ सिंह ने ज़ोर दिया है । "आधुनिक जीवन की जटिलताओं और अंतर्विरोधों को व्यंजित करने केलिए लोक साहित्य, धर्म, पुराण, इतिहास के भण्डारों में बहुत से ऐसे अज्ञात प्रतीक और अदृश्य बिम्ब पड़े हुए हैं जिनकी खोज के द्वारा नई कविता की सम्भावना का पथ और भी प्रशस्त किया जा सकता है ।"[63] इस प्रकार युगीन परिवर्तनों के अनुसार प्रतीक सम्बन्धी अवबोध में भी काफी बदलाव और विस्तार आ गया है । माथुर की कविताएं इस केलिए पर्याप्त प्रमाण हैं

माथुर के काव्य में प्रतीक विधान

प्रयोगवादी नयी कविता के प्रतिनिधि कवि गिरिजाकुमार माथुर ने नूतन प्रतीकों के ज़रिये अपनी संवेदनाओं को संप्रेषित किया है । उनकी रचनाएं प्रतीक योजना की अद्भुत क्षमता की परिचायक हैं । इतिहास, पुराण, विज्ञान, संस्कृति जैसे बृहद् सन्दर्भों को उन्होंने प्रतीक रूप में अपनाया है। नए नए सन्दर्भों से प्रतीकों को गढ़ने की उनकी क्षमता श्लाघनीय है । उनकी रचनाओं में प्रतीकों के निम्नलिखित रूप परिलक्षित होते हैं ।

1. सांस्कृतिक प्रतीक
2. ऐतिहासिक प्रतीक
3. पौराणिक प्रतीक
4. वैज्ञानिक प्रतीक
5. प्राकृतिक प्रतीक
6. यौन प्रतीक

1. सांस्कृतिक प्रतीक

सांस्कृतिक के अन्तर्गत धर्म, पुराण और इतिहास सभी आते हैं अतः सांस्कृतिक प्रतीकों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है ।

धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक । पर धर्म से गृहीत प्रतीकों को सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में यहां स्वीकारा गया है । माथुर ने अपनी कतिपय कविताओं में सांस्कृतिक प्रतीकों को अपनाया है । मानव संस्कृति अपनी चरम विकास की दिशा में वैज्ञानिक यन्त्रों और उपकरणों के द्वारा विनाश की ओर अग्रसर हो रही है । इस कतरनाक संक्रान्तिकालीन स्थिति को यथावत् अभिव्यंजित करने केलिए आहुति, यज्ञकुण्ड, भस्मासुर जैसे प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

"किन्तु आज लगता है जैसे
इस आहुति पर आकर
यज्ञ कुण्ड उठ गया गगन में
और उमटता आता है वह
भस्मासुर सा होताओं पर ।"[64]

महायज्ञ में अंतिम आहुति की प्रतीक्षा थी लेकिन उसका उल्टा ही सम्भव हुआ । यज्ञकुण्ड गगन में उठ गया और आहुति होताओं को ही भस्म कर डालने केलिए भस्मासुर बन कर आ रही है । "आहुति" और 'यज्ञकुण्ड' के ज़रिये विनाशकारी वैज्ञानिक उपकरण की भीषणता की ओर कवि इशारा करता है ।

माथुर ने मानव कल्याण की भावना केलिए "शिव" का प्रतीक अधिक उपयुक्त समझा है ।

"सदियों पहले का शिव सुन्दर मूर्तिमान हो
चलता आता है बोझ का से इतिहासों पर
श्वेत हिमालय की लकीर सा ।"[65]

धर्म से सम्बन्धित "अरदान", "पूजन", "मन्दिर" जैसे प्रतीकों का प्रयोग माथुर ने नवीन अभिव्यक्ति केलिए किया है ।

"रूठ गये वरदान सभी फिर भी
मैं मीठे गान लिये हूँ
टूट गया मन्दिर तो क्या पूजन के
अरमान लिये हूँ ।[66]"

यहाँ अडिग साधना व्यंजित हुई है । माथुर ने महात्मा "बुद्ध" को त्याग का प्रतीक बनाया है ।

"जिसमें दुखी दुखी दिखती
ध्यान मग्न तस्वीर बोधिद्रुम के नीचे की ।[67]"

यद्यपि "बुद्ध" का सम्बन्ध इतिहास से है तथापि उपर्युक्त पंक्तियों में "बुद्ध" का धर्मगत चित्रण ही हुआ है ।

माथुर ने भारतीय धर्म से सम्बन्धित प्रतीकों को धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार केलिए नहीं बल्कि मनुज की विभिन्न स्थितियों को स्थापित करने और उन स्थितियों को उसके अन्तःस्थल तक पहुँचाने केलिए ही अपनाया है ।

2· <u>ऐतिहासिक प्रतीक</u>

आधुनिक जीवन के संघर्ष और वैमनस्य के विभिन्न आयाम की ओर संकेत करने केलिए ऐतिहासिक प्रतीक अधिक उपयुक्त समझा जाता है । काव्य में ऐतिहासिक प्रतीकों के संयोजन से राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय भावना उद्दीप्त होती है । माथुर ने अपनी कविता में आज की राजनीतिक दुर्दशा को यों ही अंकित करने केलिए इतिहास के सुप्रसिद्ध और कुप्रसिद्ध चरित नायकों का प्रतीकात्मक विधान किया है ।

"युगारम्भ" में माथुर ने हिंसा, अत्याचार, बर्बरता का संकेत ऐतिहासिक प्रतीक चंगेज द्वारा किया है -

"आदम का युग बहुत
भटका अंधेरे में
चंगेज़ी न्यायों के
खून भरे घेरों में ।"[68]

कहीं कहीं माथुर ने अन्याय और बर्बर शासकों के लिए इतिहास के अनेक पात्रों को एक साथ प्रतीकात्मक चित्रण किया है । "नीरो", "सीज़र", "चंगेज़" "तैमूर" जैसे प्रतीक इस श्रेणी के हैं ।

"अत्याचारों के लौह कवच
सीज़र की असि-मूठों से ले डुबेलों तक
नीरो, चंगेज़ों, तैमूरों के अट्टहास
उठकर सहसा हैं आ जाते
फिर डूब जाते हैं काल-चक्र की धुन्धों में ।"[69]

कवि ने "कोहनूर", "तख्त ताऊस" के प्रतीक की नियोजना भी की है । ये प्रतीक वस्तु विशेष के हैं -

"देश के इतिहास भी बनते बिगड़ते
आज, जैसे ताज सुधि के
युगों की लंबी पलक से टपक पड़ते
लाख कोहनूर गिरते धूलिका में
उलटते हैं एक क्षण में तख्त ताऊसी हजारों ।"[70]

यहाँ "तख्त ताऊसी" तथा कोहनूर से किसी एक काल विशेष से बढ़कर सार्वकालिक, सार्वदेशीय वैभव के अन्ततः विनष्ट हो जाने की ओर संकेत किया गया है ।

आगे की पंक्तियों में कवि ने इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना को प्रतीक रूप स्वीकारा है ।

"गोपा से सोते बुद्ध की तस्वीर समोनी
गौतम बनने के पहले किस तरह मिटी थी ।[71]"

स्पष्ट है कि माथुर की कविता में उपलब्ध "सीज़र" "तैमूर" "नीरो" "तख्त ताऊसी" "कोहनूर" "गौतम" आदि के प्रतीक उनकी ऐतिहासिक सजगता को रेखांकित करते हैं । इन प्रयोगों के ज़रिये इतिहास बोध के साथ ही साथ आज की बर्बरता और अन्याय के विभिन्न पक्षों का पर्दाफाश हुआ है ।

3. पौराणिक प्रतीक

पौराणिक प्रतीक वही है जो पौराणिक कथाओं पर आधारित हो । पौराणिक प्रतीक कवि व्यक्तित्व की उस विशेष मनःस्थिति से सम्बन्ध रखता है, जिसमें वह परम्परागत मूल्यों - स्थापनाओं का पुनर्परीक्षण करता है तथा उन मूल्यों स्थापनाओं की वाहक प्रेरणाओं, संवेदनाओं को सामयिक सन्दर्भों की मांगों के अनुरूप मूल्यों के एक सर्वथा नए रचना क्रम में ग्रहण करता है ।[72]" माथुर की कविता में पौराणिक प्रतीकों का समावेश हुआ है । आधुनिक जीवन की तमाम संगतियों को शब्दबद्ध करने केलिए ऐसे प्रतीकों का आश्रय लिया है ।

माथुर ने परम्परागत मान्यताओं एवं मर्यादाओं केलिए रामकथा से सम्बन्धित शम्भु चाप को प्रतीकवत् स्वीकार किया है ।

तम तुम्हें इस यंत्र काल में
आज कोटि युग की दूरी संवादें आतीं
शम्भु चाप से अविच्छिन्न इतिहास पुराने
और वज्र विद्युत से पूरित अग्नि नयन वे
जिसमें भस्म हुए लंका के पाप हज़ारों ।[73]

"शम्भु धनु" भी माथुर की प्रतीक योजना में स्थान पा गया है ।

क्या करूँ
जो शम्भु धनु टूटा तुम्हारा
तोड़ने को विवश हूँ ।[74]

पवित्र भावना से संपन्न प्रिय केलिए कवि ने राधा को प्रतीक बनाया है ।

"किस राधा का हल्दी सा मुख /
इस उदासी चंद में आया ।[75]

"दिवालोक का यात्री" में मध्यवर्गीय लोगों के मिथ्याभिमान के अवश्यम्भावी पतन की ओर संकेत करने केलिए कवि ने "संपाति" का प्रतीक प्रस्तुत किया । "संपाति" एक गिद्ध था जिसने अपने मिथ्याभिमान से सूर्य को छूने का असफल प्रयास किया । फलत: सूर्य की प्रखर किरणों से उसके

पंख झुलस गए । वह पृथ्वी पर आ गिरा और उसका सर्व नाश हुआ । इसी प्रकार मानव का दम्भ उसके पतन का कारण बन जाता है । माथुर ने यों कहा -

> "तू उड़ा संपाति का अभिमान लेकर
> सूर्य छूने का नया अरमान लेकर
> तेजमय रवि प्यास जब आया निकटतर
> पंख झुलसे गिर पड़ा हतप्राण लेकर ।"[76]

इसमें सूर्य के प्रखर किरणों से लौट आए विज्ञान की महत्वपूर्ण उपलब्धि "स्पेसाब" की ओर वर्षों पहले माथुर ने भविष्यवाणी की है ।

"कंस" व "दुर्योधन" को आसुरी प्रवृत्तियों के, 'राम' "कृष्ण" 'गौतम' और 'गांधी' को मानवतावादी सात्विक प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है -

> नैतिकता के दीपक पर
> जले कंस दुर्योधन
> x x x
> जब जब इस धरती की
> ज्योति थकी मुरझाई
> राम, कृष्ण, गौतम और
> गांधी बन उठ आई ।[77]

भविष्य पर अपनी दानवी सभ्यता की काली छाया न पड़ने के लिए माथुर "सौमित्र-रेखा" खींचने के पक्ष में हैं । 'सौमित्र रेखा' रामायण का एक मार्मिक सन्दर्भ है जो दृढ़ता और अखण्डता का प्रतीक है ।

भर कालिमा की भीम तुली में इसे
खींच सुदृढ सीमांत में
सौमित्र रेखा सा विकम
जिससे न आगामी युगों में जा सके
जग रक्त-रंजित सभ्यता की घेर छाया दानवी ।"[78]

"तैंतीसवीं वर्षगांठ में आज की अमानवीय शक्तियों केलिए "असुर संस्कृति" का तथा मानवीय शक्तियों केलिए "सीता" का प्रतीक अपने में अनूठा है ।

जब जगत् को चाहिए फुलवारियाँ
हो रहीं तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा-सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जगाई जा रही ।"[79]

आज की दुनिया के अच्छे लोगों को राम और बुरे लोगों को रावण के प्रतीक रूप में कवि ने स्थापित किया है ।

इतने पहिये, इतने लोग, इतने ढोर
इतनी औरतें साग-सब्जियाँ, बच्चे, शोर
हे राम !
हे रावण !"[80]

स्पष्ट है कि माथुर की कविता में पौराणिक प्रतीकों की भरमार है ।

प्राकृतिक प्रतीक

प्रकृति प्रेमी होने के नाते कवि प्राकृतिक उपादानों से अपनी संवेदना के अनुरूप प्रतीकों का विन्यास करता आ रहा है । "अनुराग, विस्मय अथवा जिज्ञासा से आविष्ट होकर कभी वह उन उपादानों में अपनी चेतना का स्पन्दन खोजता है और कभी उनको मानवीय आकार प्रदान करके उनके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है ।"[81] अपनी आधुनिक संवेदना के संप्रेषण हेतु माथुर ने प्रकृति की जड या चेतन वस्तुओं को प्रतीक रूप में अपनाया है । इनमें परम्परागत प्राकृतिक प्रतीक के साथ ही साथ नए प्रतीक भी हैं जो प्रकृति से लिए हुए हैं । ऐसे प्रतीक नए अर्थ-बोध संप्रेषित करने में बिलकुल सक्षम हैं ।

कवि ने पावन स्मृति केलिए 'ओसकन' को प्रतीक बनाया है ।

सपना एक बचाते थे हम
देकर सारा सब जीवन का
एक ओसकन रस लेने को
देना चाहा मधुवन सारा ।"[82]

माथुर ने अभिव्यक्ति के कुंठित हो जाने केलिए 'स्वर पर पीत साँझ उतरना', मधुर मिलन केलिए 'प्यार का संगीत', मन के उल्लास केलिए 'मन की कविता' और 'हृदय वंशी' आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है ।

कवि ने उल्लासमय वातावरण के चित्रण केलिए प्रकृति के गतिशील रूप का चित्रण किया है ।

"दिन भर थककर दफ्तर ही में सूरज डूबा
अलमारियों, दराजों में खोया उजियाला
गोधूलि हो गई धूल से ढकी फाइलों के पन्नों पर
कब्रों का सुनसान समाया[83]।

यहाँ मानव की थकान भरी मनोवृत्ति की ओर इशारा कवि ने इशारा किया है।

<u>वैज्ञानिक प्रतीक</u>

आज के तकनीकी तथा वैज्ञानिक युग में यन्त्रवत् होते मानव जीवन की सही पहचान केलिए तत्सम्बन्धी उपकरणों, तथ्यों एवं सिद्धान्तों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करना अधिक संगत है। नये कवियों में माथुर जी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है[84]।" उन्होंने आज के यथार्थ सौन्दर्य बोध को प्रस्थापित करने केलिए वैज्ञानिक प्रतीकों को अपनाया है। माथुर की "मैनहैटन" कविता में इसकी झलक मिल जाती है।

"किन्तु नहीं
मिट सकता कभी न भविष्य मनुज का
युग का वैभव रचनेवाले ज्योति मनुज का
अणु का नाग नाथने वाले महामनुज का[85]।"

अणु का नाग नाथनेवाले महामनुज का यहाँ "अणु" संहारक शक्ति का प्रतीक है। आधुनिक सन्दर्भ में नवीन उपकरणों की विनाशकारिता का

माथुर की दृष्टि अवश्य पड़ी है । इसे अभिव्यक्त करने में तत्सम्बन्धी प्रतीक अपने आप में अनूठा है ।

माथुर से प्रणीत "पहिये" में पहियों का प्रतीकात्मक विधान हुआ है । यहाँ पहिया चिरपरिवर्तित एवं विकसित विज्ञान और संस्कृति का प्रतीक है ।

"ये पहिये हैं आधार सभ्यता संस्कृति के
प्रस्तर युग से जो ले आये हैं ऐटम तक ।"[86]

माथुर ने भाप, स्टीमर, बारूद आदि वैज्ञानिक उपकरणों और सिद्धान्तों को प्रतीक बनाकर वैज्ञानिक प्रगति के अनुरूप परिवर्तित होते हुए जीवन के यथार्थ को स्थापित किया है ।

"युग में है दिखने लगा गैस का उजयाला
चल पड़े भाप से नई मशीनों के पहिये
x x x x x x
चढ चले सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड़ ।"[87]

वैज्ञानिक प्रतीकों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।

"स्टेनगनों टैंकों की गलियों से
झुलस रहे चन्द्र शिरे जटा जूट
वेरी में उगी नागकेसर की बारूद ।"[88]

माथुर ने ईश्वर को कबीर के समान निर्गुण रूप में नहीं बल्कि परमाणु के प्रतीक रूप में देखा है ।

"फेंक दो काषाय
क्योंकि अब अव्यक्त, अधर
सूक्ष्म, निर्गुण तत्व में / जीवित धरा में
रम ठगा है / हो गया है विषम अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का
आत्मा का बम बना है ।"[89]

जाहिर है कि माथुर ने विज्ञान से सम्बन्धित प्रतीकों से आधुनिक वैज्ञानिक युग की विभिन्न विचारधाराओं एवं भावधाराओं का अनावरण किया है । उनकी इस प्रक्रिया में कहीं भी रूढ़िबद्ध यान्त्रिकता नहीं मिलती ।

यौन प्रतीक

यौन सम्बन्धी समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए जो सांकेतिक प्रतीक प्रयुक्त होते हैं वे यौन प्रतीक कहलाते हैं । माथुर ने "रेडियम की छाया" और "चूड़ी का टुकड़ा" जैसी कविताओं में इसके द्वारा यौन भावना का संयमित चित्रण किया है ।

"उन्हीं रेडियम के अंकों की छाया पर
दो छाँहों का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था ।"[90]

सभ्यता की सीमाओं का उल्लंघन किए बिना सुन्दर सरल और सहज प्रतीकों के ज़रिये यौन सम्बन्धों का चित्रण करने में माथुर सिद्ध-हस्त हैं।

गिरा रेशमी चुड़ी का
छोटा सा टुकड़ा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थी
रंग भरी उलमिलन रात में।[91]

यहाँ "चुड़ी का टुकड़ा" पूर्व मिलन की ओर संकेत करता है। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि माथुर के प्रतीक व्यापक और काव्यात्मक हैं। प्रसंगानुकूल प्रतीकों को ढूंढ निकालने तथा उन्हें अर्थ की गहराई देने में माथुर की कवि-प्रतिभा सफल हुई है। सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, प्राकृतिक, यौन प्रतीकों के द्वारा मानव जीवन की सच्चाई का माथुर ने सम्यक् विश्लेषण किया है। उनकी प्रतीक योजना में एकात्मिकता की नीरसता के बदले वैविध्य जनित मोहकता दर्शित है। उनके इस प्रयास में शब्द-भंगिमा के साथ ही साथ अर्थ-सौन्दर्य का सम्मिश्रण हुआ है।

निष्कर्ष यह है कि माथुर ने बिम्बों प्रतीकों से कविता को अलंकृत करने का जो कार्य किया वह अनूठा है। इतना ही नहीं प्रयोगवादी नयी कविता के शिल्प सजग कवियों में वे अग्रणी हैं। डॉ॰ नगेन्द्र का निम्नलिखित कथन इसका समर्थन करता है "शिल्प या क्रिया कल्प इस कवि का अपना वैशिष्ट्य है। इस क्षेत्र में उनका सौन्दर्यबोध अपने समसामयिक कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित है।[92]" वे प्रयोगवादी नयी कविता के समर्थ शिल्पी हैं।

संदर्भ
---

1. सुरेश शर्मा-काव्य शिल्प के आयाम - नगेन्द्र की भूमिका - पृ.5
2. लक्ष्मीनारायण लाल - हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास भूमिका
3. कैलाश वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - पृ.20
4. गजानन माधव मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ.61
5. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ.57
6. कैलाश वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ.29
7. डॉ. कान्ति कुमार-नई कविता - पृ.55
8. (सं.) अज्ञेय - तारसप्तक, पृ.124
9. Poetic Image is a more or less sensuous picture in words to some degree meta political with an understone of some human emotion in its context; but also charged with and releasing into the readers of special poetic emotion.

   C.D. Leavis - Poetic Image - p.22

10. अशोक वाजपेयी - तीसरा साक्ष्य, पृ.170
11. अज्ञेय - तारसप्तक - प्रभाकर माचवे का वक्तव्य, पृ.71
12. वही - पृ.28
13. जगदीश गुप्त - कवितान्तर, पृ.17
14. दिनकर - शुद्ध कविता की खोज, पृ.31
15. C.D. Leavis - Poetic Image, p.18
16. अरविन्द - सहज काव्य, पृ.48
17. अज्ञेय - तारसप्तक, पृ.189
18. नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान, पृ.129
19. हरिऔध - प्रियप्रवास, पृ.1
20. सुमित्रानन्दन पंत - पल्लव की भूमिका

21. रामदरश मिश्र - हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, पृ.24
22. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य, पृ.343
23. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.58
24. वही, पृ.84
25. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.20
26. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.43
27. कैलाश वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ.80
28. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.74
29. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.67
30. वही, पृ.96
31. वही, पृ.45
32. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.53
33. गिरिजाकुमार माथुर,- धूप के धान, पृ.80
34. वही, पृ.21
35. वही, पृ.89
36. वही, पृ.111
37. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.55
38. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ.56
39. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.104
40. वही, पृ.63
41. गिरिजाकुमार माथुर,- शिलापंख चमकीले, पृ.37
42. वही, पृ.37-38
43. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.49
44. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.72
45. वही, पृ.110
46. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.53
47. William Tindall - The Literary symbols, p.12

48. सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ.364

49. डॉ. नित्यानन्द शर्मा - आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान, पृ.21

50. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ.63-64

51. रामस्वरूप चतुर्वेदी - भाषा और संवेदना, पृ.55

52. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ.84

53. The symbols may vary in their contexts but their meaning is always clear. They gave much explanation and they give a concrete form to ideas that would otherwise be dim.

C.M. Bowra - Heritage of symbolism, p.212

54. A symbol hasbeen defined as the expression of some otherwise inexpressible truth and it is not on verbal mu or on the incidental illustrations of the theme that judgement will depend but on the insight which the poem accords into the life of the soul.'

G.S. Fraser - The Modern writer and his world, p.35

55. अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ.41

56. कैलाश वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ.75

57. William York Tindall - The Literary Symblols, p.5

58. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ.63

59. रामस्वरूप चतुर्वेदी - नई कविताएं एक साक्ष्य, पृ.24

60. केदारनाथ सिंह - आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृ.30

61. प्रभाकर श्रोत्रिय - साक्षात्कार

62. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.13

63. अज्ञेय - तीसरा सप्तक - केदारनाथ सिंह का वक्तव्य, पृ.115-116

64. कल्पना - 1960 - गिरिजाकुमार माथुर - पृष्ठांकन, पृ.33

65. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.112

66. वही, पृ.112

67. वही, पृ.112

68· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·23
69· वही, पृ·35
70· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·107
71· वही, पृ·113
72· डॉ· जगदीश गुप्त और विजयदेव नारायण साही - नयी कविता- संयुक्तांक - 5-6 मलयज, पृ·5-6
73· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण - पृ·118
74· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·87
75· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·74
76· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·93
77· वही, पृ·162-63
78· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·125
79· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·108
80· गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान, पृ·25
81· सुरेश शर्मा - काव्य शिल्प के आयाम, पृ·84
82· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·11
83· वही
84· विजयकुमारी - गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में,पृ·173
85· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·83
86· वही, पृ·33
87· वही, पृ·36
88· गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ·32
89· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·95
90· गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ·59
91· वही, पृ·65-66
92· डॉ· नगेन्द्र - कैलाश वाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजाकुमार माथुर, पृ·32

§§§§§§§§§§§§§

सातवाँ अध्याय

गिरिजाकुमार माथुर का शिल्प

2· काव्य-भाषा और छन्द

सातवाँ अध्याय

भाषा का शिल्पपक्ष

1. काव्य भाषा और छन्द

अंतरंग को अनावृत करने केलिए मनुष्य को मिले उपादानों में सर्वोत्कृष्ट, सहज और सशक्त साधन है भाषा । "मनुष्य के आत्मप्रकाशन का सबसे सबल और सक्षम माध्यम है भाषा[1]।" वह मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान और शर्त है । उसके अस्तित्व और अस्मिता वास्तव में अपनी भाषा पर निर्भर है । उसके बिना वह मनुष्य नहीं रह जाता । वह और एक जानवर मात्र समझा जाएगा । "भाषा के बिना अस्मिता की पहचान नहीं होती[2]।" भाषा में मनुष्य का व्यक्तित्व गुंजित है "मनुष्य की वैचारिक और संवेदनात्मक अनुभव निस्सन्देह उसकी भाषा से जुड़ा हुआ है[3]।" हर व्यक्ति अपनी भाषा पर अधिकार रखता है पर सबसे अधिक अधिकार साहित्यकार का है । क्योंकि वे ही भाषा का परिष्कार और संस्कार गठन और निर्माण करनेवाले हैं ।

काव्य-भाषा

बोलचाल की भाषा और काव्यभाषा में कुछ अंतर तो अवश्य है । कवि की भाषा सामान्य नहीं विशिष्ट होती है । सामान्य भाषा साधारण जनता की भाषा है । कवि की विशिष्ट संवेदनाओं के संप्रेषण में जनसाधारण की भाषा अनुपयुक्त है । विशिष्ट संवेदनाओं को प्रेषित करने तथा काव्य में सौन्दर्य का विधान करने केलिए भाषा का विशिष्ट प्रयोग कवि केलिए अनिवार्य है । नहीं तो कविता अव्यक्त और प्रभावहीन बन जायेगी । "कविता की भाषा जीवन्त ताज़गी से युक्त तथा कुतूहल उत्पन्न करने लायकी नहीं है तो उसकी भावनाएं अव्यक्त तथा प्रभावहीन रह जाएंगी[4] ।"

भाषा का विशिष्ट, असामान्य, उपयुक्त और प्रभावात्मक प्रयोग ही काव्यभाषा है । सामान्य भाषा से काव्य-भाषा की श्रेष्ठता बताते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने यों कहा "काव्य की भाषा शब्दों के रूप को बार बार अमूर्त करती है । अर्थ की स्थूलता को तोड़कर कवि उसकी अमूर्त और उन्मुक्त प्रकृति को पुन: स्थापित करता है । सामान्य भाषा तथा काव्य भाषा के स्तर पर शब्दों की यह दोहरी प्रकृति भाषा की निजी विशेषता है[5] ।" अरस्तु ने भाषा के "असामान्य प्रयोग" पर और लौंजिनस ने ने ~~भाषा/के "असामान्य प्रयोग" पर और~~ "उपयुक्त और प्रभावात्मक भाषा" पर ज़ोर दिया है । ऐसी भाषा जनसाधारण की भाषा से भिन्न है ।

आजकल कविता गद्य के निकट पहुँच गई है । लेकिन काव्य भाषा और गद्य भाषा में पर्याप्त अंतर है । गद्य की भाषा दैनंदिन जीवन में अर्थ बोध कराने केलिए प्रयुक्त जन भाषा है जबकि काव्य भाषा रागप्रेरित भावोच्छ्वासजन्य और लययुक्त होती है जिसका उद्देश्य बिम्ब प्रतीक जैसे काव्योपादानों के ज़रिये कविता में सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न करना है । रामस्वरूप चतुर्वेदी की राय में "गद्य और कविता का अन्तर बिम्ब गठन के कारण होता है[6]

वे आगे कहते हैं "बिम्ब प्रधानता: और अनिवार्यत: एक अर्थ सापेक्ष है और इसलिए रचना में काव्य भाषा या कि काव्य बनने की मुख्य प्रक्रिया है।[7]"

नए कवि ने कविता को आम जनता के निकट लाने तथा विस्तृत अनुभव क्षेत्र की समस्याओं को पर्याप्त गहराई के साथ अभिव्यक्त करने केलिए प्रचलित काव्य भाषा को नितांत अपर्याप्त महसूस किया। फलत: वे साधारण जनता की बोलचाल की भाषा में नए युग की कविता को सत्य, यथार्थ, मुक्त छन्द लय और युगीन सौन्दर्यबोध से भर दिया। परिणामस्वरूप काव्य भाषा सम्बन्धी अवबोध में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। कवि अपनी भाषिक संरचना में परंपरा के निर्वाह के साथ ही साथ तद्युगीन परिप्रेक्ष्य से प्रतिबद्ध रहता है "रचनाकार अपनी भाषिक अभिव्यक्ति में एक ओर परंपरा से जुड़ा है और दूसरी ओर अपने युग के परिप्रेक्ष्य से[8]" परंपरा तथा युगीन परिवेश से एकदम बिछुड़कर कवि की काव्य साधना संभव नहीं। अलावा इसके मौलिकता कवि की निजी सूझ है। अपनी संवेदना की मौलिक अभिव्यक्ति केलिए नए कवि ने परंपरागत जड़ बंधनों को तोड़ दिया। "सृजनशील कवि परंपरागत काव्यात्मक भाषा के दायरे को तोड़कर अपने नये कथ्य के अनुरूप काव्यभाषा का निर्माण करता है जो आरम्भ में खुरदरी लगते हुए भी अपनी अर्थवत्ता में जानदार होती है[9]।"

स्पष्ट है कि युगीन यथार्थ के संप्रेषण केलिए प्रचलित काव्य भाषा अपर्याप्त थी और नए कवियों ने इस परंपरागत काव्यभाषा के विरुद्ध विद्रोह किया और काव्य में यथार्थ के खुरदरे सत्य को अभिव्यक्त करने केलिए अनलंकृत भाषा की अनिवार्यता पर ज़ोर दिया। उन नये कवियों के अगुआ थे निराला। उनकी परंपरा में माथुर अब सृजनात्मक क्षेत्र के सारे स्तरों से संघर्ष करते हुए खड़े हैं। उनकी काव्य भाषा युगीन माँग के अनुसार अपने पुराने जामे को बदलती रहती है।

माथुर की काव्य भाषा

काव्य भाषा के सन्दर्भ में माथुर की जागरूकता संवेदना और सृजन के दोनों स्तरों पर बरतती है । उनकी मान्यता है "रचनाकार की विचारधारा यदि स्पष्ट नहीं है तो उसकी अभिव्यंजना के जो उपकरण हैं अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान अपने आप अस्वाभाविक, अधूरे, खंडित और रूप व्यक्तित्व विहीन होंगे । भाषा जानबूझकर किताबी या गढ़ी हुई होगी जिसका व्यवहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न होगा ।"[10]

माथुर की काव्य भाषा का विकास सही मायने में छायावाद तथा छायावादोत्तर काव्य-भाषा का विकास प्रस्तुत करता है । अज्ञेय के समान माथुर की भाषा-क्षमता का इतिहास विचित्र है । काव्य-भाषा का अध्ययन कवि को समझने का प्रमुख सूत्र है । उसके माध्यम से छायावाद-प्रगतिवाद के बाद आधुनिक हिन्दी कविता को भी सही दृष्टि से समझा जा सकता है । उनकी भाषा प्रारंभ में अविकसित और धीरे धीरे विकसित होती है ।

काव्य भाषा का विकास

छायावादी कवियों ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक भाषा में नए अर्थों तथा कोमल अनुभूतियों को व्यंजित करके काव्यभाषा को अधिकाधिक काव्यात्मक बनाया । यह साधारण जनभाषा से बिलकुल भिन्न थी । कवियों ने कोमल, प्रांजल, श्रुतिमधुर शब्दों पर अधिक भरोसा किया । उनके लिए शब्द प्रयोग की अपेक्षा शब्दों की अपनी बनायी सर्जनात्मक शक्ति अधिक महत्वपूर्ण है । फलत: "क्षितिज", दीपक, अश्रु, परदा, सजनी आदि से अलंकृत छायावादी काव्यभाषा रूढ़ और निरर्थक बन गयी । समस्त छायावादी कवियों में निराला अकेला कवि है जिन्होंने भाषा को अधिक प्रकृत तथा सही रूप में स्वीकारा ।

छायावाद की प्रतिक्रिया में प्रगतिवादी कवियों ने सामान्य शब्दों के प्रयोग से काव्य भाषा का हल ढूँढने का प्रयास किया । उन्होंने शब्दों का सीधा प्रयोग किया । फलत: उनकी कविता मात्र नारेबाजी बन गयी । प्राक्छायावाद युग के श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय प्रभृति स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी अपनी कविताओं में भाषा का सरल प्रयोग किया है । इसका सहज विकास छायावादोत्तर कविता में उपलब्ध है । कवि अज्ञेय केलिए यह समस्या बनी हुई थी कि सारे उपमान मैले हो गए है[11] ।

यह समस्या यहाँ तक बढ जाती है कि वे मौन से अभिव्यंजना करते है[12] । ऐसे सन्दर्भ में काव्यजगत में माथुर का प्रवेश होता है । वे काल-क्रम की दृष्टि से छायावादोत्तर कवियों के निकट हैं । किन्तु अपनी संवेदना और भाषा प्रयोग में उनसे बहुत आगे खडे हैं ।

माथुर की काव्यभाषा में विभिन्न काव्यधाराओं के भाषागत रंगों का सन्निवेश हुआ है । विशेषकर द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक भाषा से लेकर छायावादोत्तर कवियों की सरल सीधी भाषा तक । तीन भागों में बाँटकर माथुर की काव्य भाषा का विश्लेषण किया जा सकता है -

1. छायावादी काव्य भाषा
2. बोलचाल की काव्य भाषा और
3. सपाट काव्य भाषा ।

1. छायावादी काव्य-भाषा

सृजनात्मक क्षेत्र में माथुर का आगमन छायावाद के अंतिमचरण में हुआ । अत: उनकी प्रारंभिक कविताओं में तद्युगीन भाषागत विशेषताओं की

उनका मिलना स्वाभाविक ही है । इसी कारण माथुर की आरंभिक काव्य-भाषा कोमलता, प्रांजलता श्रुति-मधुरता जैसी छायावादी भाषा-छवि से मंडित है । गोया कि उनकी तद्युगीन काव्य-भाषा बोलचाल की भाषा से कोसों दूर लगती है । छायावादी काव्यभाषा के रंग में रंजित माथुर की काव्यभाषा आगे की पंक्तियों में लक्षित होती है ।

"हृदय के स्वप्निल गगन में हंस चली तुम चांदनी बन
सजल स्मृतियाँ चौंक जाती मूक उर में रागिन बन ।"[13]

यहाँ छायावादी स्यातिस्तम्भ महादेवी के गीत "विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी"[14] तथा नीचे की पंक्तियाँ कदाचित् "बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ"[15] की याद दिलाती है ।

"फिर मिलन होगा वियोगिनी
नयन तुम मिल जायेंगे तब
सुमन तुम खिल जायेंगे तब
शशि किरण की चाह में फिर उर-गगन होगा वियोगिनी ।"[16]

"कामिनी सी अब लिपटकर सो गई है
रात यह हेमंत की
दीप तन बन उष्म करने
सेज अपने कंत की
नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज मिलन तन गंध सुरभित
उस नशीले वक्ष की

वह छुवन उकसन चुम्बन अमलिन
इस बार सुधि से सलोनी हो गई है।[17]

और एक उदाहरण देखिए -

"अधर पर अब क्या सोई रात
अजाने ही मेंहदी के हाथ
मला होगा केसर की राग
तभी पुलकित पंकज सा गात।[18]"

कवि ने भौतिक जगत् के रंगीन स्वप्नों को अतिरंजित छायावादी काव्य भाषा में अभिव्यक्त किया है।

"मैं चला आज उस क्षितिज पार
स्वर्णिम स्वप्नों की जहाँ भीर
बहती सुधि की मलयज समीर
मधु के झ झरने झरते अधीर
उषा बिखराती स्मित अबीर।[19]"

प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रांकन में माथुर का तरुण हृदय अधिक रमता है। छायावादी काव्य भाषा में चित्रित यह प्रकृति दृश्य देखिए -

"संध्या आई लेकर निराशा
बिखरा सुनापन आसपास
निशि ने कुछ स्वप्न अरुणिम पर
फैलाया तिमिरांचल महान्।[20]"

संक्षेप में माथुर की प्रारंभकालीन रचनाओं में तद्युगीन छाया वादी काव्य-भाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा है। छायावादी युग में उनका रचनाकार्य शुरू होने के नाते उस काव्य भाषा की खूबियाँ और खामियाँ उनकी कविता में लक्षित होती हैं।

2• बोलचाल की काव्य-भाषा

माथुर ने महसूस किया कि छायावादी काव्य-भाषा से संयुक्त अपनी प्रारंभिक रचनाएं आम जनता से बहुत दूर है साथ ही साथ सीमित भी। उनमें समाज की समस्याओं ने अभिव्यक्ति नहीं पायी। अतः कविता और आम जनता के बीच के इस फासले को मिटाने तथा कविता में उनकी समस्याओं के साक्षात्कार केलिए कवि ने बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा के रूप में स्वीकार किया। याने काव्य भाषा को यथार्थ और व्यावहारिक बोलचाल से संयोजित किया। इसके सम्बन्ध में माथुर का ख्याल है कि "हिन्दी की नयी कविता अधिकाधिक साधारण जीवन के निकट पहुँची है, उसके उपकरण और माध्यम दोनों ही सामाजिक यथार्थ की ओर तेज़ी से अग्रसर हुई। नई पीढ़ी में भाषा शब्द योजना, उपमान चित्रों का यह रियलिज्म अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जो भविष्य की काव्य प्रवृत्तियों पर असर डालेगा। वास्तविक यथार्थ गद्य में और विशेषकर कहानी उपन्यास में प्रेमचन्द के बाद से काफी आ चुका था कविता में यही चीज़ बोलचाल की भाषा को लेकर आ रही है।[21]"

प्रचलित, कृत्रिम, प्रभावहीन तथा गढ़ी हुई काव्यभाषा में अनुभूति की स्पष्ट एवं पूर्ण अभिव्यक्ति की असमर्थता प्रकट करते हुए माथुर ने काव्य-भाषा में परिवर्तन की अनिवार्यता के साथ ही साथ बोलचाल की भाषा को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है।

फलत: व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित बोलचाल की भाषा काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत हुई। बोलचाल की भाषा को काव्य-भाषा बनाने के लिए क्षमता रखना चाहिए। इसके लिए शब्दों के नाद सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य की असाधारण पहचान अनिवार्य है। नए कवियों में माथुर में यह क्षमता सर्वाधिक है।

माथुर की परवर्ती बहुतेरी कविताओं में बोलचाल की भाषा काव्य भाषा बन गई है। इस सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि मात्र भाषागत नवीनता से कविता की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती। अगर कवि के चिन्तन में उदात्तता नहीं है तो सारा प्रयत्न उपहास्य बन जायेगा और कविता के सारे उपकरण अस्वाभाविक और अधूरा रह जायेंगे। इसलिए बोलचाल की भाषा को काव्य-भाषा बनाने के साथ ही साथ कवि की संवेदना स्वस्थ और स्पष्ट होनी चाहिए। अत: बोलचाल की काव्यभाषा तभी सक्षम और सार्थक निकलती है जब भाषा के साथ ही साथ कवि का भावबोध भी प्रौढ़ और उदात्त हो। भाव और भाषा की प्रौढ़ता माथुर की प्रस्तुत पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

"समय आगे बढ़ा जाता
समय पीछे रहा जाता
समय का नाम मिट जाता।"[22]

यह अंश बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। "युवा मित्र" के विरह पर अपनी हमदर्दी प्रकट करनेवाले कवि का विचार कितना स्पष्ट और भाषा कितना सरल और सुलझी हुई है।

"मेरे विरही युवा मित्र बर
तुम जिस दु:ख से परेशान हो

वह सचमुच है दु:ख नहीं कोई जीवन में
अपनी दु:ख है और बहुत से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड़ सा
वह तो कागज सा हलका है ।"[23]

माथुर की बोलचाल की काव्यभाषा में भी अर्थ सौन्दर्य और नाद सौन्दर्य का मणिकांचन संयोग का दिग्दर्शन हुआ है -

"प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मद लगते यौवन में
रस बरसानेवाले आकर
विष ही छोड़ गये जीवन में ।"[24]

"आदमी का अनुपात" में माथुर ने आधुनिक मानव की विडम्बना को बोलचाल की भाषा में उजागर किया है ।

"दो व्यक्ति कमरे में
कमरे से छोटे
कमरा है घर में
घर है मुहल्ले में
x x x
ईर्ष्या अहं स्वार्थ घृणा अविश्वास लीन
संख्यातीत शंख सी दीवारें उठाता है
अपने को दूजे का स्वामी बताता है
देशों की कौन कहे
एक कमरे में
दो दुनिया रचाता है ।"[25]

स्पष्ट है कि माथुर आधुनिक जीवन की गहरी समस्याओं को बोलचाल की सहज और सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं। उनकी कविताएं बोलचाल की काव्य भाषा तथा आधुनिक जीवन के यथार्थ की दस्तावेज हैं। उनकी बोलचाल की काव्यभाषा प्रयोगवादी नयी कविता के स्तर की है।

सपाट काव्य भाषा

समकालीन कविता की भाषागत प्रमुख विशेषता सपाट बयानी है। समकालीन कवि समकालीन समाज में व्याप्त अनीतियों एवं अत्याचारों के प्रति अपने आक्रोश और असमाधान को बिना किसी छिपाव के या आलंकारिक शब्द प्रयोग के आम जनता के सामने प्रस्तुत करता है। याने समकालीन कवि सपाट बयान करता है। सपाट बयानी की यह प्रवृत्ति बिलकुल नयी नहीं। उसके बीज द्विवेदीयुगीन कविता में भी द्रष्टव्य है। किन्तु उसमें छन्दों का बंधन था। समकालीन कविता उस बंधन से एकदम मुक्त होकर सपाट बयान केलिए बिलकुल स्वतंत्र खड़ी है। माथुर की कुछेक कविताओं में उसका प्रस्फुटन हुआ है।

एक "अधूरा आदमी" में माथुर ने समकालीन जीवन में व्याप्त सिफारिश की ओर संकेत करने केलिए सपाट भाषा को काव्य भाषा के स्तर पर प्रतिष्ठित किया।

"नौकरी में वधू में मापदण्ड में
इंटरव्यू में
पेपर में फेयर में
सिफारिश माने योग्यता।"[26]

माथुर की शब्द योजना

कविता आद्यन्त शब्द है । कवि शब्द के ज़रिये ही कविता रचता है । इसकी ओर संकेत करते हुए मान्कजोरित बोल्टन ने यों कहा "कविता शब्दों की संरचना है अत: इसके स्वरूप की पहचान और परख का आधार शब्द ही है । वही वस्तु निष्ठ कसौटी है।[29]" कविता में शब्द की प्रमुखता पर ज़ोर देते हुए अज्ञेय ने कहा कि कविता अभिव्यक्ति में शब्द है । सार्थक शब्द योजना से ही अनुभूति का स्थापन संभव है । इसलिए कविता सबसे पहले और अंत में ही शब्द है । "काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंतमें भी यह बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।[30]" अचूक शब्द प्रयोग कविता में नयी अर्थवत्ता और गहराई लाता है । "शब्द ही कविता में अर्थनिर्धारित करने की इकाई है । गद्य के समान वाक्य नहीं।[31]" अत: कविता में शब्द का महत्व अनिवार्य और असंदिग्ध है । संक्षेप में कविता शब्द है ।

कविता में संप्रेषण और अर्थ बोध का सीधा सम्बन्ध शब्द से है । कवि के विशिष्ट शब्द अर्थ के विभिन्न आयामों को निर्धारित, नियन्त्रित एवं परिचालित करते हैं । मुरे ने इसका समर्थन यों किया "विशिष्ट शब्द केवल भावानुभूति के वाहक ही नहीं होते वे उसे रूप भी देते हैं, परिचालित एवं नियन्त्रित भी करते हैं।[32]"

आज का कवि सामान्य शब्दों को ग्राह्य कर सापेक्ष्य अर्थों के संप्रेषण में संलग्न है । अत: कवि सार्थक शब्दों की खोज में सतत निरत रहता है । "मेरी खोज भाषा की खोज नहीं है केवल शब्दों की खोज है । कवि का उद्देश्य केवल शब्द की निहित सत्ता का पूरा उपयोग करना नहीं बल्कि उसकी जानी हुई संभावनाओं से परे तक उसका विस्तार करना है।[33]" इस सन्दर्भ में माथुर की

प्रासंगिकता है । उन्होंने शब्दों के पुराने रूढ़ संस्कार को तोड़कर उनमें नया संस्कार भर देने की अथक कोशिश की । इसके अतिरिक्त प्रचलित रूढ़ शब्दों के बजाय नवीन सार्थक शब्दों को गढ़कर काव्यानुभूति को असीम सम्भावनाओं के परे ले जाने का प्रयत्न किया है । उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रचलित शब्दों में नया अर्थ भरने, नए नए शब्द गढ़ने की जागरूकता सदैव वर्तमान है । स्वयं कवि के ही शब्दों में -

> "तुम शब्दों को उनके अर्थ से उखाड़कर
> तारों तार
> कीलों की तरह ठोकते रहे बार बार ।"[34]

माथुर ने अपनी अधोई काव्यभाषा के लीक से हटकर अपनी अलग काव्य-भाषा के निर्माण का उपक्रम किया है । इस निर्माण प्रक्रिया में कवि ने तत्सम शब्दों की अपर्याप्तता महसूस कर उपेक्षित देशज और तद्भव शब्दावली को सक्षम बनाने का सक्रिय कार्य किया । उन्होंने देशज तथा तद्भव शब्दों को अपर्याप्त समझकर कहीं कहीं विदेशी तथा विज्ञान से सम्बन्धित शब्दों का उपयोग प्रसंगवश किया है । कहीं स्वनिर्मित शब्दों का कहीं क्रिया पदों के तद्भव और जन प्रचलित रूप को चुना है । संक्षेप में माथुर की रचनात्मक प्रक्रिया अनुभूति के सार्थक संप्रेषण के लिए सक्रिय रही और शब्दों को नया संस्कार देने में सक्षम भी ।

माथुर की कविता में निम्नलिखित प्रकार के शब्दों का चयन हुआ है ।

1. तत्सम शब्द	5. वैज्ञानिक शब्द
2. तद्भव शब्द	6. स्वनिर्मित शब्द
3. लोकभाषा के शब्द	7. विशेषण शब्द
4. विदेशी शब्द ।	

1. तत्सम शब्द

माथुर की प्रारंभिक रचनाओं की भाषा तत्सम शब्दों से संयुक्त है । तत्सम शब्दों का अर्थ-संचरण कोश पर निर्भर रहता है । इसके अधिकतर शब्द शिष्ट और नागरिक भावधारा से जुड़े हुए हैं । अत: इसके प्रयोग में अर्थ-संचरण अवरुद्ध सा है । माथुर ने "सौमित्र"[36] "निष्ठुर"[37] "पूजन"[38], संपत्ति,[39] उत्सव[40] जैसे तत्सम शब्दों का प्रसंगानुसार प्रयोग किया है । तत्सम शब्दावली की सीमाओं को महसूसकर माथुर ने अपनी सर्जनात्मकता की पूर्णता केलिए तद्भव शब्दावली की तलाश की । फलत: उनकी भाषा विकास पाती रही ।

2. तद्भव शब्द

समसामयिक जीवन सन्दर्भों की अभिव्यक्ति केलिए माथुर ने तद्भव शब्दावली का प्रयोग किया है । सर्जनात्मक स्तर पर इसका प्रयोग अधिक सम्भावनाएं खोल देता है । इसके प्रयोग से भाषा में एक प्रवाह और नैरन्तर्य की सृष्टि होती है । इसमें कवि की देश-भक्ति तथा सामाजिक संसक्ति गुंजित है । संपृक्तता इसमें अधिक उभरती है । काव्य रचना प्रक्रिया के दौरान तद्भव शब्दावली में जनसाधारण के व्यवहार के कारण बनी बनाई काव्यात्मकता कम और सर्जनात्मक उपयोग की संभावना अधिक होती है । अलावा इसके तद्भव शब्दों में पाठक का अपना जातीय संस्कार अधिक प्रकट है । अत: उस पर आधारित बिम्ब को आत्मसात् करने तथा उसे पुन: सृजित करने की प्रक्रिया में कवि अधिक सक्रिय होने आसानी से हो पाता है । उनकी प्रारंभिक रचनाओं में तत्सम शब्दावली पर अधिक बल दिया गया है लेकिन बाद की रचनाओं में तद्भव शब्दों की ओर अधिक मोह प्रकट होता है ।

तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गई हो
तुम्हारी देह मेरे भीतर तान देती है
किसी जंगली गीत की बहती हुई
अजनबी लय की तरह लगातार ।[41]

3· लोकभाषा के शब्द

लोक शब्दावली ग्रामीण अंचलों के प्रति पक्षपात व्यक्त करती है । माथुर ने लोक शब्दावली से भी अपने शब्द भण्डार को समृद्ध किया है । कुठा,[42] सतिए,[43] आर्त,[44] अलोप,[45] रुंद,[46] कांवर,[47] बेहरा,[48] समई,[49] टगर,[50] परिया,[51] आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

4· विदेशी शब्द

माथुर ने अपनी कविताओं में यत्र तत्र अंग्रेज़ी शब्दों का सफल प्रयोग किया है । इनमें कार,[52] मार्फ़ीन,[53] ट्रेन,[54] प्लेटफार्म,[55] बकर्स,[56] राकेट,[57] ऐटम,[58] स्टीमर,[59] बम,[60] रेडियम,[61] गैस,[62] आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

5· वैज्ञानिक शब्द

ज्ञान विज्ञान के इस युग में तत्सम्बन्धी सन्दर्भों की विवृत्ति केलिए माथुर ने वैज्ञानिक शब्दों को भी गढ़ा है । उदाहरण के तौर पर श्वास-रज[63] और नागदम[64] ले सकते हैं "श्वास-रज" का प्रयोग अणु विस्फोट में

पदार्थ के भस्म होने के रूप में तथा नागफन का अणुविस्फोट के धंगस रूप धुआबादल के अर्थ में हुआ है ।

6. स्वनिर्मित शब्द

माथुर ने प्रसंग की मांग के अनुरूप नवीन शब्दों के निर्माण करके हिन्दी के शब्द भण्डार की श्रीवृद्धि की है । वे अद्भुत शब्द शिल्पी हैं । उनके स्वनिर्मित शब्दों में उल्लेखनीय हैं, चन्दरिमा[65] (चन्द्रमा की आभा) मटीली[66] (मिट्टी के रंग की), सिमूम[67] (अत्यन्त गर्म रेगिस्तानी हवाएं), हम्मादा[68] (पथरीला रेगिस्तान) अतिमात[69] (आत्यन्तिक), पवित्र बामन[70] (रजीमेंटेशन), वैसन्दर,[71] (यज्ञ की अग्नि), सुनैली[72] (सुनहरी) आदि ।

7. विशेषण शब्द

माथुर की कविताओं में सार्थक विशेषण शब्दों के प्रयोग की प्रचुरता है । उन्होंने क्रियाओं से बनाए गए विशेषण और रोमांटिक विशेषण का प्रसंगवश प्रयोग किया है ।

1. क्रिया पर आधारित विशेषण

"नभ पोंछ स्क्रेपर ।"[73]

यहाँ नभ पोंछ विशेषण क्रिया पर आधारित है ।

2· रोमांटिक विशेषण

रोमांटिक विशेषण में रूप, रंग, स्पर्श आदि संवेदनाओं को संवेद्य बनाने की क्षमता वर्तमान है ।

(अ) रूप, रंग सम्बन्धी विशेषण

"यह धुली अनमनी सुनहरी धूप"[74]
"नरम मखमली रंग धुले आकाश में"[75]
"मोरपंखी रात आकर निकल जाती"[76]

यहाँ धुली, सुनहरी, नरम मखमली, मोरपंखी, जैसे शब्द रूप रंग सम्बन्धी संवेदनाओं को संप्रेषित करनेवाले हैं ।

गंध संवेदन सम्बन्धित विशेषण

अ· "सोंधे तन गंध भरे आंचल को"[77]
आ· "हल धूसर, सांवर धरती की सोंधी उसास"[78]
इ· "सोंधी धरा गंध सी जिन्दगी"[79]

यहाँ सोंधे और सोंधी गंध को गुम्फित करनेवाले रोमांटिक विशेषण हैं ।

स्पर्श संवेदनों को संवेद्य बनानेवाले विशेषण

(क) "हवा बहती कटीली"[80]   (ख) "हिमानी रात"[81]

अलावा इसके माथुर ने संस्कृत की उक्तियाँ, लोकोक्ति तथा मुहावरे, विशेषण आदि को भी प्रस्तुत किया है ।

1. उक्तियाँ

(क) "मुहूर्त ज्वलितं श्रेयो"[82]
(ख) "या निशा सर्वभूतानां"[83]

2. मुहावरे व लोकोक्तियाँ

अ. "गोफन से फेंके हुए पत्थर सी"[84]
आ. "सूनी बड़ी आँखों से देखा करे रात भर"[85]
इ. "धूप मेल गाड़ियाँ
उड़ती हुई हाथों के तोते सी ।"[86]

रंग योजना

रंग योजना की दृष्टि से भी माथुर की कविताएं उल्लेखनीय हैं । रंगों के उचित प्रयोग से चित्र को अधिक यथार्थ बना सकता है । रंगों के प्रति कवि की जागरूकता विचार एवं रचनात्मक स्तर पर बरतती है । उन्होंने स्वयं यह दावा की, "वातावरण चित्रण के डिटेल में रंगों का आधार विशेष रूप से रहा है, किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छायों के आवरण में लिपटा पसंद करता हूँ । क्योंकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल में कला की दूरी देखता रहा है ।"[87] उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं है। माथुर की "रात हेमंत की", "वसंत की रात", "आज केसर रंग रंगे वन", "सावन के बादल" आदि कविताएं इसकी अच्छी मिसालें हैं । इसके सेतुल द्वारा चित्र को अधिक मोहक

बनाने की कोशिश की गई है । उनकी रोमानी कविताओं में रेशमी रंगों का तथा क्लासिकल कविताओं में गहरे रंगों का प्रयोग हुआ है । "दियाधरी" तथा "ढाकबनी" जैसी कविताएं लोकचेतना के रंग में रंगी हुई हैं ।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि माथुर की काव्य भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम न रहकर कवि के समग्र व्यक्तित्व का तथा सार्थक अभिव्यक्ति की सतत तलाश का समर्थ वाहिका बनकर काव्य कथ्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है । काव्य-भाषा को लयात्मक और संगीतात्मक बनाने तथा समृद्ध करने में माथुर का योगदान चिरस्मरणीय है । तत्सम, तद्भव, विदेशी, वैज्ञानिक, स्वनिर्मित शब्दों का माथुर ने सर्जनात्मक स्तर पर सफल प्रयोग किया है । वे अजस्र शब्द शिल्पी हैं । विभिन्न रंगों से रंजित माथुर की काव्यभाषा का विकास छायावादोत्तर काव्य भाषा के निर्माण का इतिहास है ।

माथुर की छन्द योजना

छन्द ध्वनियों का संगठन या नियमन है । प्रत्येक कवि अपने हृदय के तारों की झंकार को छन्द के ज़रिये ही दूसरों को सुनाता है । विशेष सुर के संग विशेष सुर के संयोग से ध्वनिखंड में एक समखंड उत्पन्न होता है । ताल उस समखंड को गति प्रदान करता है । अर्थमयी भाषा तथा संगीत के मणिकांचन संयोग से छन्द की सृष्टि होती है । वह भावों का परिष्कार तथा कोमलता का निर्माण करता है । मनुष्य को आह्लादित करने के साथ ही साथ उसे संस्कृतात्मा बनाता है ।

युग युगों से कविता के क्षेत्र में छन्द का अतिशयपूर्ण प्रभुत्व रहा है विभिन्न युग के आचार्यों ने इस विषय पर गहराई से मनन-चिन्तन किया है ।

ऐसा माना जाता था कि कविता में छन्द और अलंकार का होना अनिवार्य है। संस्कृत तथा हिन्दी के वरिष्ठ आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित छन्दशास्त्र का प्रयोग हिन्दी कविता के क्षेत्र में अब तक होता रहा है। यह क्रम छायावादी युग तक चलता रहा है। कवि कर्म का लक्ष्य ही रस निष्पत्ति तथा छन्द योजना मानता आया है। पर छायावाद के प्रभुत्व के समय युगद्रष्टा और युगस्रष्टा कवि निराला ने महसूस किया कि छन्द बंधन है उससे कविता की मुक्ति अनिवार्य ही है। फलत: पारम्परिक और रीतिकालीन स्वरूप को उन्होंने अवदस्थ कर दिया और कहा, "मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रति प्रतिकूल आचरण नहीं करता उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने केलिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र उसी तरह कविता का भी हाल – "।[88] अत: छन्द की नए सिरे से व्याख्या प्रारंभ हुई।

निराला ने जिस छन्द-मुक्ति के क्रांतिकारी कार्य का उपक्रम किया उस पर अधिक जोर पंत के "पल्लव" की भूमिका में गूंजित है। "यह स्वच्छन्द छन्द" ध्वनि अथवा लय पर चलता है। जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर नाद में उतरता, चढ़ाव में मन्द गति, उतार में क्षिप्रवेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता छाँटता, अपनेलिए ऋजु कुंजित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार यह छन्द भी कल्पना तथा भावना के उत्थान-पतन आवर्तन-विवर्तन के अनुरूप संकुचित प्रसारित होता, सरल-तरल ह्रस्व-दीर्घ गति बदलता रहता है।"[89] उनकी राय में अनुभूति की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति केलिए छन्द बिलकुल बन्धन ही नहीं अनावश्यक है। छन्द के बजाय युग की वाणी के अविच्छिन्न संगीत पर बल देते हुए उन्होंने अपनी कविता में यों लिखा –

"खुल गये छन्द के बन्ध,
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास ![90]"

नयी कविता के छन्द प्रयोग के सन्दर्भ में प्रभाकर माचवे ने छन्द को कृत्रिम, शून्य बाह्य पाश कहा । "कविता छन्द बंधन से मुक्त हो, यानी इस प्रकार की बंधाए छन्द से छुटकारा पाने से उसका कुछ नहीं बिगड़ता, क्योंकि छन्द एक कृत्रिम बाह्य पाश है । पुराने छन्द प्रकार अब चमत्कार शून्य हो गए हैं ।[91]"

छन्द के बंधन को तोड़ने पर भाव और भाषा का पूर्णत: सामंजस्य निभाया जा सकता है । इसकेलिए कविता में लय पर ज़ोर दिया जाता है । इसके अभाव में मुक्त छन्द का अस्तित्व नहीं रह जाता । इसकी ओर संकेत करते हुए धनंजय वर्मा ने यों कहा, "मुक्त छन्द तो वह है छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है केवल प्रवाह कविता में छन्द का सा ज्ञान कराता है । वह मुक्त भी छन्द भी ।[92]" मुक्त छन्द जहाँ एक ओर अप्रिय बंधनों से मुक्ति पाना चाहता है वहाँ लय और अन्विति भी बनाए रखना चाहता है । इसलिए मुक्त छन्द का कोई व्यवस्थित ढाँचा नहीं । वह स्वच्छन्द प्रवाहमान है, "मुक्तछन्द स्थिर और ठहरा हुआ झील का जल न होकर सतत प्रवाहमान तथा गतिशील झरने का जल है, जिसकी अलग गति में एक लय है, संगीत है, पूर्णाभिव्यक्ति है तथा रस है ।[93]"

"तारसप्तक" के कवियों ने छन्द बन्धन से अपनी कविता को बचाने का भरसक प्रयत्न किया है । वे केवल छन्द पर ही नहीं सृजनात्मकता को रोकनेवाले सारे बंधनों को तोड़कर कविता की मुक्ति केलिए संघर्ष करने

केलिए कमर कसे हुए थे । छन्द की मुक्ति की घोषणा करने के साथ ही साथ इन कवियों ने कविता में लय की आवश्यकता पर बारंबार ज़ोर दिया है । कविता की आत्मा वास्तव में लय है । लयहीन कविता केवल ही नहीं गद्य है । लयहीन कविता 'आज की कविता में लय को अनावश्यक कहना एक भूल होगी क्योंकि लय को छोड़ देने पर कविता कविता नहीं रह जाएगी ।'[94]

अभिव्यक्ति के आत्मसंघर्ष जैसे कवि मुक्तिबोध ने भी कविता पर लय की आवश्यकता पर विचार किया है 'आज की कविता कथात्मक गद्य है, अतः उसमें गणित यंत्रीय छन्दों का स्थान नहीं है किन्तु लय तत्व अवश्य अपेक्षित है ।'[95] अज्ञेय ने भी कविता के लय तत्व की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है । उनका ख्याल है कि 'आज की कविता बोलचाल के निकट तो जाना चाहती है, किन्तु गद्य से वह भिन्न भी रहना चाहती है । अतः गद्य से भेद बनाए रखने केलिए उसने लय को अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लिया है । इस प्रकार एक तरफ वह छन्द के बंधन तोड़ती है तो दूसरी ओर संगीत यानी गेय तत्व को अधिक अपनाना चाहती है ।'[96]

जगदीश गुप्त की दृष्टि में मुक्त छन्द नयी संवेदना का समर्थ वाहक है । 'छन्द को मुक्त करने या छन्द से मुक्ति पाने का उद्देश्य कभी भी कविता को नहीं रहा । उसकी वास्तविक आवश्यकता कविता को नये युग की रचनाओं का समर्थ वाहक बनने के उद्देश्य से उत्पन्न हुई है ।'[97] स्पष्ट है कि कवि मानस की संवेदनाओं, कल्पनाओं, प्रभावों तथा तीव्र विचारों को एक साथ उपस्थित करने केलिए मुक्त छन्दों का प्रयोग अनिवार्य हो गया है कवियों और गद्य लेखकों का अन्तर इसने मिटाने का प्रयत्न दिया है । नये छन्द कविता की नवीनता का प्रमाण होते हैं । जैसे कि नई कविता में मुक्त छन्द कभी निश्चित लय को लेकर चलते हैं कभी लय वैविध्य को लेकर भी ।

निराला ने जिस संघर्ष को काव्य जगत में प्रस्तुत तथा प्रशस्त किया उसे बाद के कई कवियों ने आगे बढ़ा दिया । पंत, अज्ञेय, माचवे,

माथुर आदि उनमें प्रमुख हैं । पर अज्ञेय को मुक्त छन्द के प्रयोग में वांछित सफलता नहीं हुई । क्योंकि उसमें नाद सौन्दर्य का अभाव परिलक्षित होता है । छन्द मुक्त कविता का प्राण भाषा और अर्थ का लय होना चाहिए । नहीं तो कविता प्राण तत्व से वंचित रह जाएगी । वरिष्ठ कवि अज्ञेय की कविता में नाद सौन्दर्य का अभाव द्रष्टव्य है । फलत: कविता में सरसता नहीं । अज्ञेय के मुक्त छन्द प्रयोग की आलोचना करते हुए प्रभाकर माचवे ने कहा, "अज्ञेय के मुक्त छन्द में सरसता न आ पाने के कारण उसमें नाद माधुर्य की जो एक मुलायम अन्तर्धारा चाहिए, उसका अभाव है, छन्द की गति भी कहीं कहीं टूट जाती है।[98]"

माथुर का मुक्तछन्द

प्रयोगवादी नयी कविता के प्रमुख कवि माथुर की कविता के मुक्त छन्द में नाद सौन्दर्य तथा अर्थ सौन्दर्य का अद्भुत समावेश हुआ है । निराला की कविता में अर्थ और नाद का जैसा अद्भुत मेल मिलाप हुआ है वैसा प्रयोगवादी नई कविता में गिरिजाकुमार माथुर में हम फिर से पा सकते हैं । उनकी कविता में यति, ध्वनि-सामंजस्य और तुक की स्थिति पर्याप्त मात्रा में हुई है । वे मूलत: मुक्त छन्द के समर्थक तथा कविता में लय तथा नाद सौन्दर्य के प्रतिष्ठापक हैं । माथुर के मुक्त छन्द, लय और नाद सौन्दर्य के सम्बन्ध में नगेन्द्र ने यों कहा, "नयी कविता गद्य की निविडता में उलझकर अपना संगीत खोती जा रही है । आज जब अज्ञेय से लेकर छोटे छोटे कवि तक व्याप्त शब्द और स्वर लय के संगीत का यह दारिद्र्य नये कवियों की क्रियाविधि पर छाया हुआ है और ये कवि कविता को संगीत से मुक्त करने का झूठा दम्भ करते हुए अपने अभाव को छिपाने का निष्फल प्रयत्न कर रहे हैं - गिरिजाकुमार माथुर की कविता के शब्द विधान और स्वर लय विधान में अंतर्व्याप्त संगीत

उनके पृथक् वैशिष्ट्य का प्रमाण है । मेरा विश्वास है कि वर्तमान युग के छन्द-मय शिल्पियों में उनका स्थान मूर्धा पर होगा ।"[99]

स्पष्ट है कि माथुर कविता में संगीत तत्व के समर्थक हैं। अन्य नये कवियों ने जहाँ भावपक्ष और बिम्ब पक्ष का समर्थन करते हुए मुक्त छन्द की आवश्यकता पर बल दिया वहाँ माथुर ने उनसे कुछ आगे बढ़कर कविता में भावपक्ष और बिम्ब पक्ष के साथ ही साथ नादपक्ष की महत्ता घोषित की । "भावपक्ष, बिम्बपक्ष और नादपक्ष के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्टतया पहचाना जाय तथा यह स्वीकार किया जाय कि इनमें से कोई भी तत्व गौण नहीं है, सभी का समान महत्व एवं अनिवार्यता है । किसी भी एक तत्व के छूट जाने से कविता निष्प्रभ रह जाती है ।"[100]

मुक्त छन्द के सन्दर्भ में माथुर की जागरूकता वैचारिक एवं सर्जनात्मक दोनों स्तरों पर बरतती है । उन्होंने अपने को मुक्त छन्द के समर्थक की दावा की । "मुक्त छन्द का मैं ने संपूर्ण विधान रचा है । मुक्त छन्द को दो भागों में विभक्त किया है, वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर .... जब तक वे अनुच्चरित अनएक्सप्टेड वर्ण पर समाप्त न होकर उच्चरित पर समाप्त होते हैं । इस भाँति कवित्त के विरामों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्त छन्द पंक्तियाँ निर्मित की है । सवैये के विरामों पर स्थित एक नये प्रकार का बहुत संगीतमय मुक्त छन्द लिखा है । "आज है केसर रंग रंगे वन" कविता में एक ही प्रकार का मुक्तछन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ । यदि उच्चरित वर्ण विन्यास [सिलेबल] से पंक्ति आरंभ हुई हो तो समस्त पंक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारंभ होनी चाहिए । पंक्तियों के विरामों की ध्वनि मात्राएं पूर्णतः सम एवं शुद्ध मानता हूँ ।"[101] उनकी यह उक्ति मात्र एक घोषणा नहीं बल्कि उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान इसका भली-भाँति परिचय भी दिया है ।

आज की जटिल अनुभूतियों, बौद्धिक तथा वैचारिक संवेदनाओं के सही संप्रेषण के लिए छंद बंधन का अस्वातन्त्र्य महसूस करते हुए माथुर ने अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द भावभूमि की तलाश की। परिणामतः उन्हें मुक्त छन्द का साक्षात्कार हुआ। इस नये मार्ग पर आत्माभिव्यक्ति किए बिना माथुर ने इसमें कुछ नवीनता भी लाने का प्रयत्न किया। परंपरागत प्रचलित छन्दों को अपनी नयी मानसिकता के अनुकूल कुछ परिवर्तन करके अपनी अनुभूति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की। इस के लिए लय पर अधिक ज़ोर दिया है। माथुर के शब्दों में "कविता छन्द से मुक्त तो हो सकती है किन्तु लय से मुक्ति संभव नहीं है।"[102]

अतः कवित्त, सवैये, घनाक्षरी जैसे छन्दों के सांचे में ढलित माथुर के मुक्त छन्द की लयात्मक कविताएं नयी कविता के सन्दर्भ में श्रेष्ठ हैं। इस सन्दर्भ में शिवकुमार मिश्र का कथन संगत प्रतीत होता है। "माथुर जी अपने वैविध्य प्रयोगों के बल पर न केवल अपने मुक्त छन्द को अधिक सुघरा बनाने में सफल हुए हैं अपितु उन्होंने उसे एक सहज संगीतात्मकता भी प्रदान की है। उनका मुक्त छन्द चाहे वह कवित्त का आधार लिए हो चाहे सवैये का चाहे गजल अथवा बहर की लय पर आधारित हो, चाहे किसी अन्य लोक प्रचलित माध्यम पर, सब में लय का समावेश पूरे आकर्षण के साथ मिलेगा।"[103]

'आज है केसर रंग रंगे वन' में माथुर ने सवैये को तोड़कर मुक्त छन्द की सृष्टि करके संगीतात्मकता और लयात्मकता उपस्थित की। देखिए -

"आज है केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन
की खिली पीली कली-सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छांह सा,
बोलती आंखों में

पहिये बसंत फूल का रंग है ।[104]

"शाम की धूप" में उर्दू की बहर को तोड़कर उसके काल-मान और लय मान के आधार पर नया मुक्त छन्द गढ़ा है ।

"चल पड़ी तेज़ हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमाई
कट गया दिन का उजेला रास्ता
जिसपे सूरज के चमकते पहिये
शाम की देर तक चले जाते ।[105]

"नये साल की सांझ" में वातावरण भंगिमा केलिए गज़ल के काल-मान पर मुक्त छन्द का विन्यास किया है ।

ये नये साल की है सांझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब गई
उठ रहा है वह नया दूज का चांद
दुधिया चांद रजत हंसली सा ।[106]

भाववस्तु की अभिव्यक्ति में नव्यता लाने केलिए माथुर ने छन्दों को तोड़ा मरोड़ा है । उन्होंने स्वयं कहा है, "जिस पंक्ति में मेरा कथ्य पूरा हो गया है किन्तु छन्द के अनुसार चरण की मात्राएं या गतियां पूरी नहीं होती उसे मात्र शुद्ध रखने केलिए अनावश्यक शब्दों, पर्यायों या विशेषणों की भरती नहीं की, जान बूझकर न्यूनाधिक रहने दिया है ।[107] माथुर के इस कथन की पुष्टि 'छाया मत छूना मन' शीर्षक कविता करती है ।

"धन है, न वैभव, मान है, न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिम्ब केवल मृगतृष्णा है
हर चंद्रिका में छिपी, एक रात कृष्णा है।"[108]

यहाँ छन्द की दृष्टि से "में" एक मात्रा के शब्द है लेकिन कवि ने "में" को दो मात्रा रखकर छन्द सम्बन्धी परम्परागत मान्यता को बदल दिया है।

माथुर की "अनकही बात" छन्द मुक्ति को प्रस्तुत करती है।

"खेल से
पल्ला जो उँगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा नहीं।"[109]

इन पंक्तियों में जो 'पल्ला' शब्द है उसमें एक मात्रा कम है जिससे छन्द टूट जाता है। पर लयात्मकता का निर्वाह उन्होंने भली-भांति किया है। "यह लय तीन लकारान्त शब्द "खेल", "पल्ला", उंगली", आरम्भ की दो ऊर्ध्व स्वर ध्वनियाँ - खेल से - जो एक दूसरे का सन्तुलन उपस्थित करती है, तथा चरणान्त की दो "आ" कारान्त ध्वनियाँ "पल्ला" तथा कसा से निर्मित हुई है।"[110] कुल मिलाकर एक ऐसी लयात्मकता का आविर्भाव होता है जो मात्रा की कमी को या "जो" शब्द में एक मात्रा के बढ़ जाने को स्पष्ट नहीं होने देती। उसे वैसा ही रहने दिया है।

"नया द्रष्टा कवि" में भी छन्द के टूटने की झलक मिल जाती है ।

यद्यपि समझौता
जीने की निपट अनिवार्यता हो
परम अस्वीकार की
झुकने न वाली मैं कसता हूँ

यहाँ समझौता शब्द में एक मात्रा की कमी पड़ती है किन्तु यह अर्थ की दृष्टि से उपयुक्त शब्द होने के नाते उसे बदलने नहीं दिया ।

"सार्थकता" नामक माथुर की कविता मुक्त छन्द की दृष्टि से मशहूर है ।

तुमने मेरी रचना के
सिर्फ एक शब्द पर
किंचित मुस्का दिया
अर्थ बन गई भाषा
छोटी-सी घटना थी
सहसा मिल जाने की
तुमने जब चलते हुए
एक गरम लाल फूल
ओठ पर छोड़ दिया
घटना सच हो गई ।।।"

यहाँ न/तुकात्मकता है न छन्द है/इसकी [illegible] [illegible]

यहाँ न तुकान्त है न छन्द है उसकी आन्तरिक लयात्मकता उसे प्रगति की कोटि में लाने में सक्षम है । निम्नलिखित पंक्तियों में भी माथुर ने यह दिखा दिया कि छन्द मुक्त शैली में भी गीत रचना संभव है ।

महताबियाँ उग-उमगउठती हैं
आस पास चारों ओर
अनहोनी
चकाचौंध यहाँ, यहाँ, यहाँ
औचक फुलझड़ियाँ
चकरी सा नाच रहा
मन
या वातावरण
ओ निर्वासन
कहाँ हूँ मैं
कहाँ हूँ ।[112]

ध्वनि के अनुभूति विशेष या अर्थ विशेष से माथुर भली-भाँति परिचित हैं । इस क्षेत्र में माथुर प्रयोगवादी नए कवियों में अग्रणी हैं । उन्होंने अपने ध्वनि सम्बन्धी अन्वेषणों की एक निश्चित वैचारिक पीठिका "नादसिद्धान्त: ध्वनियों के मौलिक अर्थ" में[113] प्रस्तुत किया है । ध्वनि से उनका तात्पर्य शब्दों की नादशक्ति से है, लक्षणा, व्यंजना अथवा काव्यगत संकेतार्थ से नहीं । बिम्ब योजना को अलंकार, ध्वनि और प्रतीक या मिथकों को वस्तु ध्वनिवाले सिद्धान्त से माथुर का नाद सिद्धान्त एकदम भिन्न है । उनका तात्पर्य शब्दों की मौलिक ध्वनियों के कलात्मक परिचय से है, जिसके सार्थक प्रयोग से अनुभूति की संपूर्ण अभिव्यक्ति होती है ।

कलात्मकता का अर्थ चमत्कारपूर्ण बिम्ब या उपमानों का प्रयोग नहीं है शब्द की नाद व्यंजना तथा अर्थ की अनेक सूक्ष्म संकृतियों के सामंजस्य में ही शिल्प की सार्थकता है । ध्वनि अनियत में अर्थ व्यंजक का प्रतीक बन गयी है । माथुर की दृष्टि में काव्य में अर्थ की पुनर्रचना केलिए ध्वनि प्रयोग का समुचित विधान नितांत अनिवार्य है क्योंकि विभिन्न ध्वनियों के सामंजस्य से ही उपयुक्त नादपट की बुनावट संभव है । इसके ज़रिये भावानुभूति का अभीष्ट चित्र अंकित हो सकता है । इसके सम्बन्ध में कवि की नयी अवधारणा है, "अर्थ को अद्भुत अभिव्यक्ति करनेवाले शब्दों की ध्वनियों के मिश्रण से रचना का नाद रेशापट बनता है, उसकी वातावरण संकृति, भंगिमा और व्याप्त प्रभावशीलता ही रचना का नाद है ।"[114] गोया कि नाद याने काव्यगत अंत:संगीत ही अनुभूति की मूल भंगिमा को उद्घाटित करता है । यह नाद स्वर ध्वनियों के वैशिष्ट्यपूर्ण सम-विन्यास से उत्पन्न होता है । इस नाद के अभाव में छन्द की मुक्ति संभव ही नहीं । "जिस प्रकार कविता में छन्द का आग्रह सर्वथा त्रुटिपूर्ण है उसी भाँति अनुकूल नाद रचना के अभाव में छन्द से पूर्णतया मुक्त हो जाने की धारणा भी दोषपूर्ण है ।"[115]

नादसौन्दर्य की सैद्धान्तिक चर्चा प्रस्तुत करते हुए माथुर ने कहा कि स्वर ध्वनियों के माध्यम से कविता में जो लय उत्पन्न कर सकता है वही कविता का प्राणतत्व है । पर व्यंजनाध्वनियों से उत्पन्न लय रीतिकालीन रूढ़ि है । अत: उसकी रूढ़िबद्धता की सीमित परिधि का अतिक्रमण करने केलिए स्वर-ध्वनि-प्रधान नाद तत्व अधिक गुणात्मक है । उन्हीं के शब्दों में "शब्द की आत्मा स्वर ध्वनि है, इसी कारण उस पर अवलम्बित संगीत आन्तरिक, गम्भीर और स्थायी है । वह आकाश तत्व का संगीत है .... मुक्त छन्द के अंतर्संगीत उन्हीं ध्वनियों की गूँजें बुनी है ।"[116] उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं दीखता ।

संवेदना की अर्थव्यंजना तथा स्वर ध्वनियों के सौन्दर्य का अद्भुत सम्मिश्रण माथुर की कविताओं में लक्षित होता है ।

जब मेरी आँखों में
बादल चूमी वेमानी शामों की
स्तब्धताएं मंडराती हैं
जब मेरी वाणी में
बिन कुमार पीड़ा से असहाय
बच्चों के बेकसूर चेहरे उतरते हैं ।[117]

"पृथ्वीकल्प" में अनुभूति की अद्भुत अर्थ व्यंजना और स्वर ध्वनियों के बीच का आन्तरिक तथा गहरा सम्बन्ध द्रष्टव्य है ।

चमकीली गेहुँई, सिन्दूरी, नीलांबरी
सोममुखी, घन-श्यामा, रेखांकित, साँवरी
पृथ्वी
उदित ग्रह नभों में होती वह वेमानी
छिटकाकर अपनी गोरोचन जवानी
पृथ्वी ।[118]

यहाँ स्वर ध्वनिग्राम नाद घट के ज़रिये अर्थानुभूति तथा आंतरिक लयवत्ता की सफल अभिव्यक्ति हुई है । तुकान्त के स्तर पर भी कवि ने नवीनता उपस्थित की । अप्रचलित तुकान्तों में भावना को निबद्ध करके तथा वर्जित स्वर-ध्वनि मूलक तुकान्तों का प्रयोग करके लयात्मकता का निर्वाह किया है ।

"तैंतीसवीं वर्षगांठ" कविता में प्रचलित व्यंजनामूलक तुकान्तों का परित्याग कर स्वरध्वनियों के तुकान्तों का सफल प्रयोग किया है ।

है गनीमत हम न सड़कों पर गिरे
कुछ रोगों से नहीं अब तक मरे
है यही क्या कमकि औसत उम्र से
ज़िन्दगी के दस बरस ज्यादा हुए ।[119]

इसमें सभी तुकान्त स्वर ध्वनिमूलक है व्यंजनामूलक नहीं । "सावन की रात" की भूमि भी तुकांत है ।

तन मन की वाणी की सीमाएं
बंधनहत संसार
किन्तु भाव-क्रम से ही होता
जीवन का विस्तार
इसलिए है रूप रंग की प्यास भी
इसलिए है जीवन में विश्वास भी ।[120]

"शरद् निहारिका को देख स्वप्न" में स्वर ध्वनियों के तुकान्त तथा व्यंजना तुकान्त का प्रयोग हुआ है ।

हरी धूप की किरन सी मला
उठी
बैंजनी रंग की
फूल तुरही बजा
:: : ::
श्वेत फूलों भरी

टोकरी सिर धरे
चांदनी के पहिन
लाल फुदनों लगे झुमके
जेवरों से लदी
गोरिया बन ठनी
बेल आंचल सुरत
गेंद सी फेंकते
फूल गेंदा मरद ।[21]

इनमें प्रगीत एवं मुक्तछन्द का समावेश करके नया रूप प्रस्तुत किया है ।

मुक्त छन्द की नयी तथा विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करने पर भी माथुर ने छन्द के प्रति अपने मोह का परिचय दिया है । उर्दू की गजल और बहर, अंग्रेजी की ओड तथा हिन्दी की रुबाइयों की लय के साथ ही साथ कवित्त, सवैये, घनाक्षरी जैसे संस्कृत छन्द के प्रति उनका मोह प्रकट है ।

"मिट्टी के सितारे:" में माथुर ने रुबाई छन्द की सुन्दर नियोजना की । उनकी रुबाइयों में सामाजिक चेतना तथा भविष्य के प्रति आस्था मौजूद है ।

कल थे कुछ हम, बन गये आज अनजाने हैं
सब द्वार बन्द टूटे सम्बन्ध पुराने हैं
हम सोच रहे यह कैसा नया समाज बना
जब अपने ही घर में हम हुए बिराने हैं ।[22]

"वसंत एक प्रगीत स्थिति" में अंग्रेज़ी छन्द ओड का प्रयोग हुआ है ।

पिया आया वसंत फूल रस के भरे
फूल रस के भरे
गंध जुड़े कसे
फली पियरी कपास
छाई मन में दिगंत
अमलदासी उजास
रोमतन गुलमुहर
लाल शीतल चिराग
गोल फूलों में धुआँसी ले
काले पराग
नई सरसों के फूलों से केसर भरे
फूल रस के भरे ।[123]

यहाँ लयात्मकता उपस्थित करने केलिए "फूल रस के भरे" दुहराया गया है ।

"चाँदनी गरबा" में रोमानी भावनाओं का तथा ग्रामीण जीवन के विविध आयामों का पर्दाफाश करने केलिए लोकगीतों के आधार पर उन्होंने छन्द योजना की -

"उजला पाख बहार का फूलकास सा
खिली चँदीली रात कि कली सुहावनी
नरम नहुँनी रंग धुले आकाश में
छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी ।[124]

यहाँ लोक धुनों का सहारा लेते हुए भी लयात्मकता का निर्वाह हेतु "पूरनमासी" शब्द के बजाय देशज शब्द "पूरनमा" का प्रयोग किया ग गया है ।

ब्रज भाषा का घनाक्षरी छन्द को काव्य सृजन के प्रारम्भ में कवि ने अपनाया है ।

"सुन्दर सिन्दूर भरा तेजवान मुख देख
मति कठुवाई जात मौन हुई भारती
कोटिन कलाधार की कला बलिहारी जात
गिरिजाकुमार की उतारे सब आरती ।"[125]

जाहिर है कि कुछेक कविताओं में छन्द के प्रति आसक्त होते हुए भी बहुत सारी कविताओं में उसके बंधन के प्रति माथुर पूर्णतः सजग हैं । छन्द के बंधन के प्रति सजगता सप्तक के अधिकांश कवियों में दिखाई देती है । कुछों ने कविता में नादसौन्दर्य और लयात्मकता का समर्थन किया है । पर माथुर ने मुक्त छन्द में नाद सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ युगानुकूल एवं भावानुकूल परिवर्तन तथा परिवर्द्धन उपस्थित करके छन्द विधान के क्षेत्र में अपना पृथक अस्तित्व कायम रखा है । गोया कि नयी कविता की संवेदना को अपनी नयी मानसिकता के अनुसार जितना विकास एवं वैविध्यमय बना दिया शायद उससे अधिक उन्होंने शिल्पपक्ष के अछूते तथा अनदेखे आयामों का स्पर्श करके उसको भी संतुष्ट कर दिया । अर्थ सौन्दर्य तथा नाद सौन्दर्य के प्रति विशेष लगाव नए कवियों में माथुर की पहचान है । इस दृष्टि से माथुर नए काव्य शिल्प के प्रवर्तक तथा समृद्धक के रूप में अज्ञेय से भी आगे निकलते हैं ।

सन्दर्भ

1. डॉ॰ देवराज - साहित्य समीक्षा और सिद्धान्त, पृ॰47

2. अज्ञेय - स्रोत और सेतु, पृ॰80-81

3. A man's most vivid, emotional and sensuous experience is inevitably bound up withthe language that he actually speaks.

   F.R. Leavis - New bearings in English poetry, p.82

4. Unless poetry's language is vitual fresh and surprising those emotions will be blurred and inaffectual-James Reevies Understanding poetry, p.176

5. रामस्वरूप चतुर्वेदी - भाषा और संवेदना, पृ॰35

6. रामस्वरूप चतुर्वेदी - सर्जन और भाषिक संरचना, पृ॰48

7. वही

8. रघुवंश - समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता, पृ॰1

9. गंगाप्रसाद विमल - गजानन माधव मुक्तिबोध - नामवरसिंह का लेख, पृ॰33

10. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰11-12

11. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर, पृ॰57

12. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ॰14

13. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰22

14. महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, पृ॰34

15. महादेवी वर्मा - नीरजा, पृ॰36

16. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰71

17. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰70

18. गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ॰70

19. वही, पृ॰17

20. वही, पृ॰18

21. आलोचना - अंक-12, जुलाई 1954 - गिरिजाकुमार माथुर का लेख, पृ॰68

22. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ॰88

23• गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ•56

24• वही, पृ•22

25• गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ•65-66

26• गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान, पृ•12

27• वही, पृ•38

28• वही, पृ•38

29• The poetry is made of words and obviously the choice of words is important in poetry, indeed in a sense it is the whole art of writing poetry.

Maryorie Boulton - The anatomy of poetry, p.134

30• अज्ञेय - तारसप्तक, पृ •276

31• The word and not, as in prose the sentence is the meaning unit of poetry - Norman Callen - Poetry in Practice, p.1

32• Actually of corse, the words if we attend to them properly direct and contral the emotions.

Gurrey - The appreciation of poetry, p.58

34• गिरिजाकुमार माथुर - साक्षी रहे वर्तमान, पृ•10

36• गिरिजाकुमार माथुर - भाषा और निमर्ण, पृ•125

37• गिरिजाकुमार माथुर - मंजीर, पृ•56

38• गिरिजाकुमार माथुर - भाषा और निमर्ण, पृ•112

39• गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ•93

40• गिरिजाकुमार माथुर - मीतरी नदी की यात्रा, पृ•71

41• गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ• 7

42• गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ• 3

43• वही, पृ•2

44• वही, पृ•5

45• वही, पृ•1

46• वही, पृ•4

47. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.4
48. वही
49. वही, पृ.5
50. वही, पृ.6
51. वही, पृ.10
52. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा, पृ.65
53. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.84
54. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.36
55. वही, पृ.36
56. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.62-63
57. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.83
58. वही, पृ.33
59. वही, पृ.36
60. वही, पृ.83
61. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.56
62. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.80
63. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.73
64. वही, पृ.73
65. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.110
66. वही, पृ.128
67. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.55
68. वही, पृ.55
69. वही, पृ.31
70. वही, पृ.28
71. वही, पृ. 9
72. वही, पृ.74
73. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.85
74. वही, पृ.47
75. वही, पृ.89

76· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·76
77· वही, पृ·43
78· वही, पृ·21
79· वही, पृ·125
80· गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ·127
81· वही, पृ·84
82· वही, पृ·75
83· गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ·72
84· वही, पृ·37
85· वही, पृ·36
86· वही, पृ·36
87· [सं·] अज्ञेय - तारसप्तक - माथुर का वक्तव्य, पृ·124
88· निराला - परिमल - पृ·12
89· सुमित्रानंदन पंत - पल्लव की भूमिका, पृ·44
90· सुमित्रानंदन पंत - युगवाणी, पृ·21
91· प्रभाकर माचवे - संतुलन, पृ·14
92· [सं·] चन्द्रनाथ मदान - निराला - धनञ्जय वर्मा, पृ·19
93· कृष्ण लाल-तारसप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान, पृ·168
94· अज्ञेय - सिद्धी कागद कोरे, पृ·83-84
95· मुक्तिबोध - नयी कविता आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, पृ·8
96· अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ·29
97· जगदीश गुप्त - कवितान्तर, पृ·14
98· प्रभाकर माचवे - संतुलन, पृ·119
99· नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर, पृ·33
100· गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमाएं और संभावनाएं, पृ·42

101. (सं.) अज्ञेय - तारसप्तक - माथुर का वक्तव्य - पृ.125-126
102. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें, पृ.39
103. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ.369
104. गिरिजाकुमार माथुर - नाश और निर्माण, पृ.43
105. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.43
106. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ.96
107. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें, पृ.123
108. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.117
109. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.51
110. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और संभावनायें, पृ.124
111. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.72
112. गिरिजाकुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और संभावनायें, पृ.123
113. वही, पृ.23
114. वही, पृ.24
115. वही, पृ.39
116. (सं.) अज्ञेय - तारसप्तक - माथुर का वक्तव्य, पृ.126
117. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.84
118. (सं.) अज्ञेय - तारसप्तक - माथुर की कविता, पृ.167-68
119. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.109
120. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.126
121. गिरिजाकुमार माथुर - जो बंध नहीं सका, पृ.73
122. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.98
123. गिरिजाकुमार माथुर - शिलापंख चमकीले, पृ.54
124. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान, पृ.89
125. नगेन्द्र तथा कैलाश वाजपेयी - गिरिजाकुमार माथुर, पृ.10
126.

उपसंहार

उपसंहार

पिछले सात अध्यायों में छायावादोत्तर हिन्दी काव्य के लब्धप्रतिष्ठ कवि गिरिजाकुमार माथुर के काव्य का कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्ययन के उपरान्त उनकी काव्य-साधना के कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर हम पहुंच सकते हैं ।

माथुर की सृजनात्मक प्रतिभा किसी सीमित दायरे में सिकुड़ने केलिए तैयार नहीं वह हमेशा प्रगति-पथ पर अग्रसर होने केलिए विवश है । इस विवशता का परिणाम है उनका निरंतर विकासमान संवेदनात्मक काव्य व्यक्तित्व ।

पूर्ववर्ती काव्य संस्कार की विरासत को अपनाते हुए तथा तत्कालीन काव्य प्रवृत्तियों की खूबियों और खामियों का विश्लेषण करते हुए एक निजी काव्य शैली को बनाने और विकसित करने का परिश्रम उनके समूचे साहित्यिक जीवन में लक्षित होता है । इस अथक परिश्रम की सीढ़ियाँ हैं उनकी काव्यकृ

हिन्दी काव्य जगत में माथुर का पदार्पण छायावाद के अंतिम चरण में हुआ । यद्यपि अज्ञेय के "तारसप्तक" (1943) के प्रकाशन से ही माथुर की कविताएं सर्वाधिक चर्चा का विषय बन गई हैं तथापि उससे पहले प्रकाशित 'मंजीर' से लेकर हाल ही में प्रकाशित अद्यतन विज्ञान-काव्य "कल्पान्तर" के स्रष्टा माथुर में अवश्य एक सत्यान्वेषी का स्वर मुखरित रहा है । निरंतर गतिमान सामाजिक यान्त्रिक परिवर्तनों से उपमानों को ढूंढ निकालने और उनके ज़रिये नए काव्य सत्य की तलाश करने की उनकी सत्यान्वेषण-क्षमता का पर्याप्त प्रमाण है "कल्पान्तर" ।

"तारसप्तक" के प्रकाशन से हिन्दी काव्य जगत में जिस प्रयोगात्मक मानसिकता का पदार्पण हुआ उसके प्रवर्तकों में माथुर अपनी अलग अस्मिता के साथ खड़े हैं । कविता में नूतन एवं सार्थक प्रयोग उनका लक्ष्य था । इसलिए उन्होंने कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर विभिन्न प्रयोग किए हैं । खासियत यह है कि उन्होंने कभी भी प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं किया । प्रयोगवादी युग से लेकर उन्होंने युग जीवन की कटु वास्तविकता के अनदेखे तथा अनछुए पहलुओं को सृजन के क्षेत्र में लाकर काव्य कथ्य को समृद्ध बनाया । निराशा के इस युग में भी उन्होंने आशा का प्रसार किया । तैमिक सजगता के इस युग में उन्होंने शिल्प के विभिन्न आयामों पर सर्वाधिक प्रयोग किया है । अतः प्रयोगवाद के प्रवर्तक प्रतिनिधि कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है ।

नयी कविता के सिलसिले में उनके कवि व्यक्तित्व का और निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है । सूक्ष्म रूप से देखें तो यह विदित हो जाता है कि प्रयोगवादी युग में माथुर ने कविता के जिस समन्वयात्मक तथा आस्थावादी पक्ष को अपनाया उसका विकसित तथा सुधरा हुआ रूप है नयी कविता । भविष्य के प्रति आस्थावान कवि का स्वर यहाँ और मजबूत बन जाता है । उन्होंने कविता के क्षेत्र में नये मनुष्य की स्थापना की । इसके लिए

आधुनिक भावबोध के विभिन्न आयामों को कविता में उजागर किया गया है। यहाँ उनकी अनुभूति के विस्तृत आयाम खुल जाते हैं। समसामयिक परिवेश की प्रधान और अप्रधान वस्तुओं में भी उन्होंने नये सौन्दर्य की पहचान की। संक्षेप में माथुर ने समन्वयात्मक मानसिकता को प्रश्रय देते हुए आधुनिक मानव की प्रतिष्ठा करते हुए तथा बोलचाल की भाषा की गरिमा का परिचय देते हुए हिन्दी काव्य जगत् में नयी कविता को पूर्णतः प्रतिष्ठित करने का सक्रिय कार्य किया।

संवेदनशील कवि माथुर समाज के विस्तृत प्रांगण से अनुभवों को बटोर लेते हैं और उन पर अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया करते हैं। मसलन वे वैयक्तिक प्रतिक्रिया को प्रकट करते हैं। इस सन्दर्भ में उनकी संपूर्ण रचनाएं अपनी बहुआयामी संवेदना के सोपान के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती है। उनमें वैयक्तिक काव्यधारा की मूर्त भंगिमा के साथ ही साथ सामाजिक सजगता का तीखा एहसास भी मिलता है। संस्कृति परक और इतिहासपरक संवेदना के साथ ही साथ राजनीतिपरक तथा प्रकृतिपरक संवेदना की झलक भी मिल जाती है।

व्यक्तिपरक संवेदना की अभिव्यक्ति करनेवाली कविताओं में म ने छायावादी वैयक्तिकता को हृदय के स्थान पर बुद्धि से स्वीकार किया है। न तो छायावाद की अतीन्द्रिय श्रृंगार भावना है न प्रगतिवाद की अगाढ़ स्थूलता माथुर मूलतः रंग रस और रोमांस के कवि हैं। रोमांटिक चेतना मनुष्य मन मूलभूत चेतना है। मनुष्य कितने भी यांत्रिक सभ्यता से सम्पन्न हो जाए फिर भ सौन्दर्य चेतना से वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। माथुर इस मस्म को पकड़ पाये हैं और इसीलिए उन्होंने नवस्वाभाविकता का पथ स्वीकार किया। उनकी रोमांटिक चेतना में नवीनता, स्थूलता, मांसलता और मूर्तता अधिक है। उनमें नग्नता और कुत्सता के स्थान पर सांकेतिकता की प्रधानता है। उनकी प्रेम सम्बन्धी कविताओं में अनुभूति की प्रामाणिकता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उन्होंने मिलन की मुखद अनुभूति की अपेक्षा पूर्व मिलन की मधुर स्मृतियों क

मनोयोग से चित्रित किया है । स्वस्थ सौन्दर्य और रोमान के बीच आस्था का मार्ग खोजते हुए यथार्थ का स्वागत करने और मानवीय परिवेश में व्यक्तित्व के प्रसार की आकांक्षा उनमें प्रकट होती है । रोमांटिक सौन्दर्य चेतना को परंपरागत रूढियों के घेरे से बाहर निकालकर संवेदना के बृहत्तर आयामों से जोड़ने का सर्वप्रथम कार्य उनकी देन है । असल में माथुर नवस्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक और समर्थक दोनों हैं ।

माथुर की सौन्दर्य चेतना समकालीन यथार्थ से निखरी हुई चेतना है । वे रंग रस रोमांस में तल्लीन होकर जीवन की कटु वास्तविकता से पलायन करनेवाले कवि नहीं हैं । उन्होंने अपने सौन्दर्यबोध को सामाजिक यथार्थ से समन्वित करके प्रस्तुत किया है । क्योंकि व्यक्ति और समष्टि एक दूसरे का पूरक तत्व है । अत: व्यक्ति के बिना समष्टि का या समष्टि के अभाव में व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं । उनकी कविताओं में व्यक्ति और समाज की तथा व्यक्ति और समाज के बीच के संघर्ष का इतिहास लक्षित होता है । संक्षेप में माथुर की समूची रचनाओं के मूल में व्यक्ति और समाज की समस्याओं और उनसे सम्बद्ध संबंधों के बारीक चित्र मिलते हैं । यह उनकी प्रगतिशील विचारधारा की परिचायिका है ।

माथुर की समाजपरक कविताओं में सामाजिक असंगतियों के प्रति तीखे विद्रोह का स्वर मुखरित है । उन्होंने किसानों और मज़दूरों की समस्याओं, मध्यवर्ग की उलझी हुई संवेदनाओं, अभावों और विफलताओं के प्रति बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करने के बदले उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति की । मध्यवर्गीय जीवन की जिस कटुता, घुटन और पीडा को कवि ने स्वयं भोगा है उसे पूरी तिक्तता से काव्य में संप्रेषित किया है । उन्होंने अपनी कतिपय कविताओं में आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न असमानताओं को वाणी प्रदान की है । वर्ग वैषम्य का चित्रण करनेवाली रचनाओं के ज़रिये कवि नवनिर्माण की प्रेरणा देता है । उन्होंने मानव को उसकी सबलताओं और दुर्बलताओं सहित काव्य में उपस्थित किया है । उनकी कविताओं में जीवन के प्रति सहज आकर्षण दृष्टिगोचर होता

आस्था और विश्वास का स्वर सब कहीं गुंजित है ।

गिरिजाकुमार माथुर नागरीय बोध के कवि होने पर भी ग्रामांचल से अछूता नहीं । अतः उनकी कविताओं में मोटर और पियानो की आवाज़ के साथ ही साथ किसान, ग्रामवधू आदि का स्वर भी अनुगुंजित है ।

माथुर ने संस्कृति एवं इतिहास से सम्बन्धित घटनाओं तथा पात्रों को अपनी कविता में नवजीवन प्रदान किया है । कलात्मक अभिव्यक्ति की एक सर्वथा अछूती दिशा तथा प्रेरणा-भूमि इन रचनाओं के द्वारा साहित्य में प्रथम बार उद्घाटित हुई है

आधुनिक भावबोध से संपृक्त प्रयोगशील नयी कविता के प्रमुख कवि होते हुए भी उन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर काल में राष्ट्रीय काव्यधारा के अन्तर्गत आनेवाली कुछ श्रेष्ठ कविताएं लिखी हैं । राजनीतिपरक संवेदना से सम्बन्धित लोकप्रिय कविता "पन्द्रह अगस्त" उनकी अलग पहचान है ।

प्रयोगशील नयी कविता के संस्कारों से संपन्न माथुर के प्रकृति चित्रण में आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, पृष्ठभूमि, उपदेश आदि के रूप विद्यमान हैं । उनके प्रकृति चित्रण में न तो द्विवेदीयुगीन कविताओं की इतिवृत्तात्मकता है, न छायावादी कविता की सी रंगीन रंगिनी । नवीनता उसका मोहक आकर्षण है ।

माथुर की शैल्पिक उपलब्धियां विशेष महत्वपूर्ण हैं । शिल्प वास्तव में उनके काव्य कथ्य को फिट करने का बाह्य ढांचा नहीं था । हर कविता का शिल्प उसके कथ्य के साथ ही निर्मित हो जाता है । अतः माथुर की दृष्टि में कथ्य के समान शिल्प का महत्व अविवाद है ।

वे पुराने ज़माने के कवियों के समान शिल्प को सामने रखते हुए काव्य सृजन में प्रवृत्त होने के पक्ष में नहीं है । फिर भी बिम्ब, प्रतीक, भाषा छन्द जैसे काव्यगत उपादानों के प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में माथुर समकालीन प्रतिभाओं से काफी आगे हैं ।

बिम्बों के चयन में माथुर सिद्धहस्त हैं । उनका अन्त:संस्कार छायावाद के सूक्ष्म कोमल रस-रस रंगोज्ज्वल बिम्बों में बसा हुआ है । उनका बिम्ब विधान अधिक लयात्मक, गतिशील, स्पष्ट एवं प्रखर है । आधुनिक जीवन के गतिमान चित्र को प्रस्तुत करने केलिए उन्होंने बहुत सारे सामयिक व्यापारों और क्रियाकलापों को अपना काव्य विषय बनाया है ।

नए भावबोध के सार्थक तथा सशक्त संप्रेषण केलिए माथुर ने प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है । उनकी कविताओं में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक प्रतीकों के साथ ही साथ प्राकृतिक और यौन सम्बन्धी प्रतीकों की भरमार है । नए कवियों में वैज्ञानिक उपलब्धियों का जितना प्रभाव माथुर पर पड़ा है उतना दूसरों पर नहीं । उसको मूर्त रूप प्रदान करने केलिए तत्सम्बन्धी उपकरणों को प्रतीक रूप में अपना लिया है । समकालीन सन्दर्भ से नये नये प्रतीकों को गढ़ने की माथुर की क्षमता सराहनीय है ।

काव्य भाषा के सन्दर्भ में माथुर ने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है । सचमुच छायावादोत्तर हिन्दी काव्य भाषा के इतिहास को हम माथुर की रचनाओं में ढूंढ़ सकते हैं । विचारों की नवीनता से उनकी भाषा में नवीनता आ गई । उन्होंने छायावादी सौन्दर्यनिष्ठ काव्य भाषा को आम जनता की भाषा बना लिया । काव्य भाषा के क्षेत्र में रियलिज़्म सर्वप्रथम माथुर की देन है । उन्होंने आवश्यकतानुसार अनेक नए

शब्दों का निर्माण करके आधुनिक हिन्दी शब्दभण्डार की श्रीवृद्धि की ।
अतः वे भाषा के शिल्पी और शब्दों के स्रष्टा हैं ।

माथुर ध्वनि, छन्द आदि के प्रारंभिक प्रयोगकर्ता थे। छन्द के क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग करके उन्होंने मुक्त छन्द को अधिक सुधारा तथा काव्य में संगीतात्मकता का निर्वाह भी किया है । उन्होंने लोकगीतों के आधार पर भी छन्द योजना की है । कहीं भी उन्होंने छन्द के बंधन को नहीं स्वीकारा है । अतः लय तत्त्व का निर्वाह करने में वे सफल हुए हैं । लयात्मकता और रसयोजना की ओर अधिक आकृष्ट होने के नाते नाद-सौन्दर्य और अर्थ-सौन्दर्य पर माथुर ने औरों से अधिक ध्यान दिया है ।

जाहिर है गिरिजाकुमार माथुर छायावादोत्तर हिन्दी कविता के सर्वाधिक गतिशील कवि हैं । उनके कृतित्व में युग की मांग के अनुसार अपने को अधिकाधिक प्रासंगिक बनाने की आकांक्षा आद्यन्त वर्तमान है । अतः काव्यान्दोलनों के जंजालों में बीच बीच में उलझने पर भी उनसे मुक्त रह कर उन्होंने अपने लिए एक सृजनात्मक पथ बना लिया । प्रयोगशील कविता के प्रवर्तक तथा नयी कविता के प्रतिष्ठापक के रूप में वे अज्ञेय के समकक्ष हैं । विचार की प्रगतिशीलता तथा शैली की प्रयोगशीलता की दृष्टि से वे अज्ञेय से भी आगे हैं । वे आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर और उसके विकास पथ का वास्तव्य मील पत्थर हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

सन्दर्भ ग्रंथ

1. अंधायुग — धर्मवीर भारती
   किताब महल, इलाहाबाद, 13 वाँ सं. 1978

2. अकेले कंठ की पुकार — अजीतकुमार
   राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1958

3. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या — रामस्वरूप चतुर्वेदी
   भारतीय ज्ञानपीठ, 1968

4. अभी बिलकुल अभी — केदारनाथ सिंह
   नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद

5. अरी ओ करुणा प्रभामय — अज्ञेय
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1951

6. आज का भारतीय साहित्य — अज्ञेय
   राजपाल एण्ड सन्स, 1958

7. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि गिरिजाकुमार माथुर — डा. नगेन्द्र और
   कैलाश वाजपेई, राजपाल एण्ड सन्स, 1962

8. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि — रामदरशमिश्र
   अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली, 1975

9. आत्मनेपद — अज्ञेय
   भारतीय ज्ञानपीठ, 1960

10. आधुनिक कविता की यात्रा — डॉ. शम्भुनाथ चतुर्वेदी
    सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1983

11. आधुनिक परिवेश और नवलेखन शिवप्रसाद सिंह
लोकभारती, इलाहाबाद, 1970

12. आधुनिक प्रतिनिधि कवि डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1983

13. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ नामवरसिंह
लोक भारती, इलाहाबाद, 1962

14. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान - डॉ. केदारनाथ सिंह,
भारतीय ज्ञानपीठ, 1972

15. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प कैलाश वाजपेई
आत्माराम एण्ड सन्स, 1963

16. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली - डॉ. रांगेय राघव
राजपाल एण्ड सन्स, 1962

17. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ. नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962

18. आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन - इन्द्र नाथ मदान
19. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि- सुरेशचन्द्र निर्मल
20. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान - नित्यानन्द शर्मा
साहित्य सदन, देहरादून, सं.2023

21. आधुनिक हिन्दी काव्य राजेन्द्र मिश्र
ग्रन्थम, कानपुर, 1966

22. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - रमेशकुन्तल मेघ
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1969

23· आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - नरेन्द्र मोहन

24· आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में- डॉ·गंगाप्रसाद विमल
दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया,197

25· आधुनिकता और सृजनशीलता डॉ· रघुवंश
मैकमिलन कम्पनी लि·1980

26· आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य - डॉ· इन्द्र नाथ मदान
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, द्वि ·सं·1978

27· आधुनिकता औरहिन्दी साहित्य डॉ·इन्द्र नाथ मदान
राजकमल, दिल्ली, 1973

28· आत्मजान अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
द्वि·सं·1977

29· आस्था के चरण डा· नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,1968

30· इन्द्रधनु रौंदे हुए ये अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,1957

31· कल्पांतर गिरिजाकुमार माथुर,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,1983,दिल्ली ।

32· कविता और कविता डॉ·इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली,1967

33· कविता के नए प्रतिमान डॉ·नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1968

34· कवितान्तर डॉ· जगदीश गुप्त
ग्रन्थम, कानपुर, 1973

35· काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध - जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद,सं·2017

36· काव्य शिल्प के आयाम सुरेश शर्मा
आदर्श साहित्य प्रकाशन,1971

37· कामायनी जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार

38· कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं शमशेर बहादुरसिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,1984

39· गजानन माधव मुक्तिबोध गंगाप्रसाद विमल, पुस्तकालय,दिल्ली,1969

40· गर्म हवाएं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,राधाकृष्ण
प्रकाशन, दिल्ली,1969

41· गिरिजाकुमार माथुर और उनका काव्य - दुर्गाशंकर मिश्र
हिन्दी साहित्य भण्डार,1968

42· गिरिजाकुमार माथुर नई कविता के परिप्रेक्ष्य में - विजयकुमारी
अभिनव प्रकाशन, 1976

43· गीत फरोश भवानी प्रसाद मिश्र,
सस्ता प्रकाशन, दिल्ली,1953

44· चक्रव्यूह कुंवरनारायण
राजकमल, दिल्ली, 1956

45· चक्रवाल दिनकर
उदयाचल प्रकाशन,

46· चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध
ज्ञानपीठ, 1964

47· छायावाद — डा· नामवरसिंह
सरस्वती प्रेस, 1955

48· छायावाद: पुनर्मूल्यांकन — पंत
लोकभारती, 1964

49· छायावादोत्तर हिन्दी कविता — रमाकांत शर्मा

50· जो बन्ध नहीं सका — गिरिजाकुमार माथुर
भारतीय ज्ञानपीठ, 1968

51· ठण्डा लोहा — धर्म वीर भारती
ज्ञानपीठ, द्वि·स·1973

52· तार सप्तक — सं·अज्ञेय,
ज्ञानपीठ, ती·स· 1970

53· तार सप्तक के कवि:काव्य शिल्प के मान – कृष्णलाल

54· तीसरा सप्तक — सं·अज्ञेय
ज्ञानपीठ, 1959

55· तीसरा साक्ष्य — [redacted] अशोक वाजपेई,
संभावना प्रकाशन

56· द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ·लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, राजपाल एण्ड सन्स,दिल्ली,1973

57· दूसरा सप्तक — अज्ञेय
ज्ञानपीठ, 1970

58· धूप के धान — गिरिजाकुमार माथुर
ज्ञानपीठ, द्वि·स·1958

59· नया हिन्दी काव्य — शिवकुमार मिश्र
अनुसंधान प्रकाशन, 1962

60· नया सप्तक — डॉ· राकेश गुप्त तथा शशिकुमार
चतुर्वेदी, लोकभारती, सु·सं·1973

61· नया हिन्दी काव्य और विवेचन — शंभुनाथ चतुर्वेदी, नन्दकिशोर एण्ड सन्स,
1964

62· नए प्रतिनिधि कवि — हरिचरण शर्मा
63· नए प्रतिमान:पुराने निकष — लक्ष्मीकान्त वर्मा, ज्ञानपीठ, 1966
64· नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र — मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1971

65· नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - मुक्तिबोध
विश्वभारती प्रकाशन, 1964

66· नयी कविता और अस्तित्ववाद — डॉ·रामविलास शर्मा,राजकमल,1968
67· नयी कविताएं एक साक्ष्य — डॉ·रामस्वरूप चतुर्वेदी,
लोकभारती, 1976

68· नयी कविता नए कवि — विश्वंभर मानव
लोकभारती, 1968

69· नयी कविता नयी आलोचना और कला - कुमार विमल
70· नयी कविता की नाट्यानुभूति — डॉ·हुकुमचन्द राजपाल
वाणी प्रकाशन, दिल्ली,1976

71· नयी कविता के प्रतिमान — लक्ष्मीकांत वर्मा,
भारती प्रेस, इलाहाबाद,सं·2014

72· नयी कविता : रचना प्रक्रिया — डॉ· ओमप्रकाश अवस्थी
पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1972

73· नयी कविता में वैयक्तिक चेतना — अवध नारायण त्रिपाठी, जवाहर पुस्तकालय, 1979

74· नयी कविता - कान्ति कुमार — मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, 1972

75· नयी कविता — जगदीश गुप्त और विजयदेवनारायण साही, किताब महल, इलाहाबाद, 1960-61

76· नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं - गिरिजाकुमार माथुर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1966

77· नयी कविता स्वरूप और समस्याएं-डॉ· जगदीश गुप्त, ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1969

78· नयी कहानी की भूमिका — कमलेश्वर, शब्दकार, 1978

79· नाश और निर्माण — गिरिजाकुमार माथुर

80· निराला — सं·इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती, 1975

81· निराला काव्य : पुनर्मूल्यांकन — डॉ·धनंजय वर्मा, विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1973

82· निराला रचनावली खण्ड I — राजकमल प्रकाशन, 1983

83· निराला रचनावली खण्ड II — वही

84· नीरजा — महादेवी वर्मा

85· पल्लव — पंत

86· पल्लविनी — पंत, राजकमल, दिल्ली, सं·2020

87· पूर्वा — अज्ञेय, राजपाल एण्ड सन्स, 1968

88· प्रकृति और काव्य — डॉ·रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1963

89· प्रयोगवाद और अज्ञेय - शैल सिन्हा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1969

90· प्रयोगवादी काव्यधारा रमाशंकर तिवारी

91· प्रयोगवादी नयी कविता हस्ताक्षर परिशोध - श्री मोहन प्रदीप
संभावना प्रकाशन, 1975

92· प्रियप्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी

93· प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में गंगाप्रसाद विमल
राजकमल, 1968

94· बावरा अहेरी अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1954

95· भाषा और संवेदना रामस्वरूप चतुर्वेदी,
भारतीय ज्ञानपीठ, 1964

96· भारती का काव्य डॉ· रघुवंश,
दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया
लि·1975

97· मंजीर गिरिजाकुमार माथुर

98· मुक्तिबोध का रचना संसार गंगाप्रसाद विमल
सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, 1969

99· युगवाणी सुमित्रानन्दन पंत
लीडर प्रेस
इलाहाबाद, 1939

100• रूपाम्बरा — अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, 1960

101• लिखी कागद कोरी — अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1972

102• विवेक के रंग — देवीशंकर अवस्थी,
भारतीय ज्ञान पीठ, 1965

103• शिलापंख चमकीले — गिरिजाकुमार माथुर
साहित्य भवन, 1961

104• सन्तुलन — प्रभाकर माचवे

105• सप्तक काव्य — डॉ॰ अरविन्द,
दि मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया, 1976

106• समकालीन कविता की भूमिका — डा॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय,
दि मैकमिलन कम्पनी, 1961

107• समकालीन कविता सार्थकता और समझ - डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र
राजकमल, 1973

108• समकालीन सिद्धांत और साहित्य - विश्वंभरनाथ उपाध्याय,
दि मैकमिलन कम्पनी, 1976

109• सर्जन और भाषिक संरचना — रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन, 1980

110• सांध्यगीत — महादेवी वर्मा
भारती भण्डार, सं॰2017

111• सात गीत वर्ष — धर्मवीर भारती,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1959

112· साक्षी रहे वर्तमान — माथुर,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1967

113· साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य — डॉ· रघुवंश, भारतीय ज्ञानपीठ, 1963
114· साहित्य नया और पुराना — धर्मवीर भारती
115· साहित्य और संस्कृति — डॉ· देवराज
नन्द किशोर एण्ड कम्पनी,
वाराणसी, 1958

116· स्रोत और सेतु — अज्ञेय,
राजपाल एण्ड सन्स, 1978

117· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य — रामगोपाल सिंह
118· स्वाधीनता और उसके बाद — जवाहरलाल नेहरू
119· हरी घास पर क्षण भर — अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

120· हिन्दी के आधुनिक कवि व्यक्तित्व और कृतित्व - रवीन्द्र भ्रमर
121· हिन्दी नवलेखन — रामस्वरूप चतुर्वेदी
ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1960

122· हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - प्रकाश दीक्षित
123· हिन्दी कविता आधुनिक आयाम - रामदरश मिश्र
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
124· हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - डॉ· प्रभाकर श्रोत्रीय,
मेकमिलन कम्पनी, 1978

125· हिन्दी कविता में युगान्तर — डॉ· सुधीन्द्र
126· हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - लक्ष्मीनारायणलाल

127. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्रशुक्ल,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

128. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - अज्ञेय
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1967

पत्र - पत्रिकाएं

1. अनुवाद
2. अवन्तिका
3. आजकल
4. आलोचना
5. कल्पना
6. धर्मयुग
7. स्पाक
8. संचेतना
9. समीक्षा
10. सम्मेलन पत्रिका
11. सारिका
12. साक्षात्कार

129. Basic psychology - A perceptual Homeostatic approach
Ross stagner, charles M. Solley.
Tata Mac grawhill publishing company, New York

130. Freedom At Midnight Larry collins && Dominique Lapi
Vikas publishing house Pvt.Ltd.
New Delhi.

131. Heritage of symbolism C.M. Bowra

132. History of Freedom Movement in India
R.C, Majumdar,
Published by Firma K.L.Mukhopadhyay, 1963

133. History of Freedom Movement in India
Tarachand, publication
Diriator of Information and
Broadcasting, Govt. of India
No.72

134. Indian Literature since independence
Sahitya Akademy, New Delhi, 197

135. Literary Modernism Irving Howe
Fawcett Premies world Library,
1967

136. Modernity and contemporary Indian Literature
Indian Institute of Advance
Study, 1968

137. Modern writter and his world
G.S. Fraser,
London 1953

138. New bearings in English poetry
F.R. Leavis

139. Poetic Image C.D. Leavis

140. Principles of General Psychology
Gregary A. Kimble
Norman Games

141. Psychology A Study of mental life
DonaldG. Marquis & Robert S
Woodworth

142. Selected prose T.S. Eliot

143. The Anatamy of poetry Marjoris Boulton

144. The appreciation of poetry - Gurrey

145. The Literary symbols William York, Tindal

146. The poetry in practice — Norman Collen

147. The Bebel — Albert camus

148. Understanding poetry — James Veeves

149. What is Art and Essays on art
Leo Tolstoy
Oxford University Press,
London

150. What coleridge Thought — Owen Barfield
Oxford University Press
London

151. Wisdom of the West — Bertraud Russell
Rathbone Books Ltd.
London, 1959

152. Writers on writing — Walter Allen
Phoenix House, London, 1948

153. Writer at Work — The Paris Review Interviews
Mecury Books, London, 1962